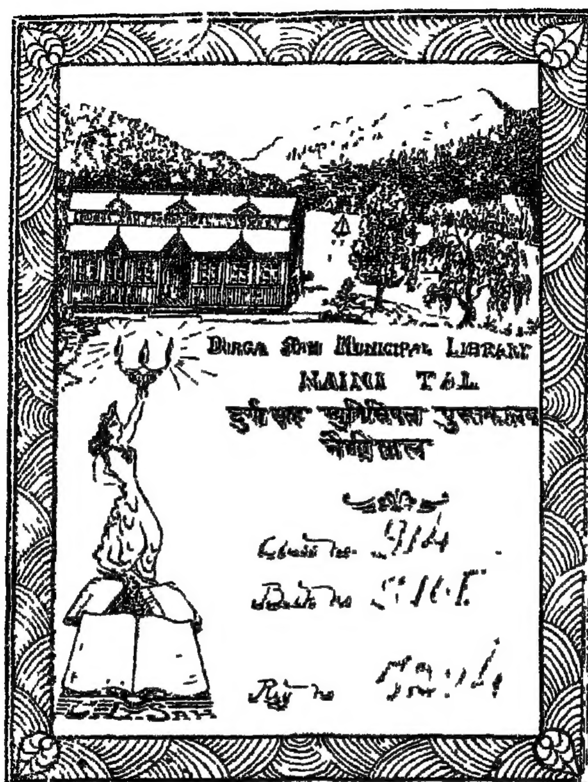

DURGA SAH MUNICIPAL LIBRARY
NAINI TAL
दुर्गासाह म्युनिसिपल पुस्तकालय
नैनीताल

घुमक्कड़ी एक प्रवृत्ति ही नहीं, एक कला भी है। देशाटन करते हुए नये देशोंमें क्या देखा, क्या पाया, यह जितना देशपर निर्भर करता है उतना ही देखनेवाले पर भी। एक नजर होती है जिसके सामने देश भूगोलकी किताबके नक्शे जैसे, या रेल-जहाजके टाइमटेबिल जैसे बिछे रहते हैं; एक दूसरी होती है जिसके स्पर्शसे देश एक प्राणवान् प्रतिमा-सा आपके सामने आ खड़ा होता है—आप उसकी बोली ही नहीं, उसके हृदय-की धड़कन तक सुन सकते हैं।

'एक बूंद सहसा उछली'के लेखक-की दृष्टि ऐसी ही है। वह देशमें नहीं, कालमें भी यात्रा करता है। जो प्रदेश वह आपके सामने लाता है उसका सांस्कृतिक परिपार्श्व भी आपकी आंखों-के सामने रूप ले लेता है। जिस चरित्र-को वह आपके सम्मुख खड़ा करता है उसकी एक चितवनमें एक पूरे समाजके इतिहासकी झांकी आपको मिल जाती है। यात्रा-साहित्य हिन्दीमें यों भी बहुत अधिक नहीं है, पर ऐसी पुस्तक तो अद्वितीय है।

एक बूँद सहसा उछली

[यूरोप-यात्राओंके वृत्त और संस्मरण]

सच्चिदानन्द वात्स्यायन

भारतीय ज्ञानपीठ
काशी

हिन्दी-ग्रन्थाङ्क—१३०
ज्ञानपीठ-लोकोदय-ग्रन्थमाला-सम्पादक और नियामक
श्री लक्ष्मीचन्द्र जैन

प्रथम संस्करण
१९६०
मूल्य : सात रुपये

प्रकाशक
मन्त्री, भारतीय ज्ञानपीठ
दुर्गाकुण्ड रोड, वाराणसी

मुद्रक
बाबूलाल जैन फागुल्ल
सन्मति मुद्रणालय, वाराणसी

मैंने देखा :
एक बूँद सहसा
उछली सागरके झागसे—
रँगी गयी क्षण-भर
ढलते सूरजकी आगसे ।
—मुझको दीख गया :
हर आलोक-छुआ अपनापन
है उन्मोचन
नश्वरताके दागसे ।

गिज़ेलाके लिए

यद्यपि उतना ही निष्प्रयोजन, जितना
एक प्राचीन गिरजाघरसे लगे हुए भिक्षु-विहारमें बैठ कर
अन्यमनस्क भावसे यह कहना कि "मैं जानता हूँ
एक दिन मैं फ़कीर हो जाऊँगा।"

क्रम-सूची

चित्र-सूची

निवेदन

इस पुस्तकमें क्या है, इसके बारेमें कुछ कहनेकी आवश्यकता मै नहीं समझता। इसके पाठकोंमें एक वर्ग अवश्य ऐसा होगा जो कि पुस्तक पढ़नेके बाद ही स्वतन्त्र रूपसे निर्णय करना चाहेगा कि उसकी रायमें इस पुस्तकमें क्या है; और उसपर इसका तनिक भी प्रभाव नहीं पड़ेगा कि मैंने उसके विषयमें क्या कहा है। निःसन्देह एक दूसरा वर्ग ऐसा भी होगा जिसने पुस्तक पढ़नेसे पहले अपनी पक्की धारणा बना रखी होगी कि क्या उसे मेरी पुस्तक में पाना है; इस वर्गको भी इससे प्रयोजन नहीं होगा कि मैंने भूमिकामें पुस्तकके विषयमें क्या कहा है—या कि पुस्तकमें ही क्या कहा है।

इसलिए पुस्तकमें जो कुछ है उसके बारेमें कोई सफ़ाई मुझे नहीं देनी है। क्या-क्या वह नहीं है, इसीके बारेमें दो-एक शब्द कहना चाहता हूं।

यह पुस्तक मार्गदर्शिका नहीं है। इसके सहारे यूरोपकी यात्रा करने वाला यह जान लेना चाहे कि कैसे वह कहाँसे कहाँ जा सकेगा, या कैसे मौसमके लिए कैसे कपड़े उसे ले जाने होंगे, या कि कहाँ कितनेमें उसका खर्चा चल सकेगा, तो उसे निराशा होगी। जो यह जानना चाहते हों कि कहाँसे नाइलानकी साड़ियाँ—या कैमरे, या घड़ियाँ, या सेंट, या ऐसी दूसरी चीजें जो कि भारतवासी विदेशोंसे उन कला-वस्तुओंके एवजमें लाते हैं जो कि विदेशी यहाँसे ले जाते हैं—कहाँसे किफ़ायतमें मिल जायेंगी, उनके भी कामकी यह पुस्तक नहीं होगी। वास्तवमें ऐसे पाठकको यह पुस्तक पढ़नेकी कोई आवश्यकता नहीं है; और मैं उन लेखकोंमेंसे नहीं हूँ जो समझते हैं कि अगर पाठकने मुग़ालतेसे किताब खरीद ली तो वह भी लाभ ही हुआ क्योंकि बिक्री तो हुई। जिस पाठकके द्वारा मैं पढ़ा जाना चाहता हूँ उसका स्वरूप मेरे सम्मुख स्पष्ट है। मैं उसका सम्मान भी करता हूँ। और इसलिए

भरसक उसे भ्रान्तिमें नहीं रखना चाहता, न भ्रान्त होनेका अवसर देना चाहता हूँ।

उस मेरे वांछित पाठकवर्गमें समाजके और शिक्षाके सभी स्तरोंके लोग हैं। (अशिक्षा शिक्षाका स्तर नहीं है, उसका नकार है।) उसमें ऐसे भी हैं जो अंग्रेज़ी या अंग्रेज़ीके अलावा दूसरी विदेशी भाषाएँ जानते हैं (और इसके बावजूद हिन्दी भी पढ़ लेते हैं !) और ऐसे भी हैं जो कोई विदेशी भाषा नहीं जानते, या हिन्दीके अतिरिक्त कोई दूसरी भाषा नहीं जानते। उनमें ऐसे लोग हैं जो अनेक बार पश्चिम और पूर्वके विभिन्न देशोंकी सैर कर आये हैं, ऐसे भी हैं जो शीघ्र विदेशोंको जानेवाले हैं; ऐसे भी हैं जो जानेवाले हों या न हों, विदेश-यात्राके सपने देखते हैं; और ऐसे भी हैं जिनके सम्मुख ऐसी कोई सम्भावना नहीं है, और इसके लिए विशेष उत्कण्ठा भी नहीं है। वास्तवमें इन सब बातोंमेंसे कोई भी पाठककी कसौटी नहीं है।

मेरा पाठक संवेदनशील हो, यह मैं उससे चाहता हूँ। क्योंकि बिना इसके वह उसे नहीं अपना सकता जो मेरी संवेदनाने ग्रहण किया। जो स्वयं संवेदनशील नहीं है वह यह नहीं पहचानता कि सबकी संवेदना अलग-अलग होती है—उसके निकट संवेदनाका भी एक बना-बनाया ढाँचा होता है। वह किसी अनुभवको तद्वत् ग्रहण ही नहीं कर सकता, केवल उसके टुकड़े करके अलग-अलग खाँचोंमें रख सकता है।

पाठक उदारमना हो, यह भी मैं चाहता हूँ। बिना इसके वह दूसरेके विचारोंका सम्मान नहीं कर सकता। बल्कि वह शायद अपने भी विचार नहीं रख सकता, क्योंकि अनुदार विचार तो अपनी उपलब्धि नहीं, रूढ़िकी देन होते हैं।

पाठक अनुभवके प्रति खुला हो, जीवनसे प्रेम करता हो, यह भी मैं चाहता हूँ। जो अनुभवके प्रति खुला नहीं है, उसे दूसरेके अनुभवसे भी क्या प्रयोजन हो सकता है ? और जो जीवनसे प्रेम नहीं करता उसके निकट अनुभवका ही क्या मूल्य है ? जीवन-प्रेम हो तभी तो अनुभवको धन

के रूपमें पहचाना जा सकता है; तभी 'सम्पन्न' और 'दरिद्र'की पहचानके आधार आर्थिक मूल्य न रहकर मानवीय मूल्य हो जाते हैं—जीवनके मूल्य ही तो मानवीय मूल्य हैं।

वास्तवमें जो ऐसे पाठक हैं उन्हें यह भी नहीं बताना होगा कि पुस्तक में क्या नहीं है। उनकी सदाशयता—और सत्ता—स्वयं नीर-क्षीर करती चलेगी। उन्हें जो मिलेगा उतना ही केवल उनकी नहीं बल्कि मेरी भी उपलब्धि होगा। जो नहीं मिलेगा, वह उसमें है ऐसा कहनेकी हठधर्मी मैं न करूँगा।

क्या ऐसे पाठक बहुत थोड़े हैं? कहा जाता है कि मैं अभिजात-वर्गका हूँ (कहनेवालोंके निकट 'अभिजात' का जो भी अर्थ हो), और इसलिए अल्पसंख्य पाठकोंके लिए ही लिखता हूँ—अभिजात पाठकोंके लिए ही। कोई क्यों जान-बूझकर अपने पाठकोंकी संख्या कम करना चाहेगा, यह मैं नहीं जानता। हर कोई मेरा लिखा हुआ जरूर पढ़े ही, ऐसा मेरा कोई आग्रह नहीं है, ऐसी कोई अवचेतन कामना भी मेरी न होगी। किन्तु हर कोई मेरा पाठक हो सकता है ऐसा मैं मानता हूँ।

मानवमें मेरी श्रद्धा है। मानव-मात्रको मैं अभिजात मानता हूँ। मेरा परिश्रम उसके काम आवे, इसे मैं अपनी सफलता मानता हूँ। इस पुस्तकमें जो परिश्रम हुआ है, जो कुछ प्रस्तुत किया गया है, वह उस समृद्धिमें कुछ भी योग दे सके जिसके मानदण्ड आर्थिक नहीं हैं, तो मैं अपनेको धन्य मानूँगा। योग वह दे सके या न दे सके, उस परिश्रमके पीछे मेरी भावना यही रही है; जो कुछ मेरी ओरसे निवेदित है, उसके मूलमें यही साध है।

—सच्चिदानन्द वात्स्यायन

§ इस पुस्तकमे दिये गये प्रायः सभी चित्र लेखक द्वारा लिये गये फ़ोटो हैं। जहाँ वैसा नहीं है वहाँ चित्रके साथ इस बातका उल्लेख कर दिया गया है।

§ विदेशी नाम साधारणतया तद्देशीय उच्चारणके अनुसार लिखे गये हैं। यूरोपीय नामोंके यूरोपीय रूप बहुधा उनके अंग्रेजी रूपोंकी अपेक्षा हिन्दीके स्वभावके अधिक निकट होते हैं, और उन्हें नागरीमें लिखना भी सुगमतर। जहाँ अंग्रेजी द्वारा परिचित रूप और देशीय रूप बहुत भिन्न हैं, वहाँ सुविधाके लिए अंग्रेजी रूपका भी उल्लेख कर दिया गया है।

§ मुद्रणके लिए पांडुलिपि तैयार करनेमें श्री योगराज थानीने जितना परिश्रम किया है उसका तो आभार है ही, पर जिस प्रसन्न उत्साहके साथ यह सहयोग उन्होंने लेखकको दिया है, वह आभार-स्वीकारसे परे, उन दुर्लभ, विस्मयकर अनुभवोंकी श्रेणीमें है जो हिन्दीके लेखक जीवनको भी काम्य बना देते हैं।

—लेखक



'मैने देखा—'

['पैरिसमें पतझर' शीर्षक एक वृत्तात्मक फिल्मके लिए चित्र लेते समय एक सहकर्मिणी द्वारा लिया गया फोटो]

फ़ोटो : [एवा मुस्किएत्ति, पेरिस दिसम्बर १९५५]

एक बूँद सहसा उछली

यूरोपकी अमरावती : रोमा

ज्ञान-वृद्धि और अनुभव-संचयके लिए देशाटन उपयोगी है, यह पुरानी बात है। एक समय था जब कि कविके लिए—और क्योंकि काव्यकार ही एकमात्र कृतिकार था इसलिए समझ लीजिए कि अपने अर्थमें साहित्यकार मात्रके लिए देशाटन अनिवार्य समझा जाता था। किन्तु देशाटन कैसे किया जाय इसकी कोई विशेष पद्धति शास्त्रकारोंने नहीं बतायी—तीर्थाटनकी परम्परा थी लेकिन उसका उद्देश्य अनुभव-संचय नहीं बल्कि पुण्य-संचय था, और वह भी भवानुभव उस मुक्ति पानेके लिए।

दुनियाकी जानकारी—और आज ज्ञान अथवा अनुभवसे जानकारी ही अधिक महत्त्वपूर्ण समझी जाती है—प्राप्त करनेके और उसके विषयमें अधिकारपूर्वक लिख सकनेके इधर दो अलग-अलग तरीक़े हो गये हैं। एक तो यह है कि आप सप्ताह भरमें दुनियाका हवाई—बल्कि तूफ़ानी दौरा करके लौट आइए; फिर या तो एक 'संवाददाता सम्मेलन' बुला लीजिए और उसे अपनी प्रत्येक धारणाके बारेमें एक-एक बयान दे डालिए, या फिर एक शीघ्रलिपिक बुला लीजिए और एक पुस्तक लिखा डालिए जो साथ-साथ छपती भी जाय—क्योंकि अन्यथा आपके अनुभवोंके पुराने पड़कर अरोचक हो जानेका डर है। लिखनेके लिए अनुकूल समय और एकान्त आवश्यक हो तो पुस्तक लिपिककी बजाय रिकार्ड करनेवाले यन्त्रको भी लिखा दी जा सकती है।

स्पष्ट है कि यह मार्ग बड़े आदमी ही अपना सकते हैं, जिनके बयानका महत्त्व जितना उसकी विषय-वस्तुके कारण हो उतना ही वक्ताके नामके कारण। "आपने यह बात कहाँ सुनी ?" "जी, ठीक घोड़ेके मुखसे प्राप्त

हुई है।" (आज-कल सब-कुछका अंग्रेज़ी अनुवाद करानेके लिए समितियाँ बन रही हैं। अतः यहाँ भी अंग्रेज़ी मुहावरेका अनुवाद कर दिया गया है। इतना अवश्य है कि यदि यह अनुवाद किसी समिति द्वारा किया गया होता तो 'घोड़ेके मुँह' जैसी सीधी और सहज बात न कहकर 'हय-वदन' या 'तुरङ्गमुख' जैसे किसी प्रभावशाली पदका उपयोग किया जाता। अपनी अल्पज्ञता और गुरुत्वहीनता स्वीकार करता हूँ।)

दूसरा तरीक़ा यह है कि आप 'कालो ह्ययं निरवधिः' मानकर इस 'विपुला पृथ्वी' की परिक्रमापर निकल जाइए और यह चिन्ता छोड़ दीजिए कि कब लौटना होगा या कब यात्रा पूरी होगी; प्रकाशक-रूपी विन्ध्य-शिखर कब अगस्त्य-रूपी लेखकके प्रत्यावर्तनका आशीर्वाद पाकर सिर उठाकर पूछ सकेगा कि प्रभु, पाण्डुलिपि कब प्राप्त होगी ? आप यह मार्ग अपनायें तो जो देश जितना समय माँगे निस्संकोच देते चलिए; पहले ही देशमें दो-चार-छः वर्ष लग जायें तो भी चिन्ता न कीजिए, यह मान लीजिए कि आरम्भका यह विलम्ब आगेकी प्रगतिके लिए विशद भूमिकाका काम देगा।

स्पष्ट है कि यह दूसरा मार्ग सिद्धों-सन्तोंका है—सिद्धोंका नहीं तो असाध्य घुमक्कड़ोंका।

मैं साधारण बीच-बचौला आदमी होनेके नाते न तो इतना सौभाग्य-शाली हो सका हूँ कि दूसरी कोटिमें आऊँ, न इतना विशिष्ट अभागा ही हूँ कि पहली कोटिमें गिन लिया जाऊँ। मुझे यूरोप-भ्रमणके लिए छः मासका समय दिया गया जिसे खींच-खाँचकर मैंने दस मास तक बढ़ाया; किन्तु इतना समय भी केवल यही भर जाननेके लिए पर्याप्त होता है कि कुछ भी जाननेके लिए वह कितना अपर्याप्त है ! यात्री अपने पहले सप्ताहका 'सब-जानतावाला'-पन खो चुकता है और जिज्ञासाओंकी सूची भर बनाकर लौट आता है।

किन्तु जानना ही सब कुछ नहीं है। देखना, और जो देखा उसके बारेमें सोचना भी बड़ी बात है। और पूर्वग्रहोंको छोड़ सकना, तथा

पूछनेके लिए सही प्रश्नोंकी सूची बना लेना—यह और भी बड़ी उपलब्धि है। आजके युगमें, जब 'कुछ खोजने' चलनेसे 'कुछ मानकर' चलनेको अधिक महत्त्व दिया जाता है और जब यात्री प्रायः कुछ देखने नहीं, जो मानकर चले हैं उसकी पुष्टि पाने निकलते हैं, तब उसका महत्त्व और भी अधिक है। यात्री अधिक पूँजी न लेकर लौटे तो फ़ालतू असबाबसे छुट्टी पाकर सहज यात्रा करना ही सीख आये, यही बहुत है। मैं उन लोगोंकी बात नहीं कहता जो यहाँसे कई-एक खाली झोले लेकर चलते हैं और लौटते समय जिनके कपड़ोंके हर सलवटसे कलाई-घड़ियोंकी लड़ियाँ, जूतोंके भीतरसे छः-छः जोड़े नाइलोनके मौजे या कोटके अस्तरमेंसे गज़ों जारजेट निकला करती हैं। न उन्हीं लोगोंकी बात कहता हूँ जिनके लिए स्वर्गीय आनन्द-कुमार स्वामीने बहुत दुःखी होकर कहा था कि "आप जब विदेशमें आयें तो वहाँके लोगोंको यह भी अनुभव करनेका कारण दीजिए कि आप अपने साथ खर्च करनेके लिए पैसोंके अलावा भी कुछ लेकर आये हैं!"* इन दोनों प्रकारके यात्रियोंको दूर हीसे नमस्कार करता हूँ। जितनी अधिक दूर वे चले जायँ उतना ही अधिक विनत मेरा नमस्कार!

फ़ालतू असबाबसे छुट्टी पाते हुए सहज भावसे यात्रा करना सीखते चलना ही मेरा उद्देश्य रहा है—विदेशाटनमें ही नहीं, जीवन-यात्रामें भी। इस प्रकार क्रमागत 'बेसरोसामान' हो जानेमें संन्यासकी नाटकी तीव्रता या आत्यन्तिकता नहीं है लेकिन इससे मिलनेवाले हल्केपनसे मुक्तिका जो बोध होता है वह कुछ कम मूल्यवान् नहीं है। लेकिन अन्तिम उपलब्धिकी बात अभीसे करना दार्शनिकताका पचड़ा ले बैठना जान पड़ सकता है, इसलिए उसे छोड़ आपको शब्दोंके विमानपर बिठाकर सैर करानेके मेरे

* मृत्युसे कुछ पूर्व अमरीका आये हुए भारतीय विद्यार्थियोंको सम्बोधन करते समय स्व० कुमार स्वामीने भारतीय संस्कारोंपर बल देते हुए यह कहा था। —लेखक

प्रयत्नमें मेरा उद्देश्य यही है कि इस सहज भ्रमणका अपूर्व स्वाद कुछ आपको भी प्राप्त करा सकूँ। यह एक गुड़ है जिसका गूँगेका होना आवश्यक नहीं है ! तो लीजिए, न्यूनतम असबाब लेकर शब्द-विमानकी सवारीके लिए तैयार हो जाइए !

अप्रैलके उत्तरार्द्धकी एक रातका पिछला पहर। खुला आकाश। वास्तवमें खुला आकाश, क्योंकि आकाशके जिस अंशमें धूल या धुन्ध होती है वह तो हमारे नीचे है। और धूल उसमें है भी नहीं, हल्की-सी बसन्ती धुन्ध ही है, बहुत बारीक धुनी हुई रूईकी-सी :

यह ऊपर आकाश नहीं, है
रूपहीन आलोक-मात्र। हम अचल-पंख
तिरते जाते हैं
भार-मुक्त।
नीचे यह ताजी धुनी रुईकी उजली
बादल-सेज बिछी है
स्वप्न-मसृण :
या यहाँ हमीं अपना सपना हैं ?

हम नीचे उतर रहे हैं। धीरे-धीरे आकाश कुछ कम खुला हो आता है और फिर नीचे बहुत धुँधली रोशनी दीखने लगती है। विमानके भीतर, चालकके कैबिनको यात्रियोंके कमरेसे अलग करनेवाले द्वारके ऊपर बत्ती जल उठती है। 'पेटियाँ लगा लीजिए'—'सिगरेट बुझा दीजिए।' एक गूँज-सी होती है, फिर स्वर आता है; "थोड़ी देरमें हम लोग रोमके चाम्पीनो हवाई अड्डेपर उतरेंगे।"

भारतसे रोम (इटालीय रोमाका अंग्रेज़ी रूप) तक २२ घण्टे लगे। देशसे ब्राह्मवेलामें चलना हुआ था और रोममें तो अभी रात ही थी। असबाबकी पड़तालमें अधिक समय नहीं लगा, और रोम उतरनेवाले यात्री सवारी गाड़ीमें बैठ गये। हवाई यात्राका सबसे अधिक समय लेनेवाला अंश वह होता है जब भूमिपर होते हैं शहरसे हवाई अड्डे तक या अड्डेसे शहर तक आते-जाते और विमानकी प्रतीक्षामें। पर रातके सन्नाटेमें हमारी बस बहुत तेजीसे सड़ककी लम्बाई नापती चलती है और शीघ्र ही हम रोम शहरमें प्रवेश करते हैं। मैं जानता हूँ कि दिनके प्रकाशमें रोम बिलकुल दूसरा दीखने लगेगा पर इस समय भी जो दीख रहा है वह अपूर्व और आकर्षक है। अंगूरकी कटी-छटी बेलें—इतनी नीची कटी हुई कि पौधे मालूम हों। लिलाककी झाड़ियाँ जिनके बकायन जैसे फूलोंके गुच्छोंका रंग रातमें नहीं पहचाना जाता। पर मधुर गन्ध वायुमण्डलको भर रही है। तरह-तरहके खण्डहर जिनमें कुछ चित्रों द्वारा परिचित हैं कुछ अपरि-चित। स्वच्छ सुन्दर सड़कें, जहाँ-तहाँ प्रतिभा-मण्डित फव्वारे—ये फव्वारे न केवल इटलीकी मूर्त्तिशिल्प और वास्तु-प्रतिभाके उत्कृष्ट नमूने हैं वरन् पौराणिक आख्यानोंसे इतने गुँथे हुए हैं कि पूरी क्लासिकल परम्परा उनकी फुहारके साथ मानो झरती रहती है। नगरके मध्यमें फ़ोन्ताना दि त्रेवी मानो कल्पस्रोत हैं—वहाँपर यात्री जलमें सिक्का फेंककर मन्नत करते हैं कि उनका फिर रोम आना हो। सुना है कि त्रेवीकी शक्ति दिल्लीके 'हड़िया पीर' से कुछ कम नहीं है; किन्तु इटली फिर आना चाहकर भी मैंने उसका सहयोग नहीं माँगा! यों उत्सुक अथवा चिन्तित प्रेमी-युगलोंकी भीड़ त्रेवीपर लगी ही रहती है; और विदेशी यात्रियोंको स्थायी स्मृति-सुख देनेके लिए गिद्धोंकी-सी तीव्र दृष्टिवाले फ़ोटोग्राफ़रोंकी पंक्तियाँ भी दिन-रात कैमरे और रोशनीका सामान लिये फुव्वारेके आस-पास मँडराती रहती हैं।

किन्तु मैं अपनी बससे भी अधिक तेज गतिसे चलने लगा!""मुड़तो,

बलखाती हुई सड़कें और चक्करदार ऊँची-नीची गलियाँ जिनमें विभिन्न कालोंके विभिन्न स्थापत्य-शैलियोंके तरह-तरहके मकान, अपने-अपने ढंगसे सुन्दर और शैलियोंका यह मिश्रण और घरोंकी बेतरतीबी अपना एक अलग सौन्दर्य लिये हुए है! और जहाँ-तहाँ अप्रत्याशित स्थलोंपर—जैसे सड़कोंके बीचो-बीच, या चौराहेपर, गलियोंके मोड़पर, सिपाहियोंके खड़े होनेके चबूतरेके आस-पास, सन्तरीके ठियेके चारों ओर—फूलोंकी क्यारियाँ।

अनन्तर रोमके, इटलीके, यूरोपकी गलियोंके बारेमें और भी बहुत कुछ जानूँगा; पर यह तो पहली ही दृष्टिमें दीखता है कि यूरोपके पुराने शहरोंकी ये बलखाती गलियाँ एक अद्वितीय सौन्दर्य लिये हुए हैं। बड़ी सड़कोंको देखकर चले जाना मानो एक लिफ़ाफ़ेको देखकर बिना उसके भीतरके निजी पत्रकी बात पढ़े ही चल देना है! रोमके उस पहले चार दिनके प्रवासके बाद मैंने इटलीके विभिन्न शहरोंकी गलियोंमें—विशेषकर फ़िरेंज़े (अर्थात् फ़्लोरेंस), पेरूजिया, असोसी आदि मध्य इटलीके प्राचीन शहरोंकी गलियोंमें पैदल भटक-भटक कितने घण्टे बिताये हैं और कितने मील नापे हैं, इसका हिसाब नहीं है। और इसी प्रकार पेरिसकी गलियोंमें, और जेनीवा, बीएना, बॉन, एम्स्टर्डाम, डैल्फ़्ट, स्काटहोम आदि पुराने और कम पुराने शहरोंके पुराने भागोंकी गलियोंमें! और सर्वत्र इस बातसे प्रसन्न हो सका हूँ कि, यद्यपि बड़ी सड़कोंसे हटकर गलियोंमें जानेका अर्थ सर्वदा यही हुआ कि किसी शहरके बारेमें दावेसे कुछ कह सकना कठिनतर हो गया, गलियोंमें जानेपर शहरोंके निवासी सहसा एक गति-युत, कर्म-रत, परम्परा-सम्पन्न जीवन्त मानव-समाजके रूपमें मेरे निकट आ गये हैं, पह-चाने गये हैं। कोई पूछ सकता है कि यदि ऐसा है तो क्यों उनके बारेमें कुछ कहना कठिनतर हो गया है? तो उसका उत्तर यही है कि इसीलिए। इस लिए कि लोग सहसा एक इतर समाजसे निकट आकर घरके-से लोग हो गये हैं। घरके लोगोंके बारेमें यह कह देना तो आसान होता है कि

'अच्छे लगते हैं' या कि 'हमें नहीं अच्छे लगते', पर उनका वर्णन करना उतना आसान नहीं रह जाता।

भीड़ोंमें
जब-जब जिस-जिससे आँखें मिलती हैं
वह सहसा दिख जाता है
मानव :
अंगारे-सा, भगवान्-सा
अकेला।

और इस प्रकार आँखें मिलनेके बाद उसके बारेमें कुछ कहना कठिन-तर हो जाता है—इसलिए और भी अधिक कि उसकी आँखोंमें प्रच्छन्न या प्रकट रूपसे अपनी प्रतिच्छवि झाँकती जान पड़ती है'''

खड़ा मिलेगा
वहाँ सामने तुमको
अनपेक्षित प्रतिरूप तुम्हारा
नर, जिसकी अनभिप आँखोंमें नारायणकी व्यथा भरी है!

यों तो ऐसे एक अकेले व्यक्तिके चित्रणसे भी एक पूरे देशका, सभ्यताका, युगका चित्र खींचा जा सकता है। यूरोपके एकाधिक देशमें मुझे ऐसे व्यक्तियोंको देखने या उनसे मिलनेका सहयोग हुआ जिनके माध्यमसे कुछ क्षणोंमें ही मुझे एक पूरे समाजकी—या कम-से-कम विशेष युग-स्थितिके समाजकी, जीवन-परिपाटी बिजलीकी-सी कौंधके साथ दीख गयी—मुझे ऐसा लगा कि मैंने सहसा पूरे देश—बल्कि समूचे यूरोपकी आत्माकी एक झाँकी पा ली है। जैसा कि ब्राउनिंगने कहा है :

देयर आर फ़्लैशेज़ स्ट्रक फ्राम मिडनाइट्स....

(मध्यरात्रिमें कभी ऐसी कौंध होती है....)

और मैं समूचे यूरोपका चित्र खींचना चाहता तो यह भी कर सकता, और कदाचित् वह अधिक प्रभावशाली भी होता—कि ऐसे चार-छः विशिष्ट व्यक्तियोंका चरित्र उपस्थित कर देता। किन्तु उपन्यासकारकी दृष्टि पर्यटककी दृष्टि नहीं है। वह विदेशी आत्माको देखनेकी ओर बढ़ेगी जबकि मुझे अपनी देशी दृष्टिके सम्मुख विदेशी भूमिको भी रखना है। हाँ, मिट्टीकी प्रतिमा बन जानेके बाद उसमें आत्माकी झलक जाय तो वह मेरा अहोभाग्य !

अनन्तर यह भी जाना कि रोम यूरोपका सबसे स्वच्छ शहर नहीं है। बल्कि स्काटहोम और कोपेनहागेनसे लौटनेपर इटलीके बड़े शहर (और लन्दन और पेरिस भी) वैसे गन्दे जान पड़ते हैं जैसे इटलीसे लौटकर भारतके शहर ! और यह भी जाना कि पहली दृष्टिमें रोमकी जो विशेषताएँ लगीं उनमेंसे बहुत-सी समूचे दक्षिणी-पश्चिमी यूरोपमें भी पायी जायेंगी और कुछ तो सारे यूरोपमें।

(कभी-कभी यह भी हुआ कि विदेशी शहरोंमें जो बात विशेष जान पड़ी थी भारत लौटकर पाया कि वह यहाँ भी पहुँच गयी है। उदाहरणके लिए फ्रांकफ़ुर्तमें रंग-बिरंगी बत्तियों द्वारा विज्ञापन; लौट कर देखा कि दिल्लीमें भी उनका प्रवेश हो गया है। या कि लन्दन और पेरिसकी दुकानों अथवा विज्ञापनोंमें स्त्रियोंके अण्डरवियरका अतिरिक्त प्रदर्शन—अपने यहाँ शादियोंमें लाउडस्पीकरोंसे गोलियोंकी बाढ़की तरह बरसनेवाले घटिया फिल्मी गानोंके समान गला फाड़-फाड़कर अपनी ओर ध्यान खींचनेवाले भोंडे विज्ञापन—किन्तु भारत लौटकर देखता हूँ कि दिल्ली और कलकत्ताके केन्द्रीय बाजारोंके गलियारे भी इन्हींसे पट गये हैं—दीवारोंपर

उभार-उभारकर टाँगी हुई चोलियाँ और ज़मीनपर बिखरी हुई उतनी ही भद्दी रंग-बिरंगी पत्रिकाएँ। मशीन सब कुछ उघाड़ती चलती है, मशीनके आत्मा नहीं है। लेकिन मशीनका दास होकर मनुष्य भी निरन्तर अपनेको उघाड़ता जा रहा है—आत्मा उसके पास नहीं है यह मानना तो कठिन है लेकिन वह अनाहत है, यह कहना तो सरासर झूठ होगा!)

सड़कके बीचमें फूल इटलीमें मिल सकते हैं और स्वीडेनमें भी, इंग्लैंडमें भी और जर्मनीमें भी। हाँ, इटलीके मध्ययुगीन नियमित अलंकृत उद्यानोंका सौष्ठव एक ढंगका है, फ्रांसकी सजीली वीथियोंका दूसरे ढंगका; इंग्लैंडके विशाल तरु-राजियोंसे छाये हुए खुले हरियाले पार्कोंका और एक ढंगका, और जर्मनीके वनोद्यानोंका और एक ढंगका। सहज, अकुण्ठित और अनाहत भावसे बढ़े हुए पेड़ोंकी शोभा क्या होती है, यह इंगलैण्डमें ही देखनेको मिला। यहाँ भारतमें पेड़-पौधोंको पूज तो लेते हैं, लेकिन सहज भावसे पनपने नहीं देते; जिनको गाय-बकरीके खानेके लिए, दतुवन-के लिए नोच नहीं लेते उन्हें वैसे ही ऐसी तंग जगहमें बाँधकर रखते हैं कि उनका सहज विकास नहीं होता। चमत्कारके लिए हम यह भी सिद्ध करना चाहते हों कि किसी जातिके स्वभाव और उसके बनाये हुए बगीचोंमें समानता होती है, तो उसके लिए मनचाही युक्तियाँ हमें यूरोप-में उतनी ही आसानीसे मिल सकती हैं जितनी पश्चिमोत्तर भारतके मुग़ल उद्यानोंसे, या बनारसकी फुलवाड़ियोंसे। पर उसे छोड़ दें तो इतना अवश्य कहा जा सकता है कि प्रत्येक शैलीके उद्यान अपने-अपने प्रदेश, परिवेश और जलवायुमें ही अधिक सुन्दर लगते हैं। इटलीके तरतीब-दार सरू और मोरपंखीके पेड़ और पलस्तरकी मूर्तियाँ वहाँके नीले आकाश और नीले सागरके परिपार्श्वमें शोभा देती हैं और आस-पासके ऊँचे-नीचे प्रदेशके जैतून वृक्षोंसे भरी घाटियों और सजीले हँसमुख नर-नारियोंके साथ मेल खाती हैं। बल्कि जैसे वहाँके विनोद-प्रेमी, जीवना-तुर, संगीत-मुखर शृंगार-वृत्ति लोगोंके बीच काले या भूरे लबादे और

काले या उनाबी टोप पहने हुए कैथोलिक पादरी और श्रमण सहज-भावसे अपनेको खपा लेते हैं, वैसे ही अपनेमें लिपटे-सिमटे ये सम्भ्रान्त मोरपंखी झाड़ भी वहाँकी दृश्य-परम्परामें अपना स्थान बना लेते हैं। और उन्हीं उद्यानोंको जब हम किसी गिरजाघरसे संलग्न विहारकी चार-दीवारीके अन्दर बन्द पाते हैं तो दीवारके पुराने पत्थरोंके साथ इन वृक्षोंका क्लान्त उदासीन भाव फिर एक नया सामंजस्य प्राप्त कर लेता है, मानो विलासितासे ऊबा हुआ कोई अभिजात रसिक अब दूसरेको याद दिला रहा हो कि **'कालो न जीर्णो वयमेव जीर्णाः !'**

किन्तु शालीन उद्यानों और मधुदायिनी अंगूर-वेलोंकी चर्चासे यह न समझ लिया जाय कि पश्चिमका जीवन अचंचल गतिसे चलता है। पहली दृष्टिमें यही सबसे बड़ा अन्तर पूर्व और पश्चिमका दीखता है : पूर्वका जीवन विलम्बित लयमें चलता है और पश्चिमका द्रुत लयमें। और भारत-में तो हम—योजनाओंके बावजूद ! आलाप लेनेमें ही खोये रहते हैं ! यों और देशोंकी अपेक्षा इटली कुछ धीरे चलना पसन्द करता है और जब-तब विश्राम करने या गलीके मोड़पर बिलमानेको तैयार है, फिर भी वह असन्दिग्ध रूपसे है पश्चिमी देश ही। कम-से-कम आधुनिक इटली। पुरा-कालमें जब वह पूर्व नहीं तो मध्यपूर्वसे आक्रान्त था, रोमिक लोग अधलेटे भोजन करते थे और एक ब्यालूमें छः घण्टे बीत जाना साधारण बात थी, पर आजका रोमी खड़े-खड़े ही खाता है। खानेके बादका विश्राम वह अनिवार्य मानता है और इसलिए यूरोप-भरमें इटलीके दफ़्तरोंमें लंचकी लम्बी छुट्टी होती है—नियमतः दो घण्टे पर व्यवहारमें तीन घण्टे। किन्तु दूसरी ओर वह काम देरतक करता है और उसकी कारीगरी प्रसिद्ध है। यूरोपमें सवेरे उठते ही जीवनकी दौड़ आरम्भ होती है, और राततक चली ही जाती है। मेरा अनुमान है कि औसत यूरोपीयको प्रतिदिन छः-सात घण्टे तो पैरोंपर खड़े-खड़े बीतते हैं—अधिक भी हों तो अचम्भा नहीं। फिर वह खड़े रहना चाहे घरपर नाश्ता बनाते समयका खड़े रहना हो,

चाहे ट्राम-बसमें दफ़्तर जानेका खड़ा होना, चाहे सिनेमाके टिकटके लिए लगी क़तारका खड़े होना। और चाहे खाते-पीते समयका खड़े होना—क्योंकि प्रायः दिनमें एक बार ही बैठकर भोजन किया जाता होगा।

ऐसा क्यों है ? यन्त्रोंने इतनी सुविधा दी है सो क्या केवल खड़े होनेके लिए ? हाँ, यन्त्रने साधन बहुत दिये हैं, मार्ग बहुत खोले हैं : हर व्यक्तिको यह दिखा दिया है कि वह तनिक और लपके तो कुछ और पा लेगा, तनिक और तेज चले तो कहीं पहुँच जायेगा ! और इसलिए सारा जीवन लपककर कुछ पा लेनेका, दौड़कर कहीं पहुँच जानेका एक अन्तहीन प्रयास हो गया है। यदि आकांक्षाकी प्रेरणासे ही ऐसा होता तो भी कुछ बात थी—भारतीय दर्शन कहता रहता कि आकांक्षाका अन्त नहीं है, पर पश्चिमको अहंकी तृप्तिका गहरा सन्तोष मिलता रहता। पर बहुत-से यूरोपीय पहचानने लगे हैं कि आकांक्षाकी प्रेरणासे भी बलवती निरे यन्त्रकी अनिवार्यता होती जा रही है : दौड़ इसलिए नहीं है कि दौड़ना चाहते हैं, इसलिए है कि रुक नहीं सकते ! अहंकी पुष्टिके लिए बनायी गयी मशीन ऐसी हावी हो गयी है कि वह व्यक्तिको ही कुचले दे रही है, वह अपनेको अधिकाधिक नगण्य पाता हुआ दौड़ रहा है, दौड़ रहा है और दौड़ता हुआ भी क्रमशः और नगण्य होता जा रहा है। अस्तित्ववादके नामपर यूरोपमें जो कुछ आया सब स्वस्थ नहीं था, पर जो स्वस्थ था उसके मूलमें इसी अकिंचनत्वका साहसपूर्ण साक्षात्कार था, और मानवकी इस परिस्थितिसे उबरनेके मार्गकी खोज। सार्त्रका 'मतलीका दर्शन' केवल 'न कुछ'के आतंककी छटपटाहट है जो ग्लानि उत्पन्न करती है, पर ग्रेब्रिएल मार्सेल और कार्ल यास्पर्सका दर्शन आधुनिक यूरोपीय चिन्तनकी मौलिकता और साहसका प्रमाण है। यास्पर्ससे मेरी भेंट और मनोरंजक बातचीत भी हुई थी; उनसे हाथ मिलाते ही लगा था कि चारों ओर छायी अशान्तिके बीच यह व्यक्ति शान्त, स्थिर और अचंचल है—कि उसने कुछ पाया है। कहना न होगा कि यूरोपमें ऐसा अनुभव बार-बार नहीं हुआ !

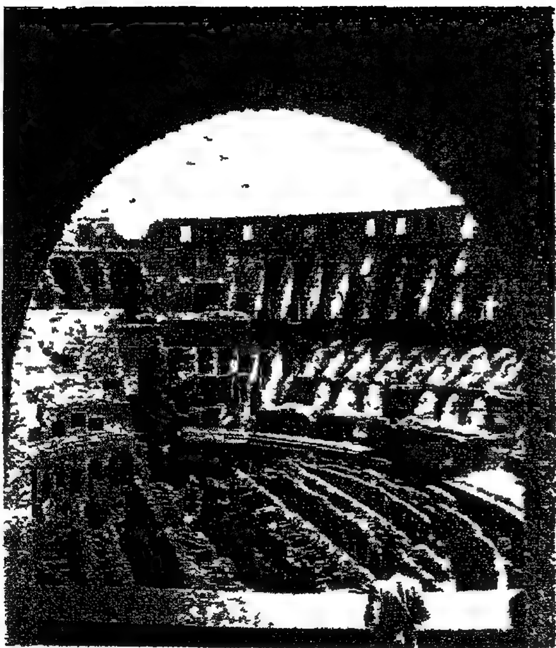
किन्तु रोम ! रोम और इटली, और वहाँके लोग। अन्तर्विरोध सर्वत्र होते हैं, और पुराने देश और पुरानी सभ्यतामें कदाचित् अधिक होते हैं। इटालियन बड़ा हँसोड़ प्राणी है। हँसता-हँसाता चलता है, हर समय हँसनेको तैयार है। एक दिन किसीसे पूछा—'आज क्या है-सोमवार है न ?' तो तपाकसे उत्तर मिला—'जी हाँ, आज सारा दिन सोमवार रहेगा।' लेकिन दूसरी ओर कभी यह भी लगता है कि उसमें विनोद-भाव बिलकुल नहीं है। छोटी-सी बातपर झगड़ा हो सकता है। शृंगारिकता इटालियन स्वभावका अविभाज्य अंग है और अश्लील कहानियाँ कहनेमें वह देवी-देवताओंको भी नहीं छोड़ता। फिर दूसरी ओर उसमें ऐसा दकियानूसीपन भी है कि प्राचीन मूर्तियोंकी नग्नता ढँकनेके लिए उनपर पलस्तरके छोटे-छोटे टुकड़े चिपकाये गये हैं। और इस अत्याचारसे मिकेलएंजेलोकी भव्य मूर्तियाँतक नहीं बख्शी गयी हैं। रोममें वाटिकानके—पोपकी वह नगरी जो संसारका कदाचित् सबसे छोटा राज्य और सबसे बड़े साम्राज्यका केन्द्र है, जो एक ओर साँ पिएत्रोके विशाल गिरजाघरका पिछवाड़ा-भर है और दूसरी ओर संसार भरमें बिखरे हुए श्रद्धालु कैथोलिकोंकी भक्ति पाता है—वाटिकानके संग्रहालयमें देखा कि देव-शिशुओंकी मूर्तियोंतकको पलस्तरके बने हुए अंजीरके पत्तेकी लंगोटी पहनायी गयी है ! सुनकर इस बातका विश्वास नहीं होता, पर देख आया हूँ कि ऐसी मूर्खतापूर्ण संकीर्णता वहाँ भी हो सकती है—और उनमें जो कला-रुचिके संरक्षक और विधाता हैं। संग्रहालयसे जल्दी-जल्दी निकलते हुए मन-ही-मन उन स्वदेशी बुजुर्गोंका स्मरण किया जो खजुराहोके मन्दिरोंको ध्वंस कर देना चाहते हैं। याद आया कि एक इटालियन मित्रने कहा था : "सारा इटली देखना पर वाटिकानके संग्रहालयमें न जाना। वह इस बातका स्मारक है कि कैसे धर्म, श्रद्धा और ग्राम्यता (वलौरिटी) सदियोंतक साथ-साथ चल सकती है।" इटली इस बातका साक्षी है कि महान् कला धर्मके साथ-साथ ही चलती है—जैसे कि भारत भी इसका साक्षी है। पर रोमका एक संग्रहालय ही

सिद्ध कर सकता है कि धर्मकी ओटमें कलाकी कैसी मिट्टी-पलीत हो सकती है—बल्कि श्रद्धाके नामपर धर्म और कला दोनोंकी। वैसे ही जैसे बनारस-के एक घाटकी सीढ़ियोंपर बिछे हुए चित्र ही दिखा सकते हैं कि····लेकिन इस वाक्यको अधूरा छोड़ देना ही श्रेयस्कर होगा! इतना ही कहूँ कि इटालियन लोग यूरोपके हिन्दुस्तानी हैं। उनके गुण-दोष दोनोंका ही वर्णन इस वाक्यमें आ जाता है और इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता कि जिसे मैं गुण मानता हूँ उसे आप दोष समझें, और जिसे मैं दोष समझता हूँ वह आपकी दृष्टिमें गुण हो!

रोमका नगर परम्परागत सात पहाड़ियोंपर बसा हुआ है। सातकी संख्या अक्षरशः न लेनी चाहिए, सारी बस्ती कुछ चोटियोंके बीचकी लह-रीली भूमिपर बसी हुई है और कई स्थानोंसे आस-पासके प्रदेशका अत्यन्त मनोरम दृश्य देखा जा सकता है। अपनी-अपनी रुचिके अनुसार लोग अलग-अलग स्थलोंसे दीखनेवाले दृश्यकी प्रशंसा करते हैं। प्राचीन रोमिक खण्डहरोंके आस-पासके प्रदेशमें भटकना मुझे विशेष रुचिकर हुआ—ध्वस्त इतिहासके खण्डोंके बीच पैर रखते हुए चलनेके कारण ही नहीं बल्कि चारों ओर बिखरी हुई शोभाके कारण। कोलोसियमका विशाल क्रीड़ामंच और उसके निकट ईसा पूर्व देवी-देवताके ध्वस्त मन्दिर; दूरकी वे गुफाएँ जिनमें ईसा पूर्व रोगी आश्रय पाते थे और फिर आरम्भिक ईसाई शरण लेते रहे, चारों ओर ढलती हुई दूर जाकर अंगूरके उद्यानोंमें खो जाने वाली सड़कें; एक कब्रगाह जिसमें एक दूसरे-से थोड़ी दूरीपर एक ओर मिस्रके एक सम्राट् और दूसरी ओर युवा कवि कीट्सकी समाधि है, इस्पानी चौक (पियात्सा डि इस्पाना) की सीढ़ियाँ ('स्कालिनाटा') जिनपर शेलीकी स्मृतियाँ मानो दबे-पाँव चलती हुई धूप सेंकती हैं—मेरे लिए ये सब दर्शनीय और स्मरणीय थे। लेकिन किसी भी शिखरसे देखे हुए परिदृश्यको पूरी तरह आत्मसात् करनेके लिए आवश्यक है कि रोमके बीच सर्पिल गतिसे बढ़ते हुए टेवेरो (अंग्रेज़ी टाइबर) नदके किनारे-

किनारे कुछ मीलोंतक चला जाये। नदियाँ एकसे एक सुन्दर कई देखीं और बनारसके घाटोंका अपना अद्वितीय रूप है, लेकिन टेवेरोके किनारे बसे हुए रोमका आनन्द अनिर्वचनीय है। असलमें 'नदी' कहनेसे भारत-वासीके सम्मुख जो चित्र आता है वह मीलों फैली हुई रेती या जल-विस्तार (और दोनों किनारे नाना प्रकारकी गन्दगी !) का होता है। यूरोपकी नदियोंका पाट उतना चौड़ा नहीं होता, टेवेरो तो जाड़ोंकी गोमतीसे अधिक नहीं है। लेकिन दोनों ओरके पक्के किनारे उसे एक बलखाती नहरका स्वरूप दे देते हैं और नदी-किनारेकी सैर, घाटोंकी या कछारोंकी सैर न होकर नगरकी भी सैर हो जाती है। नहरसे भी लघु इस नदीको 'नद' उसके पुन्नामके कारण कहना होता है; रोमिक लोग उसे पितृवत् मानते थे।

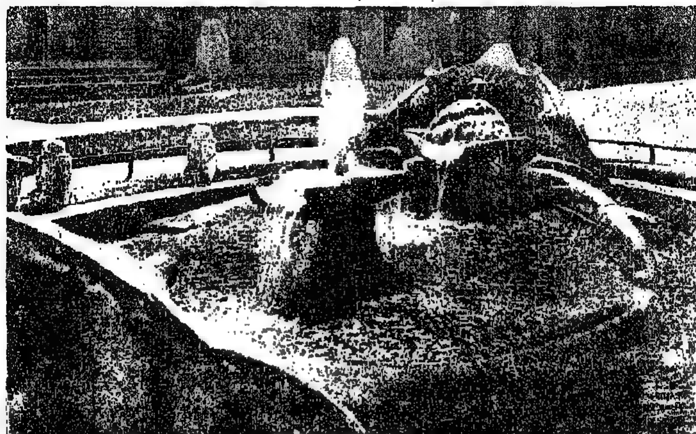
नयी विस्तृत 'नयी दिल्ली' भी शायद रोमकी सात पहाड़ियोंके समान सुन्दर हो सकती—यदि हमने सातों पहाड़ियोंको खोदकर सपाट न कर दिया होता और यदि स्थापत्यकी हमारी अपनी परम्परा होती ! परम्परा-के नामपर जो सहस्र वर्ष या उससे अधिक पुराना है उसीको इंगित करनेके हम इतने अभ्यस्त हो गये हैं कि इस बातको भूल ही जाते हैं कि परम्परामें जो पूर्वापरत्व निहित है वह तभी सार्थक हो सकता है जब कि 'पूर्व' के साथ 'अपर' भी हो। हम पूर्वोन्मुखताके नशेमें अपनेसे यह पूछना ही भूल जाते हैं कि अपर क्या है। यों रोममें रोमिककाल और मध्यकालका ही सब उल्लेखनीय नहीं है। उनकी परम्परा प्रथम महायुद्ध तक अक्षुण्ण चली आयी है। उसके बाद मुसोलिनीकी शैलीका स्थापत्य मुझे तो अच्छा नहीं लगा, किन्तु वह अलग बात है। मेरी रुचिका भी दोष हो सकता है। सर्वसत्ताक शासनमें बड़प्पनपर बल देना अनिवार्य हो जाता है और चारित्रिक गहराईकी विशिष्टता गौण हो जाती है। रोममें,



रोमा : कोलोसियमके रोमिक खँडहर



रोमा : रोमिक चौक [फ़ोरम] पर सूर्यास्त



रोमा: इस्मानी चौक



रोमा: कवि क़ीट्सकी समाधिपर

या इटलीमें, अन्यत्र, मुसोलिनी द्वारा बनवाये हुए चौगानों या उनके आस-पासकी इमारतोंमें बड़प्पनके सिवा सौन्दर्यका कोई गुण नहीं था। और ठीक यही बात मुझे पूर्वी बर्लिनकी 'स्टालिन आली' में भी जान पड़ी। बल्कि दोनोंमें कुछ ऐसा असाधारण साम्य था कि मैं स्वयं चौंक गया था।

अत्याधुनिक स्थापत्य भी रोममें है : रोमके नये रेलवे स्टेशनका, जो कि काँचका घर-सा मालूम होता है, उल्लेख वहाँके लोग गर्वपूर्वक करते हैं। पर आधुनिक बहुत कुछके रहते भी; इटलीको 'यूरोपकी माता' माननेके कारण हमारा ध्यान पुरावस्तुओंकी ओर ही जाता है—और मध्ययुगोंकी गौरव-वस्तुओंकी ओर : सान् पियेत्रोके अलावा त्रिनिता देइ मोन्ती, सान्ता मैरिया मैज्जोरे और पैन्थीओनके प्राचीनतर गिरजाघर, मिकेल एंजेलो-द्वारा मंडित सिस्टीन पूजागार जिसके विशाल भित्तिचित्र मानव-मात्रकी अपूर्व निधि हैं : क्विरिनाले और बार्बेरीनी महल; रोमिक कालके सभाभवन, (जूलियस, आगुस्टस और ट्रायानके सभा-भवन या व्यापार केन्द्र) रंगशाला (कोलोसियम), स्नानघर (काराकाल्ला), और मन्दिर (वीनस और रोमा)....और इन्हें एक दूसरेसे मिलाने या पृथक् करनेवाले शिखर, मार्ग और पौर....इन्हींसे प्रेरित बायरनने गाया था।

"रोम ! मेरा देश ! आत्माकी नगरी !
सभी अनाथ हृदय तेरी ओर मुड़ते हैं।"

इन्हींमें वह परम्परा सोती है जो सोयी भी जीवनका स्पन्दन देती है, और जिसके कारण रोमकी नगरी आज भी अपना नाम सार्थक करती है। चित्तिता इटैर्ना—अमर नगरी....

विद्रोहकी परम्परामें

मुसोलिनीका इटली। फासिस्ट सत्ताका आतंक, जिसमें ऊपरी प्रगति और समृद्धि और साम्राज्य-प्रसारकी हलचलोंके नीचे जन-मानसकी कुण्ठा और प्रबुद्ध वर्गका आक्रोश छिपा हुआ है। इस आक्रोशको रूप या शब्द न मिलते हों ऐसा नहीं है। किन्तु उसे वाणी अभी तक नहीं मिली। और फिर ऐसी वाणी जिसकी ललकार सबको विवश कर दे, वह तो न जाने कब कहाँ उठेगी।

सन् १९३१की तीसरी अक्टूबरका सायंकाल। ८ बजेका समय। निरभ्र शरत्‌का नील आकाश। सहसा रोम नगरीके अनेक मीनारोंसे भिदे हुए क्षितिजपर एक विमान प्रकट होता है। बहुत नीचे उड़ता हुआ वह नगरीके एक मुहल्लेमें एक मकानके ऊपर मण्डलाकार घूमता है—यह मकान एक युवक कविका है, क्या विमान उसीका अभिवादन कर रहा है? फिर वह आगे बढ़कर पियात्सा डि स्पान्याके खुले चौकपर मँडराता है जिसके छोरपर एक छोटे ऊँचे मकानमें रहते हुए कभी शेलीने मानव मात्रकी स्वतन्त्रताका स्वप्न देखा था। चौक पार करके विमान मानो स्कालीनाटाकी भव्य सीढ़ियोंके ऊपर आरोहण करता हुआ-सा मुड़ता है और पिंचिओ उद्यान तथा बोर्गेज़े भवनका चक्कर काटता है।

आधे घण्टे तक रोमकी जनता कौतूहल और आश्चर्यसे भरी उस विमानकी मतवाली उड़ानको देखती है जो मानो रोमकी सड़कों, गलियों, भवन-उद्यानों, चौक-हवेलियों, कहवाघर और रंगशालाओं और सबमें बसे हुए ये आने-जानेवाले व्यक्तियोंमेंसे प्रत्येकको अलग-अलग सम्बोधन

करके विशेष कुछ, अत्यन्त आवश्यक कुछ, तात्कालिक कुछ कहना चाहता है।

क्या कहना चाहता है? विमान यन्त्र है, स्वयं इसका उत्तर नहीं दे सकता। और चालक उस यन्त्रके अनुशासनमें व्यस्त है। उसे बोलनेका समय नहीं है और न उसकी बोली ऐसी स्थितिमें सुनाई दे सकती है। किन्तु उसे जो कहना है वह मानो अजस्र धारामें विमानसे झर रहा है। जबसे विमान क्षितिजके ऊपर प्रकट हुआ है तबसे उससे पर्चियोंकी एक झरी बरसती रही है। इटलीके राजा और प्रजा दोनोंका आवाहन करती हुई ये चार लाख पर्चियाँ। अभिनव दासताकी शृंखलामें जकड़ी हुई जनताको स्वाधीनताका सन्देश दे रही हैं। वह सन्देश एक अकेली अदम्य आत्माका नाटकीय आवाहन भर रह जायेगा या कि जन-जनके अवचेतनमें डूबकर अन्धकारमें विद्रोहके बीज बो सकेगा, इससे उस अनासक्त व्यक्ति-को इस समय कोई प्रयोजन नहीं है जिसने उन पर्चियोंका सन्देश लिखा, छपाया और अब विमानमें भरकर उन्हें बाँटता हुआ रोमके आकाशपर उड़ रहा है। वह मानो आकाशमें बीज बो रहा है, कब उनसे पौधा अंकुरित होगा, कब कैसा फलेगा, उसे क्या फल देगा इसकी कांक्षासे वह परे है—जैसे कि सूर्यकी ओर उड़नेवाले सभी इकारस* परे होते हैं, भले ही उनके पंख झुलसकर झर जायें और वे सागरमें खो जायें।

आधे घण्टेके बाद सभी पर्चियाँ चुकाकर विमान सागरकी ओर मुड़

---

* इकारस : यन्त्रविद् डेडालसका पुत्र। क्रीट द्वीपमें राजा माइनोस द्वारा बन्दी किये जानेपर डेडालसने अपने और पुत्रके लिए पंख तैयार किये थे : उड़ते समय डेडालस नीचा उड़ता रहा किन्तु इकारसके सूर्यकी ओर उड़नेके कारण उसके पंख गल गये और वह सागरमें गिर गया। —लेखक

जाता है। सागर अधिक दूर नहीं है, कुछ मिनटोंमें ही विमान नीचे ही उसी अथाह नीलिमासे घिर जायेगा जो उसके ऊपर छाई हुई है।

और उसके अदृश्य होते न होते क्षितिजपर दूसरे अनेक विमान प्रकट होते हैं। ये सरकारी विमान हैं, या शिकारी विमान हैं। स्वतन्त्रताकी जो अनधिकृत ललकार नगरके नियन्त्रित वातावरणमें कौंध गयी है, झपटकर उसे मार डालना ही इनका उद्देश्य है।

इससे आगे एक बहुत बड़ा प्रश्न विराम है जिसमें वह पंक्तियुक्त मुक्तिदूत खो गया है। वह विमान अपने आपमें सागरमें खो गया या कि शिकारियों द्वारा मार गिराया गया इसका कोई पता नहीं है। किन्तु युवा विमान-चालक कवि लाउरो ड बोसिसका सन्देश, और अपनी अन्तिम विमान-यात्रासे पहले एक बन्धुके नाम भेजे गये पत्रका अन्तिम साक्ष। 'मेरी मृत्युका इतिहास' अविस्मरणीय है।

लाउरो ड बोसिसका जन्म सन् १९०१में हुआ। उसके पिता एडोल्फो ड बोसिस इटलीके निवासी थे, और स्वयं कवि थे, माँ अमरीकी थीं। लाउरोका बाल्यकाल शान्ति और स्वाधीनताके वातावरणमें बीता, किशोर अवस्थामें उसको यूरोपकी अनेक मुख्य प्रतिमाओंका प्रभाव ग्रहण करनेका अवसर भी मिलता रहा। पिता न केवल शैलीके काव्यके प्रेमी थे वरन् उसके सर्वश्रेष्ठ इटालीय अनुवादक भी। लाउरोके दायमें न केवल लादीनी परम्पराके उत्तम गुण मिले बल्कि एंग्लोसैक्सन परम्पराके भी। एक ओर शैलीका आदर्श स्वतन्त्रता-प्रेम था तो दूसरी ओर इटलीके पुनर्जागरण कालकी आदर्श राष्ट्रीयता।

युवक लाउरोकी शिक्षा भी असाधारण रही। लैटिन और ग्रीकके साथ-साथ फ्रांसीसी और अंग्रेजी साहित्यमें भी उसकी गहरी पैठ थी, साहित्य और कलाकी शिक्षाके साथ-साथ वह प्रसिद्ध खिलाड़ी और तैराक

भी था। विज्ञानका अध्ययन करके उसने रोम-विश्वविद्यालयमें डाक्टरकी उपाधि प्राप्त की।

किन्तु लाउरोका मनोनीत क्षेत्र काव्य ही था। अल्पवयमें ही इस्काइल्सके प्रोमैथियुस तथा जैम्स फ्रेज़रके बृहद् ग्रन्थ 'गोल्डन बाओ'का अनुवाद उसने कर लिया था। किन्तु उसकी मुख्य रचना 'इकारो' नामका गीति नाट्य थी जिसके लिए उसे सन् १९२७में एम्स्टरडामसे ओलम्पिक पुरस्कार भी मिला।

कला और विज्ञान दोनोंके प्रति समर्पित आदर्शाभिमुख कवि इकारस-की गाथाके प्रति आकृष्ट हुआ हो यह स्वाभाविक ही है। यन्त्रविद् डे-डालसके पंख लगाकर सूर्यकी ओर उड़ना चाहनेवाले पुत्र इकारसकी दुःखान्त ग्रीक गाथाने अनेक युगोंके कवियोंको आकृष्ट किया है। लाउरोके लिए उस गाथाका आकर्षण समकालीन सन्दर्भमें और भी तीव्र हो उठा था। उसका गीति नाट्य इकारोका विषय था—विज्ञानके द्वारा भौतिक बन्धनसे मानवकी मुक्ति-चेष्टा। डेडालसको उड़ाकर आततायी शासककी दासता-से मुक्ति चाहनेमें लाउरोके लिए एक समकालीन महत्त्व भी था। इस प्रयत्नमें इकारसके रूपमें अपना सर्वस्व खोकर डेडालस हठात् उस समस्या-के सम्मुख खड़ा होता है जो कि आधुनिक युगकी एक मूल समस्या है। और जो आज हमारे सम्मुख और भी डरावने रूपमें आ खड़ी हुई है—विज्ञान और तात्कालिक यथार्थकी समस्या। डेडालस उड़नेवाले यन्त्रका आविष्कारक है, किन्तु आततायी शासक उसीको उसके उपयोगसे वंचित करता है। उपयोगका अधिकार अगली पीढ़ीके दायेमें मिलता है—और अगली पीढ़ी अपनी यातना और बलिदानके द्वारा उसका मूल्य चुकाती है। किन्तु यह दुःख-गाथा दुःखान्त-गाथा नहीं है, विभ्राट्में से फिर मानवकी अदम्य और अजेय आत्मा उठ खड़ी होती है।

जब हम स्मरण करते हैं कि इस गीति नाट्यकी मूल प्रेरणा लाउरो-को कहाँसे मिली तब यह और भी स्पष्ट हो जाता है कि इस कल्पनाका

उसके अपने जीवनपर कितना प्रभाव रहा। कल्पना शासित आदर्शोन्मुख जीवनका ऐसा उदाहरण आसानीसे नहीं मिलता। लाउरोने अपनी माँको एक फ्रांसीसी कविकी इकारस-सम्बन्धी एक कविता पढ़ते हुए सुना था। जिसकी कुछ पंक्तियोंका आशय था—'वह मर गया, उच्च साहस कर्मके आह्वानका सामना करते हुए—आकाश उसकी आकांक्षाका लक्ष्य और सागर उसकी समाधि!' है क्या इससे भी सुन्दर कोई चित्र, इससे सम्पन्न-तर कोई निष्पत्ति!'

यही सुन्दरतर चित्र, यही सम्पन्नतर''''लाउरोने अपने जीवनमें प्राप्त कर लिया—आकाश उसकी आकांक्षाओंकी सीमा, सागर उसकी समाधि!*

अपनी किशोरावस्थामें लाउरो ड बोसिसको फासिस्ट आन्दोलन प्रगतिकी सम्भावनाओं और जीवनोत्साहसे भरा हुआ जान पड़ा था—यह भूल उसकी पीढ़ीके और भी युवकोंने की थी, लेकिन लाउरो अधिक दिन धोखेमें नहीं रहा। जहाँ कई दूसरे राजनीतिज्ञ और व्यवहारकुशल व्यापारी उन्नति और समृद्धिकी सम्भावनाएँ देखकर व्यस्त हो रहे थे, वहाँ कवि लाउरोकी दृष्टिने आगेके अन्धकारको स्पष्ट देखा। तबतक उसने राजनीतिमें कोई क्रियात्मक भाग नहीं लिया था लेकिन आनेवाली दासता-की सम्भावनाएँ देखकर उसने अनुभव किया कि अब आदर्शोंके स्वप्न देखनेका समय नहीं है। उसने पहचाना कि आततायी सत्ताका आतंक क्रमशः बढ़ता जाता है और उसे शक्ति इस बातसे मिलती है कि उसकी

---

*शेलीने भी इटलीके पश्चिमी सागर तटपर—रोम और जेनोआके बीच—नौका-विहार करते समय जल-समाधि पायी थी। उसकी नौका का नाम था 'एरियल'—वायु-सन्तान : शेक्सपियरके नाटकमें एरियल एक वायवी जीव है, मिल्टनके महाकाव्यमें एक विद्रोही फ़रिश्ता। मृत्युके समय कीट्सकी कविता पुस्तक उसके पास थी। —लेखक

आरम्भिक अवस्थामें लोग उसकी गम्भीरता नहीं समझते या कि साहस-पूर्वक उसका विरोध नहीं करते। सभी अत्याचारी शासक उदासीनता और शिथिलतासे पनपते हैं। कुछ विश्वासी बन्धुओंके साथ एक छोटेसे दलका संगठन करके लाउरोने इस आशयकी पर्चियाँ छापकर बाँटना आरम्भ किया कि उसके देशवासियोंको फासिस्ट मरीचिकाके पारकी भयानक सच्चाईको देखना चाहिए और घोषित किया कि फासिज़्मकी हार अनिवार्य है।

इन हरकतोंका जो परिणाम होता है वही हुआ, लाउरोको देश छोड़कर जाना पड़ा लेकिन विदेशमें भी उसने अपना कार्य नहीं छोड़ा। कुछ समय तक उसे पेरिसके होटलोंमें द्वारपालका काम भी करना पड़ा लेकिन वह हताश नहीं हुआ। किन्तु रोममें अपने दो बन्धुओंकी गिरफ़्तारी और पुलिस द्वारा उत्पीडनके समाचारसे उसका धैर्य टूट गया। अनेक बन्धुओंसे ऋण ले लेकर उसने एक छोटा हवाई जहाज खरीदा। विमान संचालनकी शिक्षा ली और अपने सात्त्विक अभियानके लिए तैयार हो गया। जिस समय वह अपने श्वेत पंखों और लाल धड़वाले विमान पर, जिसका नाम उसने पैगास* रखा था, सवार होकर मार्सेसे रोमके लिए रवाना हुआ उस समय उसे अकेला विमान चलानेका कुल ५ घंटेका अनुभव था।

इस अन्तिम उड़ानके लिए हवाई अड्डेकी ओर जाते समय उसने एक पत्रकार बन्धुको 'मेरी मृत्युका इतिहास' नामका एक अन्तिम साक्ष भेजा था। जिसके कुछ अंश इस प्रकार थे।

'मेरी पक्की धारणा है कि फासिज्म तब तक परास्त नहीं होगा जब

---

* पेगासस एक पंखयुक्त घोड़ा था जिसपर कला-देवताओंकी विशेष अनुकम्पा थी। ओलिम्पसकी मनोजात वाग्देवी मिनर्वाने उसे पाला था। —लेखक

तक कि बीसियों युवक इटालीय जनताकी मनःशुद्धिके लिए अपने प्राणोंका बलिदान नही करेंगे। पुनरुत्थान युगमें सैकड़ों युवक अपने प्राण देनेके लिए तैयार थे। किन्तु आज ऐसे व्यक्ति बहुत कम हैं। क्यों ? ऐसा नहीं है कि उनमे अपने पुरखोंकी अपेक्षा कम साहस हो या कम विश्वास हो, कारण यह है कि अभी तक किसीने फासिज्मको गम्भीर महत्त्व नहीं दिया है। क्या नेता और क्या साधारण युवक, सभी समझते हैं कि फासिज्म अधिक दिन नहीं चल सकता और उन्हें ऐसा लगता है कि जो अपने आप मिट जाने वाला है उसके लिए प्राण देना व्यर्थ है।

लेकिन यह भूल है। हमें बलिदान देना ही होगा। मैं आशा करता हूँ कि मेरे बाद दूसरे भी होंगे और उन्हे जनमतको जगानेमें सफलता मिलेगी।'

लाउरोको विश्वास था कि 'जीता रहनेकी अपेक्षा मरकर मैं अधिक उपयोगी हो सकूँगा।' उसका यह विश्वास व्यर्थ नहीं गया। अपने गीति-नाट्य इकारोमें उसने लिखा था—

> **किन्तु मेरा स्वप्न, वह सत्य होगा, शस्त्र-युक्त होगा,**
> **और वह रणसंकुलके मध्यमें होगा।**
> **और आजका स्वप्न कविमें उज्जीवित करता है।**
> **नये प्राण, नयी सामर्थ्य गति, एक नयी पार्थिव शक्ति !**

लाउरो स्वयं सागर और आकाशके रहस्यमय नीलिमामें खो गया लेकिन यह सामर्थ्य गति, यह पार्थिव शक्ति बराबर क्रियमाण रही।

और कौन कह सकता है कि आज भी कविका स्वप्न उतना ही यथार्थ और उतना ही शस्त्र-सम्पन्न नहीं होता—नहीं है ?

❁

यूरोपकी पुष्पावती : फ़िरेंज़े

फ़िरेंज़े—अंग्रेजी रूपान्तरमें फ़्लोरेंस—फूलोंकी नगरी अथवा पुष्पावतीके रेलवे स्टेशनके बाहरका चौक, जहाँसे कई सड़कें अलग-अलग दिशाओंमें जाती हैं। इस यायावरको अपने अनुकूल पर्यावरण खोज लेनेका कुछ ऐसा अभ्यास हो गया है कि वह मानो सूँघकर पहचान लेता है कि उसे किस दिशामें जाना चाहिए या कौन-सी सड़क पकड़नी चाहिए। इसीलिए उसने विया सान्ता कैटेरीनासे आगे बढ़नेका निश्चय कर लिया है। किन्तु मोड़पर एक मुसकराते हुए युवा सिपाहीको देखकर वह सोचता है कि रास्ता पूछ ही लिया जाय, क्योंकि दोनों हाथोंमें एक-एक बैग उठाये हुए जितना कम चलना पड़े उतना ही अच्छा है! एक बार कमरा ठीक करके सामान रख देनेके बाद तो रास्तेसे भटक जाना भी प्रीतिकर और मनोरंजक हो सकता है''''सिपाहीसे जो बात-चीत हुई उसे यह यायावर शायद कभी नहीं भूलेगा।

यायावर : "क्षमा कीजिए महाशय, आप बता सकते हैं कि पुराना नगर किस तरफ़ है ?"

सिपाही : "पुराना नगर ? (उदार भावसे दोनों हाथ फैलाते हुए) किन्तु महाशय, सारा इटली ही बहुत पुराना है !"

यायावर : "जी हाँ, निस्सन्देह। किन्तु पुराने देशके इस पुराने सुन्दर नगरका कोई भाग अधिक पुराना भी तो होगा ?"

सिपाही : "जी हाँ, आप पुराना स्थापत्य और ऐतिहासिक गलियाँ देखना चाहें तो वे यहाँसे नज़दीक ही हैं।"

यायावर ; "तब उसीका रास्ता बता दीजिए। कृपा होगी।"

बैग उठाकर सिपाहीके बताये हुए रास्तेपर मुड़ते हुए यायावर कन्धेके पीछेसे फिर सिपाहीका स्वर सुनता है, ''महाशय, सुनिए !''

इससे आगेकी बातचीत उद्धृत करनेसे पहले यह बताना आवश्यक है कि सारी बात-चीत इटालिन भाषामें हुई है। यायावरको इस भाषाका ज्ञान नहीं है, लेकिन यात्रियोंके लिए तैयार की गयी काम-चलाऊ वार्तालाप-की पुस्तकोंसे वह बहुत-कुछ रटता रहा है और अब तक परिचितोंसे सहा-यता भी लेता रहा है। भाषा न जाननेवालोंको कुछ फिकरे सिखा देनेका उत्साह इटालीय जन-साधारणमें भी उतना ही है जितना औसत हिन्दुस्तानी-में होता है !

''महाशय, आप क्षमा करेंगे, सही उच्चारण 'डुंक्वे' है, 'डंके' नहीं।'' ('तब' का पर्याय इटालीय भाषामें यही शब्द है।)

यायावर : ''धन्यवाद। मेरा ज्ञान बहुत कम है और मुझे ऐसा ही सिखाया गया था।''

सिपाही : ''वह जरूर रोममें सिखाया गया होगा। वहाँके लोग 'डंके' ही कहते हैं। लेकिन सही उच्चारण 'डुंक्वे' ही है, जैसा कि यहाँ होता है—आप जानते हैं कि फ़िरेंजेका उच्चारण ही हमारी भाषाका प्रामाणिक उच्चारण है।''

यायावर धन्यवाद देकर आगे बढ़ता है।

निस्सन्देह परायी भाषाके उच्चारणमें भूल होना, या उस भाषाके जाननेवालों द्वारा सही उच्चारण बताया जाना यों तो कोई असाधारण बात नहीं है। असाधारण बात यह है कि यह काम सड़कके मोड़पर पुलिसके एक सिपाही द्वारा किया जाये, और वह भी इतने शालीन ढंग से। मेरे लिए यह आज भी उतने ही आश्चर्यकी बात है, लेकिन आज यह भी अनु-भव करता हूँ कि फ़िरेंजेके साधारण नागरिककी संस्कारिताका सही प्रति-चित्र इस वार्तालापमें मिल जाता है। अपनी प्राचीन परम्पराका अभिमान, अपनी भाषाके प्रति निष्ठा और उत्तरदायित्वका भाव, समकालीन

सांस्कृतिक जीवनमें अपनी सुन्दर नगरीका सम्मान राजधानी रोमसे ऊँचा बनाये रखनेका शिष्ट हठ, और एक अत्यन्त आकर्षक और सहज हँसमुख भद्रता—फ़िरेंज़ेमें बिताये हुए एक मासके अवकाशमें बार-बार इसका अनुभव हुआ। यों तो उत्तर और दक्षिणके सम्बन्धमें यह बात समूचे यूरोपके बारेमें कही जा सकती है कि उत्तरके लोग सोम्य गम्भीर और आपसी व्यवहारमें खरे और नीतिवान् हैं जब कि दक्षिणी चंचल और चालाक हैं; लेकिन इटलीमें, जहाँ कि मिलनसार और विनोदशील तो सभी हैं, व्यवहारका अन्तर विशेष लक्षित होता है। स्वयं इटलीके लोग इसका अनुभव करते हैं और विदेशियोंको चेतावनी दे देते हैं। फ़िरेंज़ेमें मुझे बताया गया था कि मध्य इटली तो ठीक है किन्तु रोमके लोग बहुत धूर्त्त होते हैं और उनसे सावधान रहना चाहिए। रोममें यह बताया गया कि रोम तक तो ठीक है और उत्तरके लोग भी अच्छे हैं, किन्तु दक्षिणमें नेपोली (अंग्रेज़ी नेपल्स) के लोग सभी ठग होते हैं और राह-चलते आदमियोंके कपड़े उतार ले सकते हैं, उनसे और भी सावधान रहना चाहिए।* जहाँ तक मेरा अनुभव है, मुझे रोममें भी धूर्त्तताका एक उदाहरण मिला; और नेपोली तो बन्दरगाह है ही इस लिए वहाँ उन उचक्कों और उठाईगीरोंकी कोई कमी नहीं थी जो सभी बन्दरगाहोंपर मिल जाते हैं। इतना ही है कि जहाँ तक बन्दरगाहोंका सवाल है, नेपोलीसे प्रतियोगिता कर सकनेवाले और भी बन्दरगाह अवश्य हैं और दो-एकका मेरा अनुभव भी है। किन्तु अभी हम इटलीकी पुष्पावतीमें हैं, और उसका विस्मय दूसरे शहरोंकी इन छिट-फुट त्रुटियोसे किसी प्रकार कम नहीं होता।

---

* अमेरिकाके प्रसिद्ध गुण्डे—गैंगस्टर अस्सी प्रतिशत मूल इटालीय हैं, और उनमें भी अधिसंख्य नेपोलीके, यह जानी हुई बात है। कहाँ तक उनकी गुण्डागीरी उनकी इटालीय व्युत्पत्तिका परिणाम है, और कहाँ तक अमेरिकी वातावरण का, यह दूसरा प्रश्न है। —लेखक

फ़िरेंज़े नगरी आर्नो नदीके तटपर बसी है। मुख्य भाग और पुराना नगर दाहिने तटपर है। किन्तु यह समझना भूल होगी कि बायाँ तट कम ऐतिहासिक या महत्त्वपूर्ण या कम सुन्दर है। अनेक पुल नदीके दोनों भागोंको एक दूसरेसे मिलाते हैं, किन्तु पौंटे वेकियो (पुराना पुल) सबसे विशिष्ट है। कहा जा सकता है कि यही फ़िरेंज़ेका हृदय है। एक ओर पैलात्सो वेकियो (पुराना महल) और उससे संलग्न उफ़ित्सीके संग्रहालयों और दूसरी ओर पालातीन महल और पित्ती संग्रहालयोंको यही पुल मिलाता है।

पुलसे उस पार जानेवाली सड़क आगे चलकर विया रोमाना हो जाती है। पित्ती संग्रहालयोंके पीछे भी बोबोलीका प्रसिद्ध उद्यान है। पुराना पुल अपने स्थापत्यके कारण भी उतना ही उल्लेख्य है जितना कि अपनी ऐतिहासिकताके कारण—इसके अलावा वह फ़िरेंज़ेके नवीन और प्राचीन कला-शिल्पकी मानो जीती-जागती प्रदर्शनी भी है। पुलपर दोनों ओर दुकानोंकी पंक्तियाँ हैं जिनमें फ़िरेंज़ेकी विशिष्ट शैलीके रत्नाभूषण, उत्कीर्ण प्रवाल और विभिन्न प्रकारके मूल्यवान् पत्थर, सोने और चाँदीकी मीनाकारी इत्यादिके उत्कृष्ट नमूने देखनेको मिल सकते हैं। केवल इसी पुलपर विभिन्न वस्तुएँ देखते हुए घण्टों बिताये जा सकते हैं। यहाँसे नदीका दृश्य सुन्दर है और नदीके किनारेकी सैर भी रोचक। आज तो मोटरोंके कारण किनारोंकी सड़ककी सैर इतनी प्रीतिकर नहीं रही है जितनी कभी रही होगी; लेकिन कुछ पुलोंपर खड़े रहनेका आकर्षण आज भी उतना ही है जितना दान्तेके ज़मानेमें रहा होगा। यहींपर महाकविका पहले-पहल किशोरिका बियात्रिचेसे वह दृग्मिलन हुआ था, जो इटालीय चित्र और काव्यकला दोनोंकी एक अपूर्व निधि हो गया है। यों फ़िरेंज़ेकी रूपश्री आज भी कम नहीं हुई है और अनेकों अलक्षित बियात्रिचे उसकी गलियोंमें घूमती हैं; किन्तु दान्ते ही दुर्लभ हो गये हैं क्योंकि वैसी श्रद्धा आजके युगमें नहीं मिलती जिसके सहारे कविकी कल्पना जीवन और मरणका,

स्वर्ग और नरकका अतिक्रमण कर सकी''''आज हम इतना तो पहचान सकते हैं कि यहीं कहीं दान्तेको उस अलौकिक प्रेमकी उपलब्धि हुई होगी, और मान सकते हैं कि वैसा होना अवश्य सम्भव रहा होगा; लेकिन स्वयं उस उपलब्धिसे वंचित हो गये हैं तो फ़िरेंज़ेकी किसी कमीके कारण नहीं बल्कि स्वयं अपनी आन्तरिक अपूर्णताके कारण''''

यों तो इटलीके अनेकों नगर दर्शनीय और उल्लेखनीय हैं, और प्रत्येक-में इटलीकी सांस्कृतिक परम्परा बोलती है, प्रत्येकके अलग-अलग प्रशंसक हैं। जो लोग अमर नगरी रोमको प्रथम स्थान देते हैं उनका तर्क भी समझमें आता है और जो मानते हैं कि जिसने वेनेत्सिया—वेनीस—नहीं देखा उसने इटली नहीं देखा उनका भी खण्डन करना कठिन है, क्योंकि वह अपने ढंगसे अद्वितीय है। किन्तु मेरी समझमें तो फ़िरेंज़ेमें कुछ है जिसे न देखना मानव-संस्कृतिकी एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धिसे वंचित रह जाना है। क्लासिकल परम्पराके मुख्य प्रेरणा-स्रोतोंमें फ़िरेंज़ेका स्थान अब भी अद्वितीय है। यह अकारण नहीं है कि इतने कवि और कलाकार फ़िरेंज़ेकी ओर आकृष्ट होते रहे और नगरीकी अथवा उसके अन्तिक प्रदेशकी यश-गाथा गाते रहे। फ़िरेंज़ेके महान् कवि फ़ोस्कोलोने ठीक ही कहा है कि "फ़िरेंज़ेमें सान्ता क्रोचे गिरजाघरमें इटलीका सम्पूर्ण गौरव संचित है।" यह भी उल्लेख है कि इसी सान्ता क्रोचेमें मिकेलांजेलोकी समाधि है और उसीके सम्मुख गैलिलेओकी। मिकेलांजेलोने जिसकी कांस्य-मूर्तियाँ आज भी फ़िरेंज़ेकी शोभा हैं, "देवताओंके लिए एक नये ओलिम्पसका निर्माण किया था"। और गैलिलेओने प्राणोंका जोखम उठाकर घोषणा की थी कि पृथ्वी और अन्य ग्रह सूर्यके आस-पास परिक्रमण करते हैं। इस प्रकार कला और विज्ञान दोनोंके क्षेत्रोंमें फ़िरेंज़ेकी देन अद्वितीय रही। और उसका प्रतिबिम्ब दान्ते और लेयोनार्दो दा विंचीके कृतित्वमें देखा जा सकता है। कोलरिजने यह लिखा था :

ओ फ्लोरेंस, विथ दाई टस्कन फ़ील्ड्स एण्ड हिल्स
दाई फ़ेमस आर्नो, फ़ेड विथ ऑल व रिल्स
दाउ ब्राइटेस्ट स्टार आफ़ स्टार-ब्राइट इटैली !

(ओ फ़्लोरेंस, टस्कनीकी अपनी पहाड़ियों और खेतोंके, और अनेक झरनोंसे पोषित अपनी प्रसिद्ध नदी आर्नोके कारण इटलीके तारामण्डित आकाशकी सर्वाधिक दीप्तिमान् तारिका !)

और शेलीने कहा था :

ओ फ़ास्टर-नर्स ऑफ़ मैन्स एबंडेण्ड ग्लोरी
सिंस एथेंस, इट्स ग्रेट मदर, संक इन स्प्लेंडर,
दाउ शैडोएस्ट फ़ोर्थ बैट माइटी शेप इन स्टोरी,
एज ओशन इट्स रेक्ड फ़ेंस, सिवीयर येट टेंडर,
व लाइट-इन्वेस्टेड एंजेल, पोएज़ी
वॉज़ ड्रॉन फ्रॉम व डिम वर्ल्ड टु वेलकम वी ।

(जबसे संस्कृतिकी माता एथिन्सकी कीर्तिका ह्रास हुआ तबसे तू ही मानवके खोये हुए गौरवकी धात्री रही; इतिहासमें उसके महान् आकारको तू प्रतिच्छायित कर रही है जैसे कि उसके ध्वस्त मन्दिरोंको सागर प्रतिबिम्बित करता है । निर्मम किन्तु कोमल, काव्यकी आभावेष्टित देवी तेरे अभिनन्दनके लिए अवतरित हुई है ।)

एलिजाबेथ बारेट ब्राउनिंगने तो हारकर कह दिया : "फ़्लोरेंस क्या है इसका वर्णन करनेमें मनुष्यकी या कविकी वाणी सहज ही असमर्थ हो सकती है ।" कवयित्रीका यह कथन और भी सार्थक जान पड़ने लगता है जब हम इसे उसके और ब्राउनिंगके प्रेम और प्रेम-काव्यके सन्दर्भमें देखते हैं । मैंने मिकेलांजेलो और गैलिलेओका घर तो देखा ही, वह स्थान भी देखा जहाँ ब्राउनिंग-दम्पति रहते थे; और वह दृश्य भी देखा जो कि इटलीकी सुन्दर धूपके अलावा दूसरा कारण था जिसने उन्हें मोह लिया था । धूप उन्हें

स्वास्थ्य देती थी, किन्तु फ़िरेंज़ेका वह दृश्य उनकी आत्माको पुष्ट करता था....

वास्तवमें फ़िरेंज़े और एथेंसका नाम एक साथ लेना ऐतिहासिक अभिप्राय रखता है। दोनों नगर अपने उत्कर्ष-कालमें गण-राज्य थे और उनकी सांस्कृतिक देनमें इस बातका विशेष महत्त्व रहा। निस्सन्देह दोनों का समय अलग-अलग था; और इसके अलावा एथेंसके गण-राज्यमें अभिजातोंकी सत्ता थी, जब कि फ़िरेंज़ेके गणराज्यमें सत्ता नागर अथवा व्यापारी वर्गकी थी। और इसीके अनुरूप दोनोंकी देनमें भी अन्तर रहा। किन्तु एक स्वाधीन चिन्तन, एक निशङ्क कौतूहल, और शिल्पकी साधनामें एक निश्चिन्त खुलेपन और उदार विस्तारका भाव दोनोंमें रहा। मानसिक स्वातन्त्र्यकी इस परम्पराके और व्यापारिक समृद्धिके कारण फ़िरेंज़े मध्यकालीन पुनरुज्जीवनका केन्द्र रहा। १४वीं शतीका उत्तरांश और १५वीं शतीका समय फ़िरेंज़ेका उत्कर्षका समय रहा। यह समय सुप्रसिद्ध मेडिची परिवारकी उन्नति और समृद्धिका समय रहा, उसी वंशके लोरेंजो 'लोरेंजो द मैग्नीफिसेंट' के विरुदसे प्रसिद्ध हैं। सन् १८६० में जन-मत द्वारा फ़िरेंज़े इटलीके राज्यसे सम्बद्ध हो गया और कुछ वर्षों तक उसकी राजधानी भी रहा।

सभी पुराने नगरोंका असली जीवन उसकी नयी और चौड़ी सड़कोंमें नहीं बल्कि पुरानी और सँकरी गलियोंमें पाया जाता है। जिन नगरोंमें लोक-जीवनकी परम्पराके साथ-साथ शिल्प और स्थापत्यकी परम्परा भी महत्त्व रखती है—और सच बात यह है कि किसी भी एकीभूत और संश्लिष्ट समाज-जीवनमें रहन-सहन और कला-शिल्पकी परम्पराओंको अलग नहीं किया जा सकता, जैसे कि किसी भी वृक्षके फल-फूल-पत्तोंको उसकी जड़ोंसे अलग नहीं किया जा सकता—उनके बारेमें ये बातें और भी सच हैं। भारतमें हम इसकी सच्चाईका इतना तीखा अनुभव नहीं करते क्योंकि हमारे अधिकतर नगर नये हैं और उनकी जड़ें कहीं हैं हीं

नहीं— न ही उनका रहन-सहन ही मिट्टीसे उगा हुआ और उससे सम्बद्ध है, न उनके स्थापत्य और शिल्प इत्यादि। कुछ-एक पुराने शहर हैं जिनकी जीवन-विधि अपनी परम्परासे जुड़ी चली आ रही है; उनमें परम्परागत स्थापत्य और शिल्प भी देखनेको मिल जायेगा—पुरानी हवेलियाँ और अटारियाँ, परम्परागत बैठक-खाने और अन्तःपुर इत्यादि। लेकिन ये अव-शेष भी हमारे देखते-देखते मिटते जा रहे हैं, और जो नये शहर बन रहे हैं वे तो हैं ही फूहड़ और अपरूप! किन्तु इटलीके लगभग हर शहरमें एक छोटा-बड़ा अंश ऐसा मिल जायेगा जो कि पुराना है या कि जिसमें पुरानेका परम्परागत विकास देखा जा सकता है। इटलीके नगर इनमें भी विशेष उल्लेखनीय हैं, जैसे पैरूजिया, सिएना, असीसी इत्यादि, और फ़िरेंजे तो प्रमुख है ही। जिस पांसियोनेमें (यह सराय और होटलके बीचकी चीज़ होती है) मैं ठहरा था, वह अपने-आपमें एक छोटा-मोटा संग्रहालय थी। किन्तु फ़िरेंज़ेकी हर गली मानो एक चित्र-वीथी है, पत्थरके गचका हर खण्ड मानो शिलित इतिहासका एक खण्ड है। और स्थापत्यकी पर-म्परा गलियोंमें भी उतनी ही जीवन्त है जितनी बड़े-बड़े चौकोंपर बने हुए प्राचीन महलों या हवेलियोंमें। किसी भी गलीमें चले जाइए, यह जाना जा सकता है कि कौन-सा मकान किस स्थपतिके आदेशसे बना, स्थापत्यकी दृष्टिसे किस महराब और किस खिड़कीमें क्या विशेषता है, और शिल्पियों या कलाकारोंकी वंश-परम्परामें क्रमागत जो-जो परिवर्तन हुए उनका क्या कारण रहा। भारतमें शायद किसी भी नये-पुराने शहरके बारेमें ऐसा नहीं कहा जा सकता। बहुत सोचनेपर बनारसके घाट ही कदाचित् इस दृष्टिसे उल्लेख्य जान पड़ेंगे, लेकिन और अनेक प्रकारकी जानकारी उपलब्ध होनेपर भी उनके स्थापत्य और स्थपतियोंकी शिक्षा-दीक्षा या युक्तियोंका इतिहास अधूरा ही रह जाने देना होगा।

निस्सन्देह यह तो कहा ही जा सकता है कि यहाँपर, कमसे-कम हमारी ज्ञात परम्परामें, हमारे वास्तु-शिल्पी वास्तवमें केवल दस्तकार होते



फिरेंज़े : ऊपर—उफित्सी संग्रहालय और पुराना महल, नीचे—आर्नो नदीके पुल



फ़िरेंज़ेका बड़ा गिरजाघर [फ़ोटो शुनर]



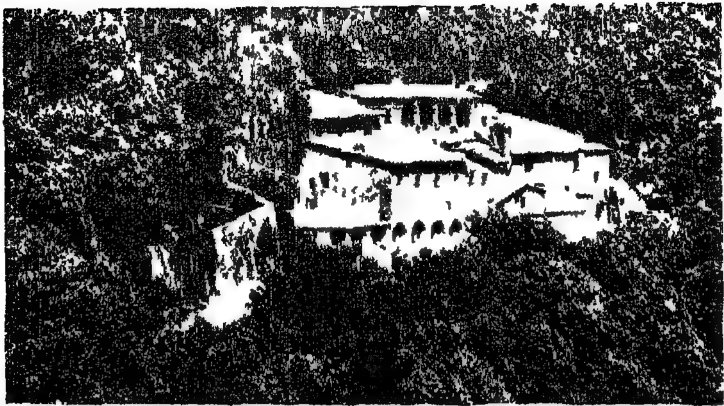
फ़िरेंज़े : बेलोसगार्दोके एक कुंजसे नगरीका परिदृश्य



असीसी : [बायेंको सन्त फ्रांसिसका गिरजाघर, शिखरपर पुराने दुर्ग]



असीसी : मठकी कब्रगाह



सुबासियोका गुफा-विहार



'दूसरा ईसा' : सन्त फ्रांसिस



फरिश्तोंवाली मरियमका गिरजाघर

थे, कलाकार नहीं। अर्थात् उनकी शिक्षा-दीक्षा केवल हाथकी होती थी, मनकी नहीं। वे मँजे हुए कर्मकार होते थे, सधे हुए चिन्तक या प्रबुद्ध व्यक्ति नहीं। निस्सन्देह इसका कुछ ऐतिहासिक कारण भी बता दिया जा सकता है कि ऐसा क्यों हुआ या कैसे हुआ। लेकिन 'क्यों' का उत्तर पा लेनेपर भी स्थिति बदल नहीं जाती है, और उससे जो रिक्त हमारे जीवनमें आ गया है उसकी कसक कम नहीं होती है। कुछ लोग इस बात-को केवल सांस्कृतिक पुनरुत्थानका व्यर्थ आग्रह या प्रतिगामी रूढ़िवादिता कहकर उड़ा देंगे; लेकिन वास्तवमें बात उतनी नहीं है। सुदूर परम्पराका गर्व करनेमें हम इस बातको भूल जाते हैं कि हमारी वास्तु-परम्परा अबसे कई सौ वर्ष पहले ऐसी टूट गयी कि अब उसका इतिहास लिखनेमें भी कठिनाई आ गयी है। मध्य-कालीन मन्दिरोंके अलावा समाधियों, दुर्गों, मकबरों और कुछ महलोंके अवशेष तो हैं, लेकिन वास्तुके इतिहासके लिए इतना ही पर्याप्त नहीं है। हमें नगरोंके घरों और हवेलियोंकी परम्पराकी भी आवश्यकता है। भारतीय नागरिक कैसे रहता था, इसका उत्तर खोजनेके लिए हमें 'मृच्छकटिक' अथवा 'कादम्बरी' के सन्दर्भ खोजने पड़ें, यह हमारे लिए गौरवका विषय नहीं हो सकता। यूरोपके अपेक्षया नये देशोंने सबसे अधिक तीव्रतासे परम्पराके महत्त्वका अनुभव किया है और अनेक देशोंने ऐसे संग्रहालय भी स्थापित किये हैं जहाँ कि विभिन्न युगोंके शहरी या देहाती घर ज्योंके-त्यों प्रतिष्ठित किये गये हैं और सुरक्षित रखे जा रहे हैं। लेकिन इसके अलावा कई ऐतिहासिक नगरोंमें भी वास्तु-पद्धतियोंकी परम्परा बनाये रखनेके लिए संगठित प्रयत्न हो रहा है। इटलीमें समस्या इतनी तीव्र नहीं है क्योंकि वहाँ अभी पुराना बहुत कुछ है। किन्तु वहाँ भी नया निर्माण पुरानेकी उपेक्षा या अवज्ञा करता हुआ नहीं जाता। असीसीका छोटा क़स्बा इसका उत्तम उदाहरण है। सन्त फ़्रांसिसके कारण जगद्विख्यात यह क़स्बा सारे संसारसे यात्रियोंको आकृष्ट करता है। यहाँ बड़े जोरोंसे नया निर्माण हो रहा है, किन्तु वास्तुकी

दृष्टिसे क़स्बेका रूप ज्योंका-त्यों बना हुआ है; नया पुरानेको काटता नहीं बल्कि और विस्तीर्ण करता है।

अनेक उल्लेखनीय महलोंमें दो-चारका उल्लेख अनिवार्य है। पुराना महल (पैलात्सो वेकियो) १३ वीं शतीके अन्त और १४ वींके आरम्भ-में कैम्बियो द्वारा निर्मित हुआ था, अनन्तर उसमें कई परिवर्तन हुए। १६ वीं शतीमें वासारीने उसके भीतर अनेक परिवर्तन किये और मैडिची परिवारके वैभवके अनुकूल बड़े-बड़े कक्ष प्रस्तुत किये। भीतर आँगनमें वैरोकियो द्वारा निर्मित पंखों वाले बालककी प्रसिद्ध मूर्ति है।

इसी महलके चौकके पार्श्वमें एक और उल्लेखनीय इमारत है। एक समय इसीमें गणराज्यके प्रमुखका निर्वाचन घोषित होता था। उसीके सामने इटलीके मूर्ति-शिल्पके कुछ श्रेष्ठ उदाहरण देखे जा सकते हैं, जिनमें चेलीनीका 'पर्सियुस' और ज्याम्बोलोन्या द्वारा निर्मित 'साबीन स्त्रियोंका अपहरण' तथा 'हरकुलीज और दानव' उल्लेखनीय हैं।

पित्ती महल १५ वीं शतीके मध्यमें पित्ती परिवारके लिए ब्रुनेलेस्कीने आरम्भ किया था। किन्तु अनेक परिवर्तनोंके बाद उसे रुगेरीने पूरा किया। अब इसी भवनमें सुप्रसिद्ध 'आधुनिक कला संग्रहालय' है।

रुचेलाई महल अल्बेर्तीकी वास्तुकलाका नमूना है। इसके शिल्पकी विशेष उल्लेखनीय बात प्रकाश और छायाका उपयोग है जिसके द्वारा भवनके कोण और रेखाओंको विशेष उभार दिया गया है।

फ़िरेंज़ेके महलोंसे अधिक प्रभावशाली वहाँके गिरजाघर हैं। यद्यपि इटलीका (और संसारका) सबसे बड़ा गिरजाघर रोमका 'सान् पिएत्रो' है जो कि पोपका विशिष्ठ गिरजाघर है, तथापि भव्यताकी दृष्टिसे और वास्तु-शिल्पकी दृष्टिसे फ़िरेंज़ेके अनेक गिरजाघर अपना महत्त्व रखते हैं। फ़िरेंज़ेका कैथिड्रल 'सानपियेत्रो' के बाद संसारका सबसे बड़ा गिरजाघर

है। इसको कैम्बियोने सन् १२९६ में आरम्भ किया था। किन्तु निर्माण-का कार्य सन् १४३६ में पूरा हुआ। इसके गुम्बदका श्रेय ब्रुनेलेस्कीको है। गिरजाघरके निकटकी मीनार (कैम्पानीले) जियोत्तोने सन् १३३४ में आरम्भ की थी। उसे तैलेन्सीने लगभग पचीस वर्ष बाद पूरा किया।

कैथिड्रलके सम्मुख सान् जियोवानीका बपतिस्मा घर भी उल्लेखनीय है। इसके तीन कांस्य-निर्मित द्वारोंमें एक जो कैथिड्रलकी ओर खुलता है 'स्वर्गका द्वार' कहलाता है। यह नाम मिकेलांजेलोने दिया था।

सान्ताक्रोचेकी चर्चा ऊपर आ चुकी है। सान्ता मरिया नोवेलाका गिरजाघर गिर्लान्दायोके भित्ति-चित्रोंके कारण दर्शनीय है। सान् लोरेंज़ोका गिरजाघर और उससे सम्बद्ध पुस्तकालय भी दर्शनीय हैं। इन इमारतोंके निर्माणमें मिकेलांजेलोका विशेष हाथ रहा।

नगरसे कुछ दूर पहाड़ीपर सान् मिनियाटोका गिरजाघर सन् १०१३ में बनाया गया था। अनन्तर इसमें कई परिवर्तन होते रहे। इस गिरजा-घरके सामनेके चौकसे फ़िरेंज़ेका सुन्दर परिदृश्य दीखता है। यह चौक मिकेलांजेलोके नामसे प्रसिद्ध है और यहाँ इस कलाकारकी बनायी हुई विशाल कांस्य-मूर्तियाँ भी हैं।*

सान् मार्को, बाडिया और ओन्यीसान्तीके गिरजाघर भीतर संगृहीत कला-वस्तु और भित्ति-चित्रोंके लिए दर्शनीय हैं। फ़िलिपो लिपी, देला-रोबिया, बोत्तिचेली, गिर्लान्दायो और सान् जियोवानीके अनेक चित्र इन गिरजाघरोंमें हैं।

पुराने महलोंसे लगे हुए उफ़ित्सी संग्रहालय तथा पित्ती महलमें स्थित पालातीन तथा आधुनिक कला संग्रहालयोंके नाम पहले लिये जा चुके

---

* यहाँ प्रदर्शित 'डेविड' वास्तवमें प्रतिकृति है, असली मूर्त्ति सान् मार्कोके निकट एक संग्रहालयमें है जहाँ दूसरी मूर्त्तियाँ भी हैं।
—लेखक

हैं । उफ़ित्सी संग्रहालय विश्व-भरके सबसे विख्यात संग्रहालयोंमें अपना स्थान रखता है । आरम्भमें मेडिची परिवारके निजी संग्रहकी रक्षाके लिए इसका निर्माण हुआ था । किन्तु शतियोंसे इसका विकास होता रहा है । मूर्त्तिशिल्पके लिए बार्जेलो राष्ट्रीय संग्रहालय अवश्य देखना चाहिए ।

किन्तु गिरजाघरों, महलों और संग्रहालयोंका वर्णन नगरका वर्णन नहीं है । वर्णन मात्र अभीष्ट भी नहीं है; पर फ़िरेंज़ेके अपने रसका आस्वादन करा देनेके लिए—उससे जो रागानुभूति मिली उसकी एक अनुगूँज ही दूसरेके चिदाकाशमें कँपा देनेके लिए—इससे अधिक कुछ चाहिए । संग्रहालयोंमें जो चित्र हैं, उनके प्रतिचित्र थोड़ा और आगे ले जाते हैं—पर सारभूत फ़िरेंज़े उसकी कला-शोभा भी नहीं है । न उसके सुन्दर-सजीले बाजार और हँसमुख युवतियाँ उसके रहस्य तक पहुँचाती हैं, यद्यपि उन्हें देखना कुछ और वहाँके जीवनके निकट जाना है । ब्राउनिंगने 'फ़्लोरेंसके प्राचीन चित्र' आदि कितनी हीं कविताओंमें उस अलग कुछको कह देना चाहा है जो उस नगरीका अपना है; सभी कुछ और आगे ले जाती है पर उससे आगे कुछ और है जो रह जाता है····

फिर नगरीके आस-पासके प्रदेशोंकी सैर—बेलोसगार्दोसे तीसरे पहर देखा हुआ नगरीका परिदृश्य—(कितनी अचूक परख थी ब्राउनिंगकी, जो उस पहाड़ीपर जाकर रुका तो टिक गया, और वहाँसे जीवन पाता रहा !) ····या उत्तरी अन्तिककी पहाड़ियोंमें बिखरे हुए छोटे-छोटे टस्कनीय शैलीके गढ़ या ठियें, गाँव-धर, अंगूरके खेत, जैतूनके बाग, इटालीय देवदारुके बन, फ़िएसोलेके पुराने विहार (मोनास्टरी) को चिन्तन और आत्म-शुद्धिके लिए बनी हुई कोठरियाँ, (और कुछ दूरकी रोमिक रंगशाला) या गिरजाघरके बाहर पहाड़ीकी ढालपर खड़े होकर देखा हुआ फ़िरेंज़े और आर्नो नदीकी घाटीके पारकी गिरि-शृङ्खलाके पीछेका सूर्यास्त···सौन्दर्यबोधसे होनेवाले 'अकारण' दर्दको कालिदासने भी पहचाना था; पर फ़िरेंज़ेका

परिदृश्य उसे मानो हृदयपर गहरा उकेर जाता है····फ़िरेंज़े मैं अपने शब्दों द्वारा दिखा सका, यह मानना मुझे तभी साधार जान पड़ेगा जब मैं उसी दर्दका तीखा जगा दे सकूं ! 'मंस्पर्श बृहत्का उतरा सुर-सरि-सा—हम बह न सके·····' रूपका प्रतिचित्र कोई उपलब्धि नहीं है, उसमेंसे यदि विराट्की वेदना तक पहुँचा जा सके तभी उपलब्धि है ।

> हृदयके भीतरसे
> सहसा कुछ उमड़कर बोला :
> सुन्दरके सम्मुख यह तुम्हारी जो उदासी है—
> वह क्या केवल रूप, रूप, रूपकी प्यासी है ?
> जिसने बस रूप देखा है
> उसने बस—
> भले ही कितनी भी उत्कट लालसासे
> केवल कुछ चाहा है
> जिसने पर दिया अपना है दान
> उसने अपनेको, अपने साथ सबको,
> अपनी सर्वमयताको निबाहा है····

हाँ, विराट्की इस वेदनाको प्रेषित कर सकनेके लिए—'अपनी सर्व-मयताको निबाहने' के लिए—छटपटानेवाला मैं ही अकेला नहीं हूँ, कहीं अधिक प्रतिभाशाली इसीके लिए इसी प्रकार छटपटाये—इसीसे मैं सान्त्वना पा लूँ तो पा लूँ ! अपने सामर्थ्यसे न सही, उन्हींकी प्रतिभाके सहारे मैं अपने ध्येय तक पहुँच जाऊँ, तो भी कुण्ठित नहीं हूँ····



ख़ुदाके मसख़रेके घर : असीसी

स्टेशनसे बढ़कर मारिया देल्यी आंजेली (फ़रिश्तोंवाली मरियम) के गिरजाघरके पाससे, जिसमें वसन्तमें कण्टकहीन गुलाब खिलते हैं और असीसीके सन्त फ्रांसिसकी असीसें लोगों तक पहुँचाते हैं, होती हुई सड़क असीसीकी उपत्यका पार करती हुई, शिखरपर बने हुए प्राचीन दुर्गकी सीढ़ियोंसे कतराती हुई पगडण्डी बनकर जैतूनके उद्यानोंमें खो गयी है। थोड़े अन्तरपर बने हुए दो दुर्ग असीसीकी बस्तीके ऊपर छाये हुए हैं और चारों ओर दूर तक लहराते प्रदेशकी मानो आज भी रखवाली कर रहे हैं। बस्तीके दूसरे छोरपर बना हुआ सन्त फ्रांसिसका गिरजाघर और विहार इस दुर्गसे देखनेपर बहुत छोटा जान पड़ता है और नीचे स्टेशनके निकट बना हुआ देल्यी आंजेली गिरजाघर तो और भी छोटा। पार्थिव सत्ताके प्रतीक सर्वदा पारलौकिक सत्ताके प्रतीकोंसे बड़े होते हैं या होना चाहते हैं। यहाँ तक कि धर्म-सत्ता भी, जिसे पारलौकिक ही होना चाहिए, जब इहलौकिक सत्ताके लोभमें पड़ती है तब उसे भी बड़प्पनका चस्का लग जाता है। रोमका सान् पियेत्रो (सन्त पीटर) गिरजाघर, जो कि पोपका विशिष्ट गिरजाघर होता है, संसारका सबसे बड़ा गिरजाघर है और गिरजेके लिए उससे बड़ी इमारतकी योजनाको रोमकी स्वीकृति नहीं मिल सकती क्योंकि बड़प्पनके पार्थिव लक्षणका महत्त्व अब बहुत हो गया है। सान् पियेत्रोके फ़र्शपर निशान लगाकर संसारके अन्य बड़े गिरजाघरोंकी आनुपातिक लघुता प्रत्येक आगन्तुकके लिए मानो पटियापर लिखकर रख दी गयी है। श्रद्धालु लोग आकर पाते हैं कि छतकी सजावट और फ़र्शपर लिखे हुए पैमाइशी आँकड़ोंकी नापसे नपकर उनकी श्रद्धा मानो बहुत छोटी हो गयी है या

और भी अधिक सकुचाती जा रही है ! भारतमें भी सम्पन्नतर मन्दिरोंमें जानेपर लोगोंका ध्यान ठाकुरकी ओर नहीं बल्कि ठाकुरकी पन्नेकी आँखों या मानिकके तिलककी ओर आकृष्ट किया जाता है क्योंकि मूल्यवान् तो रत्न हैं; ठाकुरका क्या मूल्य हो सकता है !

किन्तु यह जो पगडण्डी बस्तीको पार करती हुई और दुर्गसे क़तराती हुई, ज़ैतूनके उद्यानोंके पार निरन्तर वनाच्छादित शिखरकी ओर बढ़ती गयी है, उसे किसी भी सत्तासे सरोकार नहीं है। वह वास्तवमें पर्वत-शिखरकी ओर भी नहीं बढ़ती। सुवासियो शिखरके एक पार्श्वपर छाये हुए घने जंगलके भीतर एक गलीमें चट्टान काटकर बनायी गयी गुफ़ा-रूपी कुटिया ही उसका लक्ष्य है। बैनेडिक्ट सम्प्रदायके उदासियोंने यह गुफ़ा सन्त फ़्रांसिसको एकान्त वासके लिए भेंट की थी। अब यद्यपि गुफाके साथ कुछ और कोठरियाँ भी बन गयी हैं और 'एरेमो देल्ले कार्चेरी' दर्शनीय स्थान माना जाकर सैलानियोंके लिए प्रस्तुत की गयी सूचना-पुस्तकोंमें स्थान पाने लगा है, तथापि उसका एक कक्ष अब भी वैसी ही असम्पृक्त तटस्थता लिये हुए है। वहाँ पहुँचकर सैलानीको भी हठात् अवाक् हो जाना पड़ता है; जो सन्त फ़्रांसिसके जीवन और साधनासे परिचित हैं, उनका तो कहना ही क्या—वे तो गुफा-द्वारके निकट बने हुए छोटे-से उपासनागृहमें प्रवेश करते न करते विभोर हो जाते हैं। एक गहरा मन्त्रपूत मौन उनके अन्त:करणमें भर जाता है, और मन नीरव निष्कम्प लयमें गा उठता है। सुवासियो शिखरके पथपर ही सन्त फ़्रांसिसको क्रूसपर टँगे हुए ईसाका वह स्वप्न दीखा था जिसके सम्मोहनमें वह ईसासे इतने एकात्म हो गये थे कि उनकी हथेलियों-पर कीलोंके घाव बन गये थे। साधना-गुफाका यात्री श्रद्धा-भरा होकर भी ऐसी एकात्मता तो नहीं प्राप्त कर सकता, लेकिन सन्त फ़्रांसिसका स्नेह-स्पर्श मानो उसे छू जाता है, उनका वह विश्व-प्रेम जो कि गधेको भी 'भाई गधा' और शरीरको दागनेवाली आगको भी 'भाई आग' बना देता था, मानो उसके लिए भी सुलभ हो आता है····

मध्य इटलीका उम्ब्रिया प्रदेश मानो इटलीका वक्ष है; असीसी मानो उम्ब्रियाका और इसलिए इटलीका, हृदय है। इटलीमें नगर-राज्य और छोटे-बड़े देश-राज्य अनेक होते रहे और प्रत्येक राजधानीका अपना-अपना सौन्दर्य है। रोम, फ़िरेंज़े, वैनेत्सिया—तीनोंका सौन्दर्य जगद्विख्यात है। मिलानो, नैपोली और जेनोआ इतने प्रसिद्ध या प्रिय नहीं हैं, पर अपने-अपने समर्थक रखते हैं। अनेक छोटे-छोटे नगर भी हैं, जिनके अलग-अलग हिमायती हैं। ऐसे भी हैं जो कहते हैं कि अगर उन्हें अपने रहनेके लिए संसार-में कोई स्थान चुन लेनेकी छूट हो तो वे पेरूजियामें रहेंगे, या काप्रीमें रहेंगे। किन्तु मैं अपने सम्मुख जब यह विकल्प रखता हूँ तो भारतके बाहर जो दो-तीन स्थान मेरे सम्मुख आते हैं उनमें असीसी कदाचित् पहला है। या यों कहूँ कि यूरोप-भरमेंके जो दो स्थान इस दृष्टिसे मुझे रुचते हैं, असीसी और फ़िरेंज़े हैं। फ़िरेंज़े नगर है, नगरकी सब सुविधाएँ वहाँ मिलती हैं; असीसी छोटी जगह है। किन्तु असीसीमें जो है वह मध्य इटलीमें या उम्ब्रियामें भी और कहीं नहीं है। और इसका श्रेय जितना उसकी भौमिक स्थितिको है, उतना ही सन्त फ़्रांसिसकी छायाको, जो आज भी असीसीके रूपमें इटलीके जीवनको और संवेदनाको मानो अनुच्छायित किये हैं।

यों असीसी पेरूजिया प्रान्तमें ही है, पेरूजियासे पन्द्रह मील दक्षिण-पूर्व। सागर-तलसे उसकी ऊँचाई लगभग १४०० फ़ुट है, दुर्ग प्रायः तीन सौ फ़ुट और ऊँचा है और कार्चेरीकी गुफा बस्तीसे प्रायः एक हज़ार फ़ुट ऊँची है। असीसीसे टेवेरो (टाइबर) और टोपिनो नदियोंकी घाटियाँ दीखती हैं। सारी बस्ती पहाड़की ढालपर बसी हुई है। बारहवीं शतीसे लेकर आधुनिक काल तकके आठ सौ वर्षोंमें बने हुए मकानोंमें ऐसी आश्चर्य-जनक एकरूपता है कि उसका दूसरा उदाहरण कदाचित् संसारमें न होगा। ऐसा जान पड़ता है कि सारी बस्ती एक ही समयमें एक ही वास्तुकारके निर्देशनमें बनायी गयी होगी और वह वास्तुकार भी सतर्क रहा होगा।

क्योंकि सभी इमारतें एक ही सन्दली रंगके पत्थरकी बनी हुई है। आधुनिक नगर-निर्माणमें तरह-तरहके द्रव्योंका और रंगोंका जैसा उपयोग सौन्दर्य और विविधताके लिए अनिवार्य माना जाता है, उसका यहाँ कोई लक्षण नहीं है। वह मानो किसीकी कल्पनामें ही नहीं आया। वास्तवमें विविधताके द्वारा सामञ्जस्य लानेका उद्योग वहाँ अपेक्षित है जहाँ बहुत-सी चीजें अलग-अलग हों और बेमेल हों; जहाँ अधिक-से-अधिक उनके बेमेलपनसे चित्र-विचित्र पैटर्नमें गूँथा जा सके। किन्तु जहाँ है ही इकाई, वहाँ विवि-धताका प्रश्न कैसे उठ सकता है? और असीसी वास्तवमें इकाई है। आज भी उसमें एक विस्मयकारी एक-रूपता और एक-प्राणता है। इसी एक और अखण्ड असीसीकी सड़कों और गलियोंमें सन्त फ्रांसिस अपने रँगीले और मनचले सहचरोंके साथ रंगरेलियाँ करते रहे; यहींपर उन्होंने अपने दिव्य स्वप्न देखे, यहींपर वह कोढ़ीसे गले मिले, यहींपर उन्होंने ईंट-पत्थरों और कीच-कादोंकी बौछारें सहीं, यहीं उन्होंने नाम-गान किया, यहीं डाकुओं द्वारा पकड़े जानेपर अपनेको एक 'राजाधिराजका दूत' बताया और यहीं नगरवासियोंकी ठिठोलियोंके जवाबमें अपनेको खुदाका मसखरा या भाँड़ घोषित किया। यहींपर उन्होंने निर्धनताकी प्रशस्ति की और अन्तमें मृत्युके समय यहीं स्वयं अपने जीर्ण शरीरसे यह कहकर क्षमा माँगी कि "मेरे गधे-भाई, मेरे शरीर, तू मुझे इसके लिए क्षमा कर देना कि मैं इतनी निर्ममता-से तुझे हाँकता रहा हूँ।" सब कुछ बीत जाता है; धार्मिक उत्साह और आवेश भी क्षीण हो जाता है; सेवा-धर्म लुप्त हो जाता है और सेवादारोंके संगठनके रूपमें अपना कंकाल छोड़ जाता है। लेकिन विचार वास्तवमें कभी नहीं मरते, वे समाजों, जातियों और युगोंको नया संस्कार दे जाते हैं। असीसीमें अलग-अलग युगोंके और धर्म-संस्कारोंके आवेश अभी हैं, रोमिक कालके सभा-भवन और देवी-मन्दिर भी हैं, लेकिन असीसीका संस्कार ईसाई संस्कार है, ईसाईमें फ्रांसिसकन संस्कार और फ्रांसिस्कन संस्कारोंमें समूचे जीवनकी एकताका संस्कार।

फ़्रांसिसका जन्म असीसीमें सन् ११८२ में हुआ। मृत्यु भी यहींपर सन् १२२६में हुई। सन् १२२८में उन्हें पोप द्वारा 'सन्त'का पद प्रदान किया गया और उसी वर्ष फ़्रांसिस्कन सम्प्रदायके विहारका निर्माण आरम्भ हुआ। सन् १२५३ में यह पूरा हुआ। सन् १८१८ में इसका तलघर बनाया गया और उस समय सन्त फ़्रांसिसका कफ़न भी वहाँ मिला जिसे अब तलघरमें ही समाधि दी गयी है। विहारके साथका निचला गिरजाघर जिओत्तो, चिमाबुए आदिके बनाये हुए भित्ति-चित्रोंसे अलंकृत है।

फ़्रांसिसका जन्म उच्च मध्यवर्गमें एक सम्पन्न व्यापारीके परिवारमें हुआ। उनका यौवन रंगरेलियों और साहस-कर्मोंमें बीता। आमोद-प्रमोदमें वह असीसी-भरके युवकोंके नेता थे। इक्कीस वर्षकी आयुमें वह असीसीकी रक्षाके लिए युद्धमें गये और बन्दी हुए। एक वर्ष बाद पुनः असीसी लौटनेपर वह सख़्त बीमार हुए। इस बीमारीसे उठनेपर यद्यपि उन्होंने फिर आमोद-प्रमोदका जीवन आरम्भ कर दिया, तथापि यहींसे कदाचित् वह आध्यात्मिक परिवर्तन आरम्भ हुआ जिसने शीघ्र ही बड़े नाटकीय ढंगसे उनके जीवनका ढाँचा बदल दिया। फ़्रांसिसने एक दिन यार-दोस्तोंको दावत दी। खा-पीकर सब लोग मशालें लेकर जलूस बनाकर शहरकी सैरके लिए निकले—फ़्रांसिसको 'रसिकराज' की उपाधि देकर उसका अभिषेक किया गया था और मालाएँ पहनायी गयी थीं और वास्तवमें मशालोंका जलूस इसी अभिषेककी शोभा-यात्रा थी। चलते-चलते अचानक लोगोंने लक्ष्य किया कि फ़्रांसिस उनके मध्यमें नहीं है। खोज हुई, लेकिन कोई पता नहीं मिला। चकित और विमूढ़ जलूस उसी पथसे वापिस लौटा। फ़्रांसिस रास्तेमें निःसंज्ञ पड़े हुए थे—उस निःसंज्ञअवस्थाको मूर्च्छा कहा जाय या समाधि या योगनिद्रा''''जब वह जागे, तब वह फ़्रांसिस नहीं थे। न उनके संगी उन्हें पहचान सकते थे और न वही संगियोंको। किसी भीतरी आघातसे मानो इनका जीवन-यान हठात् किसी दूसरे आयाममें चला गया था और नयी पटरीपर चलने लगा था''''फ़्रांसिसने घर लौटकर एकान्त अपनाया।

फिर रोमकी तीर्थयात्रा की जहाँ सान् पियेत्रोके बाहर एक भिखमंगेके साथ उन्होंने पोशाक बदल ली और चिथड़ोंमें वापिस असीसी लौटे। घर लौटते समय राहमें एक कोढ़ीको देखकर वह ग्लानिसे पीछे हट गये; फिर इस ग्लानिपर भी उन्हें इतनी आत्म-ग्लानि हुई कि लौटकर उन्होंने कोढ़ीका हाथ चूमा और उससे गले मिले।

इस परिवर्तनको फ्रांसिसके संगी-साथी न पहचानें, यह स्वाभाविक ही था। उसकी वे अवज्ञा करें, यह भी अप्रत्याशित नहीं था। उन्होंने राह-चलते फ्रांसिसका ढेलों और कीचड़से सत्कार किया। अपमानित और और विरक्त पिताने फ्रांसिसको उत्तराधिकारसे वंचित करनेका निश्चय किया और बेटेको लेकर असीसीके बिशपके सम्मुख पहुँचे। जब सब समझाना-बुझाना व्यर्थ हुआ और फ्रांसिसको सम्पत्ति-च्युत करनेका दस्तावेज़ तैयार किया जाने लगा, तब फ्रांसिसने अपने शरीरके सब कपड़े उतार कर पिताके सामने रख दिये और कहा, "अब मैं अधिक सच्चाईसे प्रार्थनाका यह पद दोहरा सकता हूँ कि "हे मेरे स्वर्गमें रहनेवाले पिता!" बिशपकी दी हुई पोशाक पहनकर वह गाते हुए सुवासियो पर्वतके जंगलकी ओर चले गये। वनमें उन्हें डाकुओंने पकड़ लिया तो वह खिलखिलाकर हँसे; अपना परिचय उन्होंने यह दिया कि "मैं एक बहुत बड़े राजाधिराज-का दूत और सन्देशवाहक हूँ।"....

तीन वर्ष बाद मारिया देल्यी आंजेली गिरजामें मैथ्यूके एक पाठपर उपदेश देते हुए उन्होंने अपने 'अकिंचनताके सिद्धान्त' की प्रतिष्ठा की। "अपने पथपर सर्वत्र उपदेश दो और कहो कि ईश्वरके राज्यकी प्रतिष्ठा होने वाली है। रोगियोंकी सेवा करो....कोढ़ियोंके घाव धोओ....तुम्हें खुले हाथों जो मिला है उसे खुले हाथों लौटाओ....सोना-चाँदी मत रखो; अंटीमें पैसा न रखो, न झोला, न दूसरी पोशाक, न जूता, न लाठी। जो श्रमिक है वह उतनेका ही अधिकारी है जितना वह श्रमसे कमाता है....।"

असीसीके 'शोधकों' का यह सम्प्रदाय सन् १२०६ अथवा १२१० में स्थापित हुआ। असीसीके नीचेकी समतल भूमिमें बना हुआ 'फ़रिश्तों वाली माता मरियम' का गिरजाघर उपदेशके लिए उन्हें मिल गया। फ्रांसिस और उनके शिष्योंने इसीके आसपास डालें और पत्तियाँ बीनकर छप्पर बना लिये। किन्तु उनके रहनेका कोई निश्चित स्थान नहीं था। निर्धन मजदूरकी भाँति वे मटमैले रंगका एक झोला पहनते, रोज मज़दूरी करके गुज़र करते और गिरजाघरके छज्जों या खलिहानोंमें रात काट देते। ग़रीबों, अपाहिजों, मजदूरों, कोढ़ियों और बहिष्कृतोंके बीच उनका समय कटता और हमेशा वे प्रसन्न भावसे गाते रहते। 'ख़ुदाके मसख़रे' 'ईश्वरके भाँड़,'—अपने लिए इसी नाम और चरित्रका उन्होंने वरण किया था। ईसाका निर्धनताका सिद्धान्त उनका धर्म था; उसका व्यवहार करते हुए सम्पत्ति रखना उनके लिए निषिद्ध था। प्रतिदिन मज़दूरी करके वे भोजन कमाते थे, मजदूरी न मिलनेपर ही भिक्षाकी अनुमति थी। कुछ भी बचाना, कुछ भी जेबमें रखना, धन ग्रहण करना या भीखमें लेना, भविष्यके या आगामी दिनके लिए भी किसी तरहका सामान जुटाना उनके लिए निषिद्ध था। खान-पानका कोई निषेध नहीं था; जो दे दिया जाय उसीको प्रसन्न मनसे ग्रहण किया जाय इतना ही अपेक्षित था।

निःस्वता, आनन्द और रहस्यमय समर्पण—सन्त फ्रांसिसके जीवनके ये तीन बीज-मन्त्र थे। निर्धनताकी स्तुतिमें उन्होंने गाया था, "(क्रूसपर) जहाँ माताने भी तुझे छोड़ दिया, वहाँ भी तेरी निःस्वताने तुझे नहीं छोड़ा, तेरे साथ शूलीपर चढ़ गयी। तू जब प्यासा था तब तेरे लिए उसने विषका प्याला तैयार किया। उसी निःस्वताके आलिंगनमें तू मरा। मरनेपर भी उसने तेरा साथ न छोड़ा, क्योंकि तेरी देहकी मँगनीकी क़ब्रके सिवाय दूसरा ठौर न मिला···· ओ निःस्वतम, ओ निःस्वतम यीशु, चरम निःस्वताकी यह निधि तू मुझे प्रदान कर····

आनन्दका सिद्धान्त सभीको उनका आत्मीय और सुहृद् बनाता था;

निर्जीव वस्तुएँ भी उनके लिए भाई और बहन थीं। अन्तिम बीमारीमें रोगी अंगको दागनेके लिए लोहेकी सलाख गर्म की गयी तब उन्होंने उसका भी उसी मुदित भावसे स्वागत किया—"भाई आग, मेरे साथ दयाका ही व्यवहार करना !" राह-चलते वह रुककर पक्षियोंको भी उपदेश देते थे, और उनके भक्त मानते हैं कि पक्षी चुपचाप उनकी बात सुनते थे।

शरीरके साथ उनका जैसा अनासक्त सम्बन्ध था वह सच्चे जितेन्द्रिय-का ही हो सकता है। मृत्युके समय करुणा-विगलित भावसे उन्होंने स्वयं अपनी देहसे क्षमा माँगी थी। अन्तिम दिनोंमें वह अन्धप्रायः हो गये थे, लेकिन इससे उनके आनन्द-विभोर भावको या स्तवगानको कोई आघात नहीं पहुँचा। खुदाका यह मसखरा हँसता-गाता हुआ ही अन्तमें स्वयं अपने आनन्द और अपनी आस्थामें विलीन हो गया।....

सुवासियो शिखरके नीचे वन-प्रदेशमें खोया हुआ कार्चेरीका गुफ़ा-विहार अब भी ज्योंका-त्यों खड़ा है। सायं-प्रातः गन्ध-द्रव्योंका धुआँ उसके पूजागृहसे उठता और वन-गन्धोंमें विलीन हो जाता है। जिन पक्षियोंको सन्त फ्रांसिस उपदेश देते थे उनके वंशधर गुफाके आसपास कूजन करते हैं और चुप हो जाते हैं। यह एक परम्परा है—असम्पृक्त, आत्मस्थ और किसी अलौकिक स्वरके साथ एक-तान।

दूसरी ओर असीसीकी बस्तीकी चहल-पहल है, रोमिक कालके मन्दिर-के अवशेषसे सटा हुआ नया नगर-भवन है, रोमिक कालकी वापीके निकट सड़क बनाते हुए आधुनिक इंजन हैं; और बस्तीके सिरेपर बस्तीसे विमुख फ्रांसिस्कन सम्प्रदायका विहार और गिरजाघर है। बीचमें ऊँचाईपर उजड़ा हुआ दुर्ग है, अब बिलकुल निर्जन, किन्तु फिर भी अपनी अतीत सत्ताकी सूचना देता हुआ। ये सब भी एक परम्परामें बँधे हैं। किन्तु यह परम्परा असम्पृक्त नहीं है; ऐतिहासिक होनेके नाते देश-कालसे और मानवीय-राग-विरागोंसे निविडताके साथ बँधी है। यह परम्परा आत्मस्थ भी नहीं है

क्योंकि बहिर्मुख और सामाजिक और कर्म-रत है। और उसमें अलौकिक भाव भी नहीं है : हम कृतज्ञ हो सकते हैं तो इसीके लिए कि लौकिक होते हुए भी उसने ऐसी एकतानताका निर्वाह किया है कि असीसी अपने ढंगका एक-मात्र नगर हो गया है। स्टेशनसे ही देखनेपर वह जिस सम्पुंजित एकताका प्रभाव देता है, वह घूमने-फिरनेके बाद भी ज्योंका-त्यों बना रहता है, और यात्री वहाँसे जो प्रसन्न और रसपूरित भाव लेकर लौटता है उसमें जितना योग सन्त फ्रांसिसकी आनन्दपूर्ण तन्मयताका होगा उतना ही असीसीके सस्मित मर्यादा-निर्वाहका भी। अगर लोग सन्त फ्रांसिसको 'दूसरा ईसा' कहते हैं, अथवा असीसीको 'समूचे इटलीके संरक्षक सन्त' का नगर मानते हैं, तो उचित ही करते हैं। यूनान यूरोपीय सभ्यताका पिता है तो इटली उसकी माता है; असीसी उस मातृ-रूपके चेहरेका स्मित भाव है—मुदित, करुणामय और सर्वदा एक-सा वात्सल्य-भरा।···

यूरोपकी छतपर : स्विट्ज़रलैण्ड

दुनियाकी नहीं तो यूरोपकी छत : अपने पर्वतीय प्रदेशके कारण स्विटज़रलैण्डको प्रायः यह नाम दिया जाता था—किन्तु हिमालयको घरके किसी बड़ेकी तरह सहज भावसे जाननेवाले हम भारतवासियोंको यह नाम पहले भी प्रभावित न करता, और अब तो यूरोपके लोगोंको भी नहीं करता क्योंकि इधर उनका भी हिमालयसे परिचय काफ़ी बढ़ गया है। अनेक यूरोपीय देशोंके पर्वतारोही विभिन्न शिखरोंकी चढ़ाईके सफल और असफल आयोजन कर चुके हैं। इसीलिए इंग्लैण्डके स्नोडन शिखरकी चढ़ाईकी चर्चा करते समय एक अंग्रेज अध्यापकने अपनी बात हठात् अधूरी छोड़कर मुझसे कहा था—'अरे, आपसे क्या इसकी बात करें! हिमालयके सामने तो हमारे पहाड़ एक फुंसीके बराबर होंगे।'

पहाड़की ऊँचाईकी तुलनामें भी 'स्विट्ज़रलैण्डके पहाड़ उतने नगण्य तो नहीं हैं। और पहाड़ी समाजोंमें जो एक सहज आत्म-सन्तोष और स्वतः सम्पूर्णता होती है, वह जितनी हमारे देशके पहाड़ी समाजोंमें पायी जा सकती है उतनी ही स्विट्ज़रलैण्डमें भी मिलेगी। फिर भी भारतमें प्रायः जो तुलना की जाती सुनी थी, उसे जब-जब मन दुहराया तब-तब कुछ द्विविधा हुई—यह कहनेको मन नहीं हुआ कि स्विट्ज़रलैण्ड यूरोपका कश्मीर है, या कि कश्मीर भारतका स्विट्ज़रलैण्ड है। एक बार इतना कहा था कि कश्मीरके कुछ प्रदेशोंको साबुनसे खूब धो लें तो कुछ-कुछ स्विट्ज़र-लैण्ड-से लगने लगेंगे। यह बात किसी हद तक ठीक है, पर इसका भी पूरा अभिप्राय उसीकी समझमें आ सकता है जिसने दोनों देशोंको देखा हो। क्योंकि बात केवल इतनी नहीं है कि 'स्विट्ज़रलैण्ड बड़ा साफ़-सुथरा देश

है, या कि वहाँके जीवनका स्तर यूरोपकी भी दृष्टिसे बहुत ऊँचा है। बात इससे कुछ अधिक है। स्विस दृश्यको देखकर उसका अतिशय सौन्दर्य मनमें सजीव-सा जमता नहीं है, कुछ ऐसा जान पड़ता है कि एक रंगीन चित्र देख रहे हैं। मैं नहीं जानता कि ऐसा मेरा ही अनुभव रहा या कि और भारतीयोंका भी ऐसा होता है : यों कुछ ऐसे अति उत्साही भारतीय भी मुझे मिले जो स्विट्जरलैण्डके सौन्दर्यके सामने दुनिया-भरके पहाड़ोंको फूँकसे उड़ा देते हैं, भारतके हिमालयकी तो बात ही क्या ? किन्तु ऐसे तो एक भारतीय राजदूतकी भी बात सुनी थी, जिन्होंने समूचे भारतको ही यूरोपके एक पहाड़ी बँगलेके सामने तुच्छ ठहरा दिया था। जिन यूरोपीय महिलाने यह बात मुझे सुनायी थी—उन्हींसे यह कहा गया था—उन्होंने यह टिप्पणी भी की थी : 'हमारे देशमें भी ऐसे लोग होते हैं तो अपने देशकी बुराई करते रहते हैं—पर हम उन्हें राजदूत बनाकर नहीं भेजते।' पर ऐसे शब्द-धनियोंको छोड़े। मुझे तो जगह-जगह बार-बार, ऐसा लगा मानो सामनेके दृश्यका सौन्दर्य तो स्पष्ट हो, मगर उसकी यथार्थता ही मानो सन्दिग्ध हो। ऐसा क्यों ? सब कुछ मँजा-धुला उजला है; हरी घास मानो सचमुचकी घाससे कुछ ज्यादा हरी है, आकाश सचमुचके आकाशसे कुछ अधिक नीला, शुभ्र मेघखण्ड कुछ अधिक चमकीले, फूल कुछ अधिक रंगीन और इसलिए जैसे उनपर विश्वास नहीं होता, उनसे अपनापा नहीं जुटता। जैसे जिस घरके बैठकेको बहुत अधिक झाड़-पोंछकर और तरतीबसे रखा जाता है, उसमें जाकर प्रभावित होनेपर भी ऐसा नहीं लगता कि यहाँ कोई रहता है जिसके संस्पर्शसे कमरेका वातावरण जीवित है—कुछ ऐसा ही भाव स्विट्जरलैण्डमें बराबर मेरे मनमें रहा। हो सकता है कि मैं ही ज्यादा संवेदन-शील रहा हूँ; पर स्विट्जरलैण्डकी आल्प श्रेणीसे बिलकुल संलग्न इटालियन आल्पोंमें या आस्ट्रियाके पर्वतोंमें ऐसा नहीं लगा—इटलीका परिदृश्य सर्वदा प्रवहमान जीवनसे स्पन्दनशील जान पड़ा।•••

वैसे एक अर्थमें जरूर स्विस पर्वत श्रेणी यूरोपकी छत है : वहाँसे बहा हुआ पानी नदियोंके रूपमें यूरोपके विभिन्न भागोंमेंसे गुजरता है। राइन, रोन, पो और इन्न नदियाँ सब इसी श्रेणीसे प्रसूत होती हैं। इन्न तो शीघ्र ही डैन्यूबमें जा मिलती है : बाक़ी तीनों आस्ट्रिया, जर्मनी, फ्रांस और इटलीके प्रदेशोंको सींचती हुई विभिन्न दिशाओंमें जाती हैं, उनके तट-प्रदेशका अपना अलग-अलग सौन्दर्य है, प्रत्येकके तटकी मुख्य खेती, अंगूरके अलग-अलग नाम और प्रशंसक। स्विटजरलैण्डके प्रदेशमें भी नदियाँ हैं, और नदी तटपर बसी हुई राजधानी बेर्नका सौन्दर्य दर्शनीय है। मुझे वही वहाँका सबसे सुन्दर शहर लगा और उसके बाद बाजल या बाल, जिके नदी-तटकी शोभा निराली है। त्सूरिख (जूरिश) अपने अन्तर्राष्ट्रीय हवाई अड्डे और उद्योगोंके कारण, और जेनीवा अपने अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनोंके कारण अधिक प्रसिद्ध हैं। जेनीवाकी विशाल झील लेमाना उसके सौन्दर्यकी वृद्धि करती है, पर इस झीलका भी वास्तवमें दूसरा, अर्थात् लोजानकी ओरका तट अधिक सुन्दर है।

नदियोंके रहते भी स्विटजरलैण्ड नदियोंका नहीं, झीलोंका ही देश है—झीलोंका और पर्वत-शिखरोंका। जेनीवा और लोजान दोनों विशाल लेमान झीलपर बसे हुए अलग-अलग नगर हैं जिनके बीचके छोटे-छोटे गँवइ कसबे अलग हैं : लोग अपनी-अपनी रुचिके अनुसार इन छोटे घाट-पड़ावोंमेंसे कोई एकको, कोई दूसरेको पसन्द करते हैं। किन्तु पूरी झीलकी दृष्टिसे लूसर्नकी झील छोटी होनेपर भी सबसे सुन्दर है। यों लेमान झीलपर लोजानके आस-पाससे दीखनेवाला सूर्यास्त बड़ा सुन्दर हो सकता है, और शियोंकी पुरानी गढ़ी भी—जिसे बायरनकी कविता 'द प्रिज़नर आफ़ शियो' ने प्रसिद्ध कर दिया—बड़ी सुन्दर है। पर लूसर्नके कोने-कोनेपर इतना सौन्दर्य बिखरा पड़ा है, और झीलकी ओरसे आँख हटाये तो गिरि-शिखर-की आवाज इतने मधुर आकर्षक स्वरसे बुला लेती है, कि लूसर्न देखे बिना स्विटजरलैण्ड देखना पूरा नहीं माना जा सकता। मेरे जैसे व्यक्तिको कभी-

कभी यह ज़रूर अनुभव होता कि सर्वत्र टूरिस्टोंकी इतनी भरमार न होती तो कुछ बुरा न होता—पर टूरिस्ट तो आधुनिक जीवनका ज़ुकाम है—जो कभी भी कहीं भी हो सकता है और जिसका कोई इलाज नहीं है। और स्विटज़रलैंडके उद्योगोंमें तो टूरिस्ट उद्योगका बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान है। वहाँकी घड़ियाँ, कैमरे, और अनेक प्रकारकी छोटी मशीनें और उपकरण तो प्रसिद्ध हैं ही, वहाँके डिब्बेके दूध, पनीर, चाकलेट आदिका निर्यात भी दुनिया-भरको होता है और उत्तम कोटिकी दवाइयाँ भी वहाँसे आती हैं, पर इस छोटेसे देशकी सम्पन्नता जितनी इन उद्योगों-पर निर्भर है उतनी है टूरिस्टोंपर : वहाँ इसके लिए जो नाम प्रचलित है वह है 'परदेशी उद्योग'। गर्मियोंमें धूप और खुली हवा, पहाड़ी सैर और झील-झरनोंके स्नानका आकर्षण और जाड़ोंमें बर्फ़के खेलोंका आक-र्षण—इनके कारण प्रतिवर्ष दो लम्बे 'टूरिस्ट सीज़न' हो जाते हैं : इसके अलावा विश्राम या प्राकृतिक चिकित्सा, दूध-मट्ठेके कल्प या जड़ी-बूटियोंकी खोजमें भी लोग आते ही रहते हैं। और यूरोपीय राजनीतिमें अपनी विशेष तटस्थता-नीतिके कारण स्विटज़रलैंड अनेक प्रकारके राजनीतिक सम्पर्क और आदान-प्रदानका भी केन्द्र है। सालमें कम ही दिन ऐसे होते होंगे जब वहाँ कोई-न-कोई कानफ़रेन्स न हो रही हो। जेनीवाका तो नाम ही मानो अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनका पर्याय हो गया है, पर लोज़ान, लोकार्नो, बाजेल सभी इतिहासमें सन्धियों और सम्मेलनोंके कारण प्रसिद्ध हो गये हैं।

स्विटज़रलैण्ड बहुभाषी देश है। जर्मन, फ्रांसीसी और इटालीय, उसके तीन स्पष्ट क्षेत्र हैं : उत्तर और पश्चिमोत्तर जर्मन-भाषी है, पश्चिम और दक्षिण-पश्चिम फ्रेंच-भाषी : दक्षिण-पूर्व इटालियन-भाषी। भाषा अपने-आपमें अलग कुछ चीज़ नहीं होती। उसके साथ संस्कृति, विचार-धाराएँ और प्रवृत्तियाँ और जातिगत सहानुभूतियाँ भी बनी होती हैं और यह त्रिमुखी सम्बन्ध यहाँ भी देखा जा सकता है। उदाहरणतया रोमके पोपकी

विशेष सेनाका प्रत्येक सिपाही स्विटज़रलैण्डके पर्वतीय प्रदेशसे आता है : ये 'स्विस प्रहरी' अपने लम्बे क़द और रंगीन वर्दियोंके लिए भी उतने ही प्रसिद्ध हैं जितने अपने शिष्ट व्यवहारके लिए। स्विटज़रलैण्डमें तीनों भाषाओंको समान राजकीय प्रतिष्ठा दी गयी है, पर वास्तवमें किसी भी प्रदेशमें मुख्य रूपसे एक भाषाका चलन है और गौण रूपसे एक दूसरीका; समान रूपसे त्रिभाषी प्रदेश या समुदाय कहीं नहीं मिलेगा। हमारे जैसे बहुभाषी देशके लिए इसमें कई संकेत हैं। भाषाओंके परस्पर विद्वेषसे मुक्त रहना देशकी उन्नतिके और देशमें एक देशीय भावनाके विकासके लिए आवश्यक है और स्विटज़रलैण्ड इस भाषा-मैत्रीका उत्तम उदाहरण है। लेकिन दूसरी ओर मेरी समझमें यह भी वह सिखाता है कि बिना एक भाषामें पूरी तरह डूबे रचनात्मक साहित्यिक कार्य नहीं हो सकता। क्योंकि भाषा संस्कृतिका जीवन-रस है; जबतक जड़ोंमें सींचा जाकर और रेशे-रेशेमें बहकर वह रस पौधेको पुष्टि न दे, तबतक पौधेपर रंग-बिरंगे काग़ज़ी फूल खोंस देनेसे कुछ नहीं हो सकता। स्विटज़रलैण्डमें बड़े साहित्यकार अधिक नहीं हुए हैं : जो हुए हैं, वे उसकी त्रिभाषिकताके उदाहरण नहीं हैं बल्कि स्पष्टतया एक भाषाके और भाषिक संस्कृतिके वातावरणमें पले हैं—जर्मनके या फ्रेंचके। या फिर ऐसा हुआ है कि बाहरसे आकर जर्मन या फ्रेंच-भाषी साहित्यकार वहाँ बस गये हैं। बिना एक भाषाकी संस्कृतिमें पूरी तरह डूबे हुए, बिना उस भाषाको आत्मसात् किये हुए, कोई बड़ा साहित्य नहीं रचा जा सकता। यह जान लेना हमारे लिए बड़ा ज़रूरी है—जो कि कोई एक परीक्षा पास कर लेनेपर अपनेको भाषाके अधिकारी समझने लगते हैं, या कभी ऐसा भी करते हैं कि किसी भी भारतीय भाषापर अधिकार न होनेके कारण अपनेको बड़े अंग्रेज़ीदाँ ही मान बैठते हैं। दूसरी भाषाएँ जानना बुरा नहीं है और हम लोग दूसरोंकी अपेक्षा जल्दी ही दूसरी भाषा सीख लेते हैं: पर भाषापर वह अधिकार जो सृष्टिका साधन बन सके—वह और चीज़ होती है। वैसा अधिकार एक ही भाषामें मिल सकता है—और

अधिकतर अपनी ही भाषामें मिल सकता है। 'जिन डूबा तिन पाइयाँ गहरे पानी पैठ'—भाषाके सागरके लिए भी उतना ही सच है जितना ज्ञानके : ज्ञानके द्वारा हम सत्यकी वास्तविकताको पहचानते हैं तो भाषाके द्वारा उसकी सुन्दरताको।....

ऊपर पोपके स्विस अंगरक्षकोंकी चर्चा की गयी है। यह सेना स्वेच्छासेवी है, यह कहनेकी तो जरूरत नहीं। स्विटज़रलैण्डकी अपनी छोटी-सी सेनाका संगठन भी उल्लेखनीय है। देशके सभी वयस्कोंको थोड़े दिनकी अनिवार्य सैनिक सेवा देनी पड़ती है—पहली बार पैंतालीस दिन, उसके बाद हर आंतरे वर्ष सोलह दिन और फिर हर चौथे वर्ष नौ दिनके लिए। किन्तु वर्दी और हथियार बराबर लोगोंके पास ही रहते हैं, और समय-समयपर उनका निरीक्षण हो जाता है। और सेनामें सम्पूर्ण लोकतन्त्री व्यवहार होता है—छोटे-बड़ेका भेद नहीं माना जाता है और बहुधा साधारण जीवनके स्वामी और सेवक सेनामें एक साथ और बराबर होकर रहते हैं। ऐसा ही व्यवहार स्कूलोंमें होता है; शिक्षा अनिवार्य है और निरक्षर कोई नहीं है। पहाड़ोंमें कहीं-कहीं तो पुराने ढंगकी गणतन्त्र प्रथाएँ अभीतक चली आती हैं, जैसे कहीं-कहीं पूरे समाज अथवा गणकी सभा होती है जिसमें हर वयस्कको अनिवार्य रूपसे आना पड़ता है और सभाके काममें भाग लेना पड़ता है।

स्विस लोग अपनी लोकतन्त्र प्रवृत्तिका, अपने स्वाधीनता-प्रेम और अपनी शान्ति-प्रियताका बड़ा गर्व करते हैं, और उचित ही करते हैं। उन्होंने संसारको कोई महान् कवि या चित्रकार नहीं दिया, पर एक सभ्य और आधुनिक जीवन-परम्परा तो दी है जिसकी बुनियाद है 'सत्य दया और स्वतन्त्रता'—और कौन कहेगा कि मानव-संस्कृतिके लिए इस देनका कम महत्त्व है ?

❍

एक यूरोपीय चिन्तकसे भेंट

न कोई घण्टी बजी, न गार्डने या इंजनने सीटी दी। समय होते ही गाड़ी धीरे-से चल पड़ी और मेरे लपक कर सवार होते-होते उसकी गति काफ़ी तेज़ हो गयी। बिजलीकी गाड़ियोंको गति पकड़ते देर नहीं लगती। बैठकर सोचा, ठीक ही तो है, स्विटज़रलैण्ड घड़ियोंका देश है और यहाँ सब काम अपने आप समयसे होना चाहिए! समय हुआ और गाड़ी चल पड़ी—सीटीकी क्या ज़रूरत? और जो प्लेटफ़ार्मसे कुछ दूर पर है, उसे भी सीटी सुनकर दौड़नेकी कोई ज़रूरत नहीं है। वह तो जहाँ है वहीं अपनी घड़ी देखकर जान सकता है कि गाड़ी उसे मिलेगी या नहीं मिलेगी।

जेनीवासे निकलते ही दाहिनी ओर लेमान झील दीखने लगी; फिर गाड़ी और झीलके बीचकी ढालू जमीनपर अंगूरकी कटी-छटी लताओंके खेत। आधे घण्टे बाद लोज़ान पहुँचकर हमने झीलका किनारा छोड़ दिया और थोड़ा बायेंको मुड़कर यूरा पर्वत-श्रेणीकी उपत्यकामें पहुँच गये।

मैं जेनीवासे बाज़ल (अथवा फ्रांसीसी उच्चारणसे बा'ल) जा रहा था, जहाँ मुझे कार्ल यास्पर्ससे मिलना था।

अस्तित्ववादमें मेरी दिलचस्पी क्यों रही इसके कारणोंमें जाना आवश्यक नहीं है। हिन्दीके जो परिश्रम-विरोधी सहजवादी आलोचक मुझको ही अस्तित्ववादी और सार्त्रका अनुयायी कह देते हैं उनके सम्मुख तो यह निवेदन करना भी निष्प्रयोजन है कि सार्त्रका साहित्यिक अस्तित्ववाद मेरे लिए विशेष आकर्षक कभी नहीं रहा है, यद्यपि मैंने पढ़ना और समझना उसे भी चाहा जैसे कि अन्य साहित्यिक सिद्धान्तोंको समझना चाहता रहा हूँ। लेकिन उन दो प्रवृत्तियोंमें, जिन्हें 'ईसाई अस्तित्ववाद' और 'वैज्ञानिक

अस्तित्ववाद' कहा जाता है, मेरी विशेष रुचि रही क्योंकि मैं समझता था और अब भी मानता हूँ कि यूरोपकी वर्तमान मन:स्थिति और उसके संकट-को समझनेके लिए इन प्रवृत्तियोंका अध्ययन आवश्यक है। इसीलिए यूनेस्कोके निमित्तसे जब यूरोप जानेका संयोग हुआ तब मैंने भेंट करनेके लिए जिन व्यक्तियोंकी सूची बनायी उसमें गेब्रियल मार्सेल और कार्ल यास्पर्स भी थे। दोनों ही प्रतिष्ठित चिन्तक हैं; किन्तु एकके पीछे कैथो-लिक ईसाई नैतिक चिन्तन है और दूसरेके (यद्यपि दूसरा भी कैथोलिक ईसाई है) विज्ञान और मनस्तत्त्वका गहरा अध्ययन। भारतसे प्रस्थानसे पहले दोनोंकी कुछ कृतियाँ मैं पढ़ गया था और दोनों ही मुझे अच्छी लगी थीं; पर यास्पर्सकी स्पष्ट और सतर्क विचार-पद्धतिने विशेष आकृष्ट किया था।

यूनेस्कोकी मध्यस्थासे भेंटकी व्यवस्था हो गयी थी और दिन तथा समय निश्चित हो गया था और इसीलिए मैं उस विशेष गाड़ीसे बाज़ल जा रहा था जहाँ यास्पर्सका निवास है।

मेरे साथ दुभाषियेके रूपमें फ़ाउलीन क्रिस्टेल स्टेफ़लर थीं। कुमारी स्टेफ़लरसे मेरा परिचय भारतीय दूतावासके अधिकारीने कराया था जिनसे मैंने दुभाषियेकी खोजमें सहायता चाही थी। यास्पर्स यद्यपि अँग्रेजी जानते हैं, तथापि बोलनेमें उन्हें संकोच था। सम्भव है कि उसका कारण यही रहा हो कि कोई भी चिन्तक शब्दोंके सही-सही प्रयोगपर अधिक आग्रह करता है और वैज्ञानिक चिन्तक तो और भी अधिक और इसलिए यास्पर्स अपने विचारोंका अनुवाद स्वयं करना न चाहते रहे हों।

कुमारी स्टेफ़लर मेरे पास भेजी गयीं तो जर्मन-इंग्लिश दुभाषियेके नाते, किन्तु भेंट होनेपर ज्ञात हुआ कि वह हिन्दी भी जानती हैं; बल्कि हाम्बुर्गके दुभाषिया विद्यालयसे उन्होंने अँग्रेजीके साथ हिन्दीका भी डिप्लोमा लिया है। उनकी आकांक्षा यही थी कि दुभाषियेके नाते एशियामें स्थित किसी दूतावासमें उनकी नियुक्ति हो—भारतमें अथवा इन्दोनेसियामें हो

जाय तो कहना क्या । यास्पर्ससे मिलनेका उनका उत्साह मुझसे कुछ कम न था । जर्मन स्वभावकी कल्पनाशीलता उनमें पर्याप्त मात्रामें थी, भारतीय चिन्ता-धाराका आकर्षण भी; और यास्पर्सके प्रति सम्मानका भाव । इसी-लिए जेनीवाके अपने कामसे उन्होंने एक दिनकी छुट्टी ले ली थी और मेरे साथ जा रही थीं ।

बाज़ल पहुँचकर हम लोगोंने अपने-अपने झोले इत्यादि स्टेशनपर ही जमा करा दिये और मुँह-हाथ धोकर बाहर निकल पड़े । यास्पर्सके पतेके अलावा बाज़ल शहरका एक नक़्शा भी हमारे पास था । टैक्सी हमने नहीं ली । एक ट्राममें बैठकर वांछित दिशामें चल पड़े । जिस सड़कपर हमें जाना था वह ट्रामके रास्तेसे कुछ हटकर थी, लेकिन हमारा अनुमान था कि ट्रामके ठियेसे यास्पर्सके घर तक पहुंचनेमें हमें दस मिनट लगेंगे, और उतनी गुंजाइश हमारे पास थी ।

लगभग एक-से मकानोंकी कतारमें नम्बर देखकर हम लोगोंने द्वार खटखटाया । एक सेविकाने आकर द्वार खोला और नाम बतानेपर पीछे आनेका संकेत किया । मकान दोमंज़िला था और यास्पर्सका अध्ययन-कक्ष ऊपरकी मंज़िलमें था ।

परिचय और उपचारके बाद हम लोग आमने-सामने बैठ गये । औप-चारिक बातचीतके दौरानमें भी और बैठनेके बाद कुछ क्षण तक भी मैं यास्पर्सके चेहरेका अध्ययन और कमरेकी व्यवस्थाका पर्यवेक्षण करता रहा था । काठकी दीवारोंके कारण कमरेका धुँधला प्रकाश और भी मद्धिम हो गया था और यास्पर्सका स्वर भी बहुत मृदु और धीमा था । यह सब अच्छा था, लेकिन इससे भी अच्छा था वह भाव जो कि यास्पर्ससे साक्षात् होते ही मेरे मनमें उदित हुआ था ।

चेहरेके भावके अलावा हर-एक व्यक्तित्वका अपना एक पर्यावरण रहता है जो मानो एक अदृश्य प्रभा-मण्डलकी तरह व्यक्तिको घेरे रहता है और उसके साथ-साथ चलता है । पहली भेंटमें ही कभी-कभी जो तीव्र अनुकूल

या प्रतिकूल भाव मनमें उदित हो आते हैं उनका कारण कदाचित् इन प्रभा-मण्डलोंका संस्पर्श या टकराहट ही होता है। यास्पर्ससे मिलते ही एक स्निग्ध अनुकूल भाव मेरे भीतर उदित हुआ जो बातचीतके अन्त तक बना रहा। अन्तःसंघर्ष यूरोपीय चरित्रका अनिवार्य अंग जान पड़ता है और उसकी प्रतिच्छाया प्रत्येक यूरोपीय चेहरेपर दीख जाती है—बल्कि जबसे यूरोपमें उतरा था तबसे बराबर यह प्रश्न मेरे मनमें उठता रहा था कि ये सब लोग ऐसे सन्त्रस्त क्यों दीखते हैं, कौन-सा भीतरी संघर्ष इन्हें खाये जा रहा है—किस समस्याने इनके चित्तको ऐसा विभाजित कर दिया है कि दोनों खण्ड बराबर एक-दूसरेसे तने रहते हैं और किसी स्तर-पर भी उनका मेल नहीं होता? यास्पर्सका चेहरा देखते ही पहली बात जो मेरे मनमें आयी वह यही थी कि यह चेहरा दोहरा नहीं है, यह व्यक्तित्व विभाजित नहीं है। जैसा कि मैंने भेंटके बाद बाहर निकल-कर अपनी द्विभाषिकासे कहा था, "दिस मैन इज एट पीस विद हिम-सैल्फ़।"

पहले प्रश्न यास्पर्सने ही पूछे। "आप यूरोप क्यों आये? यूरोपमें आपको क्यों और क्या दिलचस्पी है?"

मैंने कहा, मेरी दिलचस्पी दोहरी है। एक तो मैं समानताएँ पह-चानने आया हूँ। यूरोपके और हमारे सांस्कृतिक दायमें बहुत-सी चीजों-का साझा है; इतिहास कहीं इस साझीदारीके भावको पुष्ट करता आया है तो कहीं ऐसा खिचाव भी उत्पन्न करता रहा है कि हम उस सम्बन्ध-को भूल जावें या उच्छिन्न कर देना चाहें। मेरी समझमें अपने दायसे निर-न्तर नया सम्बन्ध जोड़ते रहना दोनोंके हितमें है; और उस परिस्थितिमें और भी अधिक, जिसमें व्यापक यन्त्रीकरण दोनोंके बाहरी जीवनको अधिक एक-रूप बनाता जा रहा है और उसको उसके आभ्यन्तर आधारोंसे अलग करता जा रहा है। दूसरी ओर मेरी उतनी ही दिलचस्पी यूरोप-की और हमारी असमानतामें भी है। वह असमानता है, इतना मैं जानता

हूँ, लेकिन उसका ठीक-ठीक निरूपण नहीं कर सकता, न उसको उसके मूल स्रोतों तक ले जा सकता हूँ क्योंकि यूरोपसे मेरा परिचय दूरका ही रहा है ।

यास्पर्सने मेरी बातको स्वीकार करते हुए-से स्वरमें फिर पूछा, "यह असमानता क्या है ?"

मैंने कहा, मेरी समझमें इस समय संसारमें तीन सांस्कृतिक प्रणालियाँ जीवित हैं । एक पश्चिमकी है जो धर्म-विश्वास-प्रधान है । (यूरोपकी यन्त्र-संस्कृतिको छोड़ दीजिए, क्योंकि यन्त्र-संस्कृति हर जगह एक है । वास्तवमें वह संस्कृति नहीं है ।) दूसरे छोरपर चीनी सांस्कृतिक परम्परा है, जिसमें धर्म-विश्वासका कोई महत्त्व ही नहीं है और चर्या ही मुख्य है । यों भी कह लीजिए कि पश्चिमकी संस्कृति ईश्वरपरक है और चीनकी संस्कृति लौकिक । इन दोनोंके बीचमें कहीं हम हैं—भौगोलिक दृष्टिसे भी हम बीचमें हैं ! भारतकी ही संस्कृति ऐसी है कि उसे धर्म-विश्वासमूलक भी कहा जा सकता है और लौकिक भी । हमारे लिए धर्म-विश्वास रहित होकर संस्कृति रह ही नहीं सकती; किन्तु दूसरी ओर संस्कारकी पहचान हम लौकिक आचरणसे ही करते हैं । ईसाईके लिए, जैसा कि मुस्लिमके लिए, धर्म-विश्वासकी एकता और एकरूपता आवश्यक है; वह प्रमाणित हो जाने पर आचरणकी छूट हो जाती है । चीनी परम्परामें आचरणकी एकरूपता अपेक्षित है क्योंकि उससे अलग कोई धर्म-विश्वास है ही नहीं । भारतीय परम्परामें आचरणकी एकता या एकरूपता अपेक्षित है; उसकी प्रतिष्ठा हो जानेपर धर्म-विश्वासमें विविधताकी छूट है—केवल विविधताकी, अनुपस्थितिकी नहीं । यूरोपीय कहते हैं, 'तुम अमुकमें विश्वास करो, फिर आचरण तुम्हारा चाहे ऐसा हो, चाहे वैसा हो ।' भारतीय कहते हैं, 'तुम्हारे आचरणका नियम अमुक है, उसके बाद तुम विश्वास इसमें भी कर सकते हो और उसमें भी कर सकते हो, और दोनोंमें एक साथ भी कर सकते हो ।'

सहसा रुककर मैंने कहा, "लेकिन प्रश्न करने तो मैं आया हूँ। उत्तर आपसे अपेक्षित हैं !"

यास्पर्स मुसकरा दिये। अंग्रेजी वह समझते थे इसलिए मेरी बातकी प्रतिक्रिया उनमें तुरत प्रकट हो जाती थी, किन्तु उनके जर्मनमें दिये गये उत्तरके अनुवादकी मुझे प्रतीक्षा करनी होती थी।

उन्होंने पूछा, "तो भारतके दार्शनिक पश्चिमकी नक़ल क्यों करते हैं ?"

इस प्रश्नका अनुवाद मुझे बताया ही जा रहा था कि उन्होंने और भी कहा, क्या हम लोग भारतवर्षमें राधाकृष्णन्को बहुत बड़ा दार्शनिक मानते हैं ? क्या आनन्दकुमारस्वामीने भी बहुत-सी बातोंमें पश्चिमी चिन्तनके साथ ऐसी रियायत नहीं की है जो उन्हें नहीं करनी चाहिए थी, या कि जिसकी अनुमति उन्हें अपना चिन्तन नहीं देता था ?

मेरे लिए ये प्रश्न कुछ असमंजसकारी थे। मेरा क्षेत्र दर्शन नहीं है। दार्शनिकोंके विचारोंका मैं अपनी ओरसे मूल्यांकन कर सकूँ इसकी योग्यता मैं नहीं रखता और अनिवार्यतः दूसरोंके मतामतपर निर्भर करता हूँ।

मैंने कहा राधाकृष्णन् पश्चिमके लिए पूर्वके भाष्यकार और व्याख्याता हैं। हर किसीका मौलिक चिन्तक होना आवश्यक नहीं है; एकके मौलिक चिन्तनसे दूसरेको अवगत कराना भी महत्त्वका काम है।

यास्पर्सने हलकी मुसकराहटके साथ कहा, "निःसन्देह, निःसन्देह !"

उन्होंने भारतमें कम्युनिज्म और भारतकी तटस्थ नीतिके विषयमें जिज्ञासा प्रकट की। मैंने संक्षेपमें बताया कि भारत संघर्षमें नहीं पड़ना चाहता किन्तु नैतिक मूल्योंके बारेमें उसकी नीति तटस्थताकी नहीं है। मैंने कहा कि यद्यपि व्यक्तिगत रूपसे मेरा स्वभाव ऐसा है कि मैं मनसा जो ठीक समझता हूँ कर्मणा उससे उलझ जाना भी चाहता हूँ, फिर भी मेरी समझमें भारतने जो नीति अपनायी है उससे भिन्न कोई नीति कदाचित् उसके लिए व्यवहार्य न होती। और यह भी हो सकता है कि प्रजातन्त्र-वादके भविष्यके लिए भारतका वर्तमान रवैया ही अधिक हितकर सिद्ध हो।

यास्पर्सने कुछ सोचते हुए-से सिर हिलाया। फिर सहसा मुसकराकर कहा, "लीजिए, अब आपकी बारी है।"

मैं समझा कि उनके प्रश्नोंका उद्देश्य यह भी रहा होगा कि मेरे प्रश्नोंका उत्तर देनेसे पहले स्वयं यह जान लें कि मेरी वैचारिक पृष्ठभूमि क्या है और मेरे राजनीतिक विचारोंकी प्रवृत्ति किधर है।

मैंने कहा, प्रश्न पूछनेसे पहले मैं एक बात स्पष्ट करना चाहता हूँ। मैं दार्शनिक नहीं हूँ। दर्शनका विधिवत् अध्ययन भी मैंने नहीं किया है। मैं केवल लेखक हूँ और मेरी दार्शनिक जिज्ञासाएँ भी लेखककी ही जिज्ञासाएँ हैं। मैं उस दुनियाको समझना चाहता हूँ जिसमे मैं रहता हूँ और लिखता हूँ, जिससे कहानी-उपन्यासके पात्र पाता हूँ; जिसमें उनके चरित्र बनते हैं, उनकी कर्म-पद्धति प्रकट होती है और उनको प्रेरित करनेवाली चिन्तन- और भाव-प्रवृत्तियाँ रूप लेती हैं। जो सच है वह मैं जानूँ, इस शुद्ध दार्शनिक जिज्ञासासे मेरी जिज्ञासा कुछ भिन्न हैं, कि मैं जो लिखूँ वह सच हो। मैं मान लेता हूँ कि यह जिज्ञासा शुद्ध दार्शनिक जिज्ञासासे कुछ घटिया दर्जेकी है।

यास्पर्सने धीरेसे सिर हिलाया।

भेंटकी तैयारी करते समय मैंने कुछ प्रश्न लिख लिये थे तो केवल इसलिए कि बातचीतका क्षेत्र और दिशा अपने सामने स्पष्ट कर रखूँ। उस प्रश्नावलीको देखना या तद्वत् सामने रखना आवश्यक नहीं था। मैंने संघर्ष-विभाजित यूरोपीय चेतनासे ही आरम्भ किया। "यूरोपीय व्यक्ति वैसे क्यों हैं?"

यास्पर्सने नपे-तुले शब्दोंमें उत्तर दिया। "पश्चिमी जीवन ईसाइयतसे कट गया है, यही उसके आन्तरिक तनाव और संघर्षका कारण है। अन्तः-संघर्ष और अनिश्चय-जन्य आशंकासे उसे मुक्त कर सके, ऐसी किसी आस्थासे उसका सम्बन्ध टूट गया है। मध्य कालतक कला और कलाकार धर्मके साथ—बल्कि उसके अनुगत थे। मध्य कालमें संगठित धर्म अर्थात्

चर्चने कलाओं और कलाकारोंको अपदस्थ बल्कि बहिष्कृत कर दिया। तब-से धार्मिक प्रेरणाओंसे कलाका सम्बन्ध टूट गया और कलाकारोंका विकास बिलकुल लौकिक लीकपर होने लगा। साहित्यमें भी संघर्षकी प्रतिष्ठा तभीसे हुई।

मैंने कहा, यह तो मध्य कालके बादकी बात हुई। मध्य कालमें तो ऐसी कोई दूरी या विरोध नहीं था। बल्कि और भी पीछे चलें—ईसा-पूर्व कालमें या ग्रीक कालमें—तब भी तो संघर्षकी प्रतिष्ठा थी?

उन्होंने कहा, "हाँ, ईसा-पूर्व कालमें भी एक अनिश्चय था—आस्थाके आधार उतने दृढ़ नहीं थे। ईसाइयतका भाव आश्वस्त भाव रहा, ईसाई कलाकार आस्थावान् रहे। मध्य कालकी कलाका बुनियादी स्वर अन्तः-संघर्ष और अन्तर्दाहका नहीं है।"

मैंने कहा, ऐतिहासिक बारीकियोंको छोड़ दें तो क्या यह कहना ठीक नहीं होगा कि पश्चिमके और भारतके कला-सम्बन्धी आदर्शमें सदैव एक अन्तर रहा है? भारतका आदर्श है कि लिखना उसीको चाहिए जो संघर्ष-की अवस्था पार करके कहीं पहुँच चुका है, जो समदर्शी और अनासक्त है। इसके विरुद्ध पश्चिमका आदर्श यह रहा है कि केवल संघर्षमें डूबा हुआ और छटपटाता व्यक्ति ही कलाकार हो सकता है।

उन्होंने कहा, "मोटे तौरपर यह बात ठीक है और यह अन्तर पूर्व और पश्चिमकी साहित्य-दृष्टिमें रहा है। पर यूरोपमें मध्य कालके बाद जो नयी प्रवृत्तियाँ दीखीं उनका कारण बहुत कुछ कला-धारा और ईसाई चिन्ता-धाराकी बढ़ती हुई दूरी ही था। रेनेसाँसका बौद्धिक उन्मेष भी, और रोमाण्टिक आन्दोलन भी, उस दूरीके ही पहलू हैं।"

यास्पर्स क्षण-भर चुप रहे। फिर एक नटखट हँसी उनके चेहरेपर खेल आयी और उन्होंने पूछा, "क्या भारतीय लेखक सचमुच वैसे ही होते हैं जैसा कि आपका आदर्श है—समदर्शी और अनासक्त?"

मैंने भी कुछ वैसे ही ढंगसे उत्तर दिया, "जी नहीं, हमारे बहुत-से

लेखक पश्चिमी आदर्शोंकी ओर बढ़ना चाहते हैं—पश्चिमी पोशाकके साथ पश्चिमी चिन्तनके रोगाणु भी वहाँ काफ़ी फैल गये है।"

हम दोनों हँस पड़े। फिर यास्पर्सने कहा, "समकालीन भारतीय साहित्यके बारेमें मेरा ज्ञान बहुत कम है। क्या वास्तवमें भारतीय साहित्यकी मूल प्रवृत्तियाँ पश्चिमसे उतनी भिन्न हैं ? और भारत संघर्षका सिद्धान्त नहीं मानता तो वहाँका रंगमंच कैसा है ? नाटक कैसे होते हैं ?"

मैंने स्वीकार किया कि समकालीन नाटक पश्चिमसे बहुत अधिक प्रभावित हैं; बल्कि कहा जा सकता है कि समकालीन भारतीय नाटक पश्चिमी परम्परामें ही लिखे जाते हैं। इसका एक कारण यह भी है कि यहां रंगमंचकी परम्परा प्रायः नामशेष हो गयी थी; और अब जो हो रहा है वह जितना पुनरुज्जीवन है उससे अधिक रोपण है। रंगमंचपर जो कुछ जीवित बचा था, या मुमूर्षु किन्तु संजीव्य था, वह नाटक नहीं बल्कि दूसरे नाट्य-प्रकार थे जो नृत्य अथवा संगीतसे अधिक सम्बन्ध रखते हैं। किन्तु नाटकको छोड़कर दूसरे साहित्य-प्रकारोंमें नया ऐसा बहुत कुछ मिलेगा जो कि पश्चिमी साहित्यसे मूलतः भिन्न है—प्रभावित होकर भी भिन्न है।

विषय बदलते हुए मैंने अस्तित्ववादियोंकी इस अवधारणाका उल्लेख किया कि मनुष्य अनुभूतियोंको ही प्राथमिकता देने लगा है क्योंकि वह मानता है या पाता है कि यह अस्तित्व ही सब कुछ है। मैंने पूछा, यह दिशा-परिवर्तन या प्रत्यावर्तन क्या इस कारण है कि मानवने आधुनिक भौतिकवादी विज्ञान दर्शनको वन्ध्य पाया है, या अधिकतर इस कारण कि उसने नये विचारवादोंको वन्ध्य पाया है ? विज्ञान और भौतिक प्रगतिने जो आशाएँ बँधायी थीं वे उन्नीसवीं सदीकी बात हैं; पर विचारवादोंने जो आशाएँ उत्पन्न की थीं उनका विकास और विनाश दोनों ही इसी सदीमें हुए, और अस्तित्ववादका प्रचार भी लगभग समकालीन रहा।

"नहीं", यास्पर्स बोले, "उसका कारण यह है कि मानव अनुभव करता

है कि उसको नगण्य बना दिया गया है। नगण्यताका अनुभव ही उसका सबसे अधिक कसकनेवाला अनुभव हो गया है।"

ऐसा तो यास्पर्सने लिखा भी है, वह मैं पढ़ चुका हूँ। मैंने फिर आग्रहपूर्वक पूछा, लेकिन यह नगण्यता क्या वैज्ञानिक प्रगति या दृष्टिका परिणाम हुई, या कि मतवादोंकी? यानी क्या मानवका नगण्य हो जाना वैज्ञानिक प्रगतिका अनिवार्य परिणाम है जो कि सर्वत्र होगा ही; या कि राजनीतिक मतवादोंने ऐसे संगठन उत्पन्न किये हैं जिनमें मानव नगण्य हो गया है?

यास्पर्स कुछ कहनेको हुए और रुक गये; एक अभिप्रायपूर्ण मुसकराहट उनके चेहरेपर दौड़ गयी।

मैंने फिर कहा, वैज्ञानिक यन्त्र-शिल्प सबको एक-सा बनाता है, इस-लिए एक हद तक वह रुचि या व्यक्ति-वैचित्र्यका अर्थ मिटा देता है। लेकिन यन्त्रशिल्पका समान उपयोग करनेवाले मतवादोंमें क्या यह अन्तर नहीं हो सकता कि एक उसका उपयोग करते हुए भर-सक व्यक्तिकी स्व-तन्त्रताको पुष्ट करने या बचानेकी कोशिश करे, और दूसरा इससे ठीक उल्टा प्रयत्न करे?

यास्पर्सकी बातका रूप प्रश्नका-सा था, लेकिन वास्तवमें वह उत्तर थी। "क्या वास्तवमें आधुनिक परिस्थितिमें मानव व्यक्तिको अपनी पसन्दको व्यवहारिक रूप देनेकी छूट है? क्या वह किसी भी महत्त्वके प्रश्नपर इस या उसका वरण कर सकता है? वह अनुभव करता है कि नहीं कर सकता। यही उसका नगण्यताका बोध है। संसारमें ऐसे बहुत लोग हैं जो सर्वसत्तावादको स्वीकार कर लेंगे; इसलिए नहीं कि वे उसे पसन्द करते हैं, केवल इसलिए कि वे अनुभव करते हैं कि उनकी पसन्दका कोई मूल्य नहीं है।"

क्या मैं इस बातको नहीं जानता? क्या इसका दर्द मुझे नहीं है? क्या मेरे देशमें भी ऐसे लोग लाखोंकी संख्यामें नहीं होंगे जो कुछ भी स्वी-

कार लेंगे—इसलिए नहीं कि वे उसे पसन्द करते हैं, केवल इसलिए कि उनमें अपनी पसन्दके लिए प्रयत्न करनेकी प्रवृत्ति ही नहीं रही है क्योंकि उन्होंने अपनेको नगण्य मान लिया है····पर नहीं; जो पसन्दकी बात सोच सकता है उसे उसकी नगण्यता स्वीकार नहीं हो सकती। वरण केवल रुचि-का प्रश्न नहीं है, नैतिक कर्तव्य है।···

मैंने पूछा, चॉयस (वरण) क्या है? हम कैसे जानते हैं कि हमने उसके अधिकारका प्रयोग किया है? क्या किसी निश्चयसे मिलनेवाला क्लेश ही इसका एक-मात्र प्रमाण नहीं है कि उस निश्चयके लिए हमने वरणका अधिकार बरता है?

यास्पर्सने यद्यपि मेरी बात समझ ही ली थी, तथापि उसके अनुवादके लिए रुके रहे। मैं देखता रहा कि उनके चेहरेपर जो एकाग्रताका भाव है उसका सम्बन्ध उसके सुननेसे नहीं है बल्कि जो कुछ वह सोच रहे हैं उससे है। थोड़ी देर बाद उन्होंने कहा, "लेकिन ऐसी बहुत-सी यातना है जिसके साथ वरणका कोई प्रश्न नहीं है। इस अर्थहीन यातनाका क्या?"

स्पष्ट था कि उनका प्रश्न उत्तरकी अपेक्षा नहीं रखता, क्योंकि वास्तव-में उसके मूलमें असहमति नहीं है।

मैंने कहा, ऐसी कारणहीन और न वरी गयी यातना भारतमें कम नहीं है। लेकिन भारत यातनाको, दुःखको मिथ्या भी तो मानता आया है।

उन्होंने मानो अपने विचारमें ही खोये हुए-से दोहराया, "बहुत-सा दुःख है जो वरण किया हुआ नहीं है। मनुष्य जब अनुभव करता है कि वह नगण्य है तो वह दुःखको भी स्वीकार लेता है। यह वरण नहीं है।"

मैंने पूछा, मैंने वरणका अधिकार बरता या नहीं बरता, या क्या वरण किया, इसका महत्त्व है या नहीं?

उन्होंने सव्यंग्य मुसकराहटके साथ पैंतरा किया। "महत्त्व किसके लिए? मेरे लिए तो है ही क्योंकि परिणाम तो मुझे भोगना है!"

मैंने कहा, अगर एक व्यक्ति वरणका अधिकार बरतता है—अगर यह प्रमाणित हो सकता है कि एक व्यक्तिने उसका उपयोग किया, तो उससे यह सिद्ध होता है कि संसारका कोई भी व्यक्ति वैसा कर सकता है। इस-लिए एक व्यक्तिका कर्म मानव-मात्रकी सम्भाव्य शक्तिका प्रमाण बन जाता है। क्या इस प्रकार हर व्यक्तिके नैतिक विकल्पका महत्त्व मानव-जाति मात्रके लिए नहीं है ?

मैंने कहा, नहीं, मेरे लिए नहीं, सम्पूर्ण मानव जातिके लिए।

उन्होंने असहमति प्रकट की।

मैंने कहा, अगर एक व्यक्ति वरणका अधिकार बरतता है—अगर यह प्रमाणित हो सकता है कि एक व्यक्तिने उसका उपयोग किया, तो उससे यह सिद्ध होता है कि संसारका कोई भी व्यक्ति वैसा कर सकता है। इसलिए एक व्यक्तिका कर्म मानव-मात्रकी सम्भाव्य शक्तिका प्रमाण बन जाता है। क्या इस प्रकार हर व्यक्तिके नैतिक विकल्पका महत्त्व मानव-जाति मात्रके लिए नहीं है ?

उन्होंने इस निरूपणसे सहमति प्रकट करते हुए संकेत किया कि यह प्रश्न वास्तवमें पहले प्रश्नसे भिन्न है। 'मेरे विकल्पका महत्त्व इसलिए है कि उससे सिद्ध होता है कि विकल्प सम्भव है' यह एक बात है; और विक-ल्पका अपना महत्त्व दूसरी बात है।

मेरे प्रश्न अभी चुके नहीं थे। लेकिन कुछ मिनट पहलेसे मुझे यह अनु-भव होने लगा था कि भेंटका समय चुक गया है। इस अनुभवका आधार केवल मेरी घड़ी नहीं थी, यद्यपि उसके अनुसार भी प्रायः डेढ़ घण्टा हो गया था। कुछ देर पहले श्रीमती यास्पर्स भी बगलके कमरेका दरवाज़ा थोड़ा-सा खोलकर झाँककर लौट गयीं थीं; और उसके बाद दूसरे कमरेसे पैरोंकी चापके साथ-साथ काँटे-चम्मच लगाये जानेका हल्का-सा शब्द भी आने लगा था। ये भी संकेत काफ़ी होते। लेकिन वास्तवमें बातचीतमें ही अलक्ष्य रूपसे कुछ ऐसा भाव आ गया था कि वह पूरी होती जा रही है।

मैंने कहा, "मेरे प्रश्न अभी चुके नहीं हैं, बल्कि बातचीतसे कई नये प्रश्न भी उठते हैं। लेकिन मैंने आपका बहुत समय लिया है और आपके अनुग्रहका दुरुपयोग नहीं करना चाहता। आपकी अनुमति हो तो इस वरणकी समस्याके बारेमें केवल एक प्रश्न और पूछना चाहता हूँ।"

उन्होंने अनुमति दी। मैंने पूछा, "पृथ्वीपर हम आये तो अपनी इच्छासे नहीं आये। पार्थिव जीवनका हमने वरण नहीं किया। तब वरणपर आधारित हमारे नीति-शास्त्रका प्रमाण क्या है?"

वह हँस दिये। बोले, "ऐसे कई बिन्दु होते हैं जहाँसे लेखककी खोज का रास्ता दार्शनिकके रास्तेसे अलग हो जाता है।"

स्पष्ट ही मेरा प्रश्न टाल दिया गया था। कदाचित् जल्दीमें उसका कोई उत्तर हो भी नहीं सकता था।

मैंने विदा माँगी और उठ खड़ा हुआ। साथ ही यह भी पूछ लिया कि क्या मैं भविष्यमें लिखकर या दोबारा भेंट करके और प्रश्न पूछ सकता हूँ?

उन्होंने सहर्ष अनुमति दी, पर साथ ही संकेत किया कि वह दो-चार दिन बाद छः सप्ताहके लिए एक दूसरे विश्वविद्यालयमें भाषण देने जाने वाले हैं; भेंट या पत्र-व्यवहार उसके बाद ही हो सकेगा। कुमारी स्टेफ़लर को उन्होंने धन्यवाद दिया और फिर मेरी ओर उन्मुख होकर उनके विषयमें कुछ कहा। अनुवाद करनेमें द्विभाषिकाको कुछ झिझकते पाकर मैंने हँसकर कहा, "मैं समझ गया, आप अनुवाद चाहे न भी करें!" यास्पर्स मुझे बधाई दे रहे थे कि मैं बहुत योग्य और निष्ठावान् दुभाषिया साथ लेकर आया हूँ।

नमस्कार करके हम लोग बाहर सड़कपर आ गये, और थोड़ी देर बाद ही ट्राम और रेलके शोर-भरे वातावरण में।

× × ×

कुमारी स्टेफलरने पूछा, क्या मैं अपनी बात-चीतको लिख डालूँगा ? क्योंकि उस दशामें उसकी एक प्रति वह भी चाहेंगी ।

मैंने कहा, मेरे आधे प्रश्न तो बिना पूछे ही रह गये हैं !

वह बोलीं, "हाँ, और मेरी समझमें वरण वाले प्रश्न का ठीक उत्तर उन्होंने नहीं दिया—मैं उनसे इससे कुछ अधिकको आशा करती थी ।"

मैं भी करता था । लेकिन यह भी समझ रहा था कि ये प्रश्न ऐसे नहीं थे कि उनका सीधा-साधा संक्षिप्त उत्तर दिया जा सके । यह मैं मानता हूँ कि बड़ी बात छोटेमें कही जा सकती है, बल्कि छोटेमें ही कही जा सकती है; पर वह इसलिए कि सूत्रका अर्थ केवल उसके शब्दोंमें नहीं होता, उसके पीछेके संस्कारमें होता है । और अर्थके साझीदार होनेके लिए पहले संस्कारका साझीदार होना होता है ।

लौटनेसे पहले हम लोग बाज़ल नगरकी सैर करने गये । नदी तटपर बसे हुए नगर यूरोपमें अनेक हैं; लेकिन उनमें बाज़ल वैसा ही विलक्षण है जैसा भारतके नगरोंमें बनारस । हमलोग नदीके उसपार जाकर (उस पार अधिकतर बंगले हैं जो छोटे हैं, जबकि स्टेशनवाली ओरका नदी-तट विशाल भवनों और अट्टालिकाओंसे छाया हुआ है) तटकी गोलाईपरसे झरता हुआ प्रकाश और नदी-स्रोतपर उसकी झलमलाती प्रतिच्छवियाँ देखते रहे ।

मैं मन-ही-मन यास्पर्ससे हो चुकी बातोंका प्रतिस्मरण करता हुआ नये प्रश्न सोचता रहा ।

हमारे अनुभवका मूल्य क्या है ? प्रमाण क्या है ?—केवल गोचर अनुभूति ?

—या दुःख ?

दुःख वरणका प्रमाण है, इसलिए स्वातन्त्र्यका प्रमाण है ।

—लेकिन जो दुःख वरा नहीं गया है वह ?

—लेकिन दुःख तो माया है । संसार भी माया है ।

—तब वरण भी भ्रम है और स्वातन्त्र्य भी धोखा है।

—तब कुछ नहीं है। 'कुछ-नहीं'का डर····—अच्छी बात है, डर भी मिथ्या है, किन्तु वह है।····

क्या जडवादके बिना भी यह स्थिति आती? यह डर होता?

ईसाई परलोक मानते हैं, जीवनोत्तर दूसरा जीवन मानते हैं। हिन्दू भी परलोक मानते हैं, जन्मोत्तर दूसरा जन्म मानते हैं। बौद्ध, अन्तमें जीवन-मरणके क्रमसे छुटकारा मानते हैं—निर्वाणकी, न-होनेकी एक अवस्था।—पुनर्जन्म या परजन्म मैं नहीं मान पाता, क्योंकि वह, और इस जीवनमें वरणका अधिकार, मेल नहीं खाते। अगर इस जीवनमें वरण होता है तो किसी दूसरे जीवनकी कोई जरूरत नहीं है बल्कि दूसरे जीवनकी कल्पना वरणको अर्थहीन कर देती है····

—लेकिन न-कुछकी, अनस्तित्वकी कल्पना हमें तो आतंकित नहीं करती? बौद्धोंका निर्वाण आतंककारी नहीं है। फिर पश्चिममें यह आतंक क्यों है?

अनस्तित्वका अर्थ क्या है यदि सभी काल समवर्ती हैं? भूत और भविष्यत् भी यदि साथ वर्तमान हैं, तो होना और न-होना भी समवर्ती हैं। फिर डर क्यों?—मैं इस डरको नहीं जानता। तो क्या मैं जीवनको नहीं जानता?

जिनमें आस्था थी, या है, उन्हें यह डर नहीं था, न होता है।—पर अपनेको आस्तिक कहते मुझे संकोच होता है, यद्यपि मैं जानता हूँ कि मैं नास्तिक भी नहीं हूँ। किसी भविष्यत् जीवनमें मेरा विश्वास नहीं है; लेकिन उससे इस जीवनके बाद जो 'न-कुछकी स्थिति' सिद्ध होती है उसका मुझे डर भी नहीं है। आशा मुझमें नहीं है, लेकिन आतंक भी मुझमें नहीं है।····

× × ×

बाज़लमें नदीके उस पार कोई बोधिवृक्ष नहीं है। मैं अपने प्रश्नोंके साथ ही वहाँसे लौट आया हूँ। मैं यास्पर्ससे बहुत-से प्रश्न पूछना चाहता हूँ। यास्पर्ससे ही नहीं, बहुत-से दार्शनिकों, वैज्ञानिकों, चिन्तकों, लेखकों, चिन्तामुक्त सन्तों, आवारों और पागलोंसे भी बहुत-से प्रश्न पूछना चाहता हूँ। सबसे मुझे अनुमति नहीं मिली है; पर जिनसे मिली भी है उनसे भी अभी पूछ नहीं पाया हूँ—क्योंकि अभी ठीक-ठीक प्रश्नोंका निरूपण ही नहीं कर पाया हूँ। अल्लाहके निन्यानबे नाम हैं, क्योंकि सौवें नाममें ये सब नाम समा जाते हैं और जो उसका उच्चारण कर सकता है वह अल्लाहको पा लेता है। इसी तरह निन्यानबे प्रश्न हैं क्योंकि सौवें एक प्रश्नमें ये सभी समा जाते हैं और जो उस सौवें प्रश्नका निरूपण कर लेता है वह सब जिज्ञासाओंका उत्तर पा लेता है।···

इस प्रकार हम फिर जेनेवा लौट आये, जहाँसे गाड़ियाँ बिना सीटी दिये छूटती हैं, सब काम ठीक-ठीक घड़ीकी मशीनकी तरह चलता है और प्रश्न कोई सतहपर नहीं आते।····

'तो यह पैरिस है !'

जिस प्रकार आगरेका प्रतीक ताजमहल है या दिल्लीका कुतुबकी लाट उसी प्रकार पैरिसका विश्वविज्ञापित प्रतीक नोत्रदामके भव्य गिरजाघरके ऊपरसे झाँकता हुआ एक अपरूप कीर्तिमुख है—एक शैतानका चेहरा, जो हाथपर ठोड़ी टेके, एक विचित्र अवहेलनासे भरी हुई विकृत मुसकान के साथ नीचे बिछे विशाल नगरको देख रहा है। प्रायः यह चित्र जिस शीर्षकके साथ छपता है, वह मानो उस मुसकानकी—उसे मुसकान कहना भी चाहिए या केवल मुँहकी बिचकाहट, यह चिन्त्य है—व्याख्या करता है: 'तो यह पैरिस है।'

जी हाँ, तो यह पैरिस है। पत्थरके बने हुए कीर्तिमुखकी लार नहीं टपकती, नहीं तो वह वास्तवमें सम्पूर्ण प्रतीक हो जाता : क्योंकि और जगह चाहे जो होता या हो सकता हो, पैरिसके मामलेमें आकर्षणकी विकृति और विकृतिके आकर्षणको पृथक् करना सम्भव नहीं है। पैरिसका प्रेमी अनिवार्य रूपसे एक प्रबल आकर्षणमें बँधा और उस बन्धनको माननेपर अपने प्रति ग्लानिसे भरा हुआ होता है : इस आकर्षणको वह घातक मानता है किन्तु साथ ही जानता है कि वह उसके बिना जी नहीं सकता। कैसा घातक है वह विष जिसके बिना कोई जी न सके ! दिल्लीके लड्डू तो सुनते आये हैं, पर उनके साथ दोनों तरफ़ जो पछताना बँधा हुआ है वह भी उतना ही फीका है जितने कि लड्डू; पर पैरिस—पैरिसका काटा पानी नहीं माँगता—क्योंकि वह माँगता है और वही विष जिससे वह डँसा गया है, हाँ, उसमें थोड़ी शराब भी मिली हो तो कोई मुजायका नहीं, उससे आत्म-प्रतारणाकी चरपराहट थोड़ी मीठी सी हो जायेगी।

यों पैरिस यूरोपके सुन्दरतम नगरोंमेंसे एक है, इसमें सन्देह नहीं। किन्तु जैसा कि मुझसे एक फ्रेंच भाषिणी किन्तु मूलतः इतरदेशीय महिलाने पैरिस-की सफ़ाई देते हुए कहा था, "पैरिस बहुत सुन्दर है—पैरिसियन लोगोंके बावजूद।" अगर नगरका सौन्दर्य उसके वास्तविक नागरिकोंका प्रतिबिम्ब होता है, तब तो इन लड्डुओंको बिना खाये पछताना ही श्रेयस्कर है। लेकिन अगर सुन्दर सजे हुए बाज़ार, अच्छी काटकी पोशाकें, बाग-बगीचे, कोने-कोनेपर फूलोंकी दुकानें, रंग-बिरंगे चन्दोवे और उनके नीचे सुरुचि से बिठायी हुई मेज-कुर्सियाँ जिनपर आप खुली हवामें बैठे-बैठे कहवा या वारुणीका सेवन करते हुए 'जगका मुजारा' ले सकते हैं, विशालकाय पेड़, सुन्दर स्थापत्यके बड़े-बड़े भवन, सुदीर्घ नदी-तट, कुंजों और चौराहों-पर खड़ी भव्य कला-मूर्तियाँ, खिड़कियों-चौबारोंसे झूलते हुए फूल-भरे गमले, चौबीस घंटेकी जगमगाहट, विराट नाट्य और नृत्यशालाएँ, बढ़ियासे-बढ़िया सुगन्ध-द्रव्य और शृंगार-साधन, जगद्विख्यात पाट कला, दर्जनों कला-संग्रहालय, बीसियों पुस्तकालय, पचासों रंग-शालाएँ, सैकड़ों प्रमोद-गृह जहाँ आप करतब दिखाने वाली मक्खियोंसे लेकर आवरणहीनताकी विभिन्न श्रेणियोंपर अश्लीलताके विभिन्न स्तरोंके हाव दिखाती हुई नर्तकियों तक सभी तरहके कौतुक देख सकते हैं—अगर इन सब चीजोंसे नगरका सौन्दर्य बनता है, तब निस्सन्देह पैरिस सरीखा सुन्दर दूसरा नगर खोजे नहीं मिलेगा। और यह सौन्दर्य भी अपनी पराकाष्ठापर होता है वसन्त ऋतुमें या शरद् ऋतुमें—अप्रैल-मईमें और अक्तूबर-नवम्बरमें। मुझे इन दोनों ही ऋतुओंमें वहाँ जानेका सुयोग मिला, इसके अतिरिक्त अगस्त और दिसम्बरमें भी पैरिसका रूप मैंने देखा; इसलिए अपने कथनकी पुष्टि कर सकता हूँ। विशेष कर अक्टूबर-नवम्बरका समय ही पैरिसके लिए सर्वाधिक उपयुक्त है : शरत्कालके विविध रंगोंकी कल्पना भी कठिन है और उन दिनों पैरिसके किसी उपवनमें—यथा सुप्रसिद्ध बोआ द बूलोन्य-में बैठकर घंटों पेड़ोंके पत्तोंको देखा जा सकता है और एक-एक करके

झरे हुए पत्तोंकी गन्धपर पैरिसके असंख्य इत्र और सेंटोंको निछावर किया जा सकता है। पैरिसके आस-पासके सुरक्षित वन भी अक्टूबरमें दर्शनीय होते हैं, यथा पैरिससे शार्त्र होके (जहाँका गिरजाघर यूरोप-भरकी एक अमूल्य निधि है) मार्गमें पड़ने वाला सैं जर्मेनका वन। यह दूसरी बात है कि पैरिसवासी इन स्थानोंपर वन-विहार आदिके लिए इससे कुछ पहलेकी ऋतुमें ही जाता है जब ओट घनी हो, पैरोंके नीचे पत्तोंकी खड़खड़ाहट कम हो, और देर रात तक भी बैठनेके लिए ठंड अधिक न हो। किन्तु बाहरसे लोग पैरिस प्रकृतिका आनन्द उठाने नहीं जाते, और प्रकृतिके मामलेमें पैरिसवासीको मार्ग-दर्शक मानना तो मूर्खता होगी। वह जिस सौन्दर्य-सुषमाका पारखी है वह दूसरी ही होती है।

यह दूसरी 'सुषमा' भी शरत्कालमें पैरिसपर छा जाती है। अगस्त का उजाड़ सन्नाटा दूर हो जाता है : आपेरा और नाटक घर नये सीजन के लिए खुल जाते हैं, सड़कें विदेशी सैलानियोंसे वैसे ही भर जाती हैं जैसे कांच-मढ़ी दुकानें नयी पोशाकों और नये ढंगसे सजायी हुई सेंटकी बोतलोंसे, कहवाघरोंमें फ्रांसीसी भाषाकी नकियाहटके ऊपर अमरीकी अंग्रेजीकी और भी कर्णकटु नकियाहट सुनाई पड़ने लगती है। और रातको राह चलना कठिन हो जाता है : हर मोड़-चौराहेपर तीखी सुगन्धोंसे महकती हुई अपरिचिताएँ 'बों-स्वार'के फ्रांसीसी अभिवादनके साथ 'गुड टाइम, डीयरी ?' का अंग्रेजी प्रलोभन देती निकल आती हैं। और बढ़ती रातके साथ-साथ उनका आग्रह और उनकी उद्दण्डता भी बढ़ती जाती है.... यद्यपि इस सबका भी अधिकांश विदेशी सैलानीके लिए ही है, जैसे कि दिनमें शहरके कुछ इलाकोंमें प्रत्येक यात्रा-एजेंसीके बाहर घूमनेवाले वे घिनौने लोग, जो केंकड़ेकी तरह एक ओरको चलते हुए पास आकर हाथमें ताशके पत्ते-सा छिपा हुआ कुछ दिखाते हुए कानमें कह जाते हैं 'डर्टी पिक्चर्स ?' तथापि इसमें सन्देह नहीं कि पैरिसवासी भी जीवनका आरम्भ साँझसे ही मानता है—यह दूसरी बात है कि उस जीवनका भोग करनेका

अवसर हर किसीको न मिले या प्रतिदिन न मिले : जीविकोपार्जनकी और घर-गिरस्तीकी चिन्ताएँ उसे सिर न उठाने दें।

पैरिसके रातके जीवनकी बातें तो सारी दुनियाने सुन रखी हैं। किन्तु उससे आकृष्ट होकर आनेवालेको सुविधाएँ भी तो मिलनी चाहिए? और सुविधाके लिए वह अतिरिक्त व्यय भी तो करनेको तैयार है। आपेरा, सिनेमा, नाटक आदिके टिकट स्वयं खरीद सकना पैरिसमें आसान नहीं है, अतः इसके लिए एजेंसियाँ हैं जो टिकट प्राप्त करनेके लिए पन्द्रहसे पचीस प्रतिशत तक कमीशन लेती हैं। यात्री अनिवार्यतया इनकी शरण जाता है। कहवाघरों-होटलोंमें बिलपर १५ प्रतिशत बक्शीशके रूपमें स्वयं जोड़ लिया जाता है, यात्री प्रायः इसके ऊपर भी कुछ देनेको अपनेको लाचार समझते हैं। साधारण होटलों तकमें 'मेज़ लगानेका चार्ज' इससे अलग होता है, और हाथ पोंछनेके लिए जो नैपकिन दिया जाता है उसका अलग। एजेंसियाँ आपको सैर करानेके लिए गाइड भी दे सकती हैं : इसके लिए एजेंसियाँ जो लेती हैं उसके अतिरिक्त गाइडको भी कुछ देना ही होता है। गाइड प्रायः स्त्री होती है—यही सैलानी पसन्द भी करते हैं—और इस अवस्थामें उसके घूमने-फिरने, कहवा-पानी, भोजन-मनोरंजन आदिका व्यय भी सब देना ही होता है। ऐसी गाइड स्त्रियाँ एजेंसियोंसे अलग भी सहज ही मिल जाती हैं। बहुधा ऐसी मार्ग-दर्शिकाएँ उन होटलों या रातके क्लबघरोंसे भी कुछ प्राप्त करती हैं जहाँ वे यात्रियोंको ले जाती हैं। लेकिन वह जो हो, इनकी जानकारीके विषयमें सन्देहकी गुंजाइश नहीं, सैलानी कितनी भी अद्भुत चीज़की फ़रमाइश क्यों न करे, वह कहाँ प्राप्य होगी ये गाइड महिलाएँ बता सकेंगी। फिर वह पैरिसका प्राचीनतम गिरजाघर हो, या कि चौबीस घण्टे खुला रहनेवाला होटल, या कि वह रैस्तराँ जहाँ मुर्गेपर आपका नम्बर लगाकर उसे पकाया जाता है या जहाँ आप अपनी पसन्दका मेंढक चुनकर उसकी टाँगोंकी तरकारी खा सकते हैं, या वह बाज़ार जहाँ मक्खियाँ बिकती हैं, या वह नाचघर जहाँ सुप्रसिद्ध

साहित्यकार और कलाकार लड़कोंके गलेमें हाथ डालकर नाचते हैं। ये सब चीजें तो केवल कौतूहलकी वस्तुएँ भी हो सकती हैं, लेकिन टूरिस्टकी रुचि निरे कौतूहलसे अधिक भी हो सकती है : तो उसकी जिज्ञासाके शमन या वासनाकी तृप्तिके उपाय भी पैरिसमें लभ्य हैं और उनके भी गाइड मिल जायेंगे। कोई व्यसन या विकृति ऐसी न होगी जिसकी मानव कल्पना कर सका हो जिसके उपकरण पैरिसमें न मिल सकते हों, और यह भी नहीं है कि वे सदैव बहुत मँहगे ही मिलते हों, जानकारीकी ही जरूरत है। यों सैलानीके पास पैसेका बोझ अधिक हो तो उसे हल्का करनेके कर्तव्यमें पैरिसका विक्रेता या दलाल या गाइड या कोई भी यथा-सम्भव चूक नहीं होने देता। पैरिस यूरोपका कदाचित् सबसे मँहगा शहर है और अनजानके लिए तो वह व्याल-मुखसे कुछ कम नहीं है, फिर भी व्यसनोंकी पूर्ति वहाँ और बड़े शहरोंसे कहीं कम खर्चमें हो सकती है—ऐसे व्यसनोंकी भी जिनकी अन्यत्र चर्चा भी खतरनाक हो, पैसेके सहारे पूर्तिकी बात तो दूर।

संयोग कहिए, कि भाग्यकी कृपा कहिए, इन सब बातोंमें मेरी रुचि सतही जानकारीसे अधिक कभी नहीं रही। कलाकारकी प्रतिभाकी विकृतियोंके मनोवैज्ञानिक अध्ययनकी प्रवृत्ति रही है अवश्य, पर जहाँ तक पैरिसका प्रश्न है, यह प्रवृत्ति निरा किताबीपन है, और इसे लेकर आनेवाला विदेशी, सैलानी-उद्योगके लिए निरा कबाड़ पैरिसमें कबाड़ ! बनकर रहनेमें मुझे ग्लानि नहीं थी, क्योंकि इस प्रकारकी निस्संगतासे मैं और अच्छी तरह उस विशाल, सुन्दर कबाड़खानेको देख सका जो कि पैरिस वास्तवमें है। उस कबाड़में-से कुछ अत्यन्त मूल्यवान् है और संग्रहालयोंमें संगृहीत है, कुछ और एक दूसरी दृष्टिसे उतना ही मूल्यवान् भले ही हो पर जीवन्त होनेके नाते गली-गलीकी ठोकरें खाता फिरता है, यह दूसरी बात है। सचमुच, पैरिस जैसे सौन्दर्य और सौन्दर्य-प्रसाधनका केन्द्र है, वैसे ही जीवित मानवोंका कबाड़खाना भी है, साहित्य और कलाकी नयी सूझका उत्स है, वैसे ही इनकी विकृतियोंका घूरेका भी ढेर है।

कृशांगी, किन्तु तरंग-चपला सेन नदी पैरिस नगरको दो भागोंमें बाँटती है, और नदीके दर्जनों मेहराबदार पुल उन्हें फिर मिलाते हैं। नदी-तटकी सैर पैरिसका एक मुख्य आकर्षण है, अपने सहज सौन्दर्यके लिए भी, और इसलिए भी कि इसी धुरीके आस-पास शहरके प्रेम-जीवनका अपेक्षया प्रीतिकर-अंश घूमता है। दूसरा और कम प्रीतिकर अंश, जिसे कदाचित् प्रेम-जीवनका अंश न कहकर विदग्ध रसिक-जीवन ही कहना चाहिए, शहरकी गलियोंमें बिखरा हुआ है—बहुत बिखरा हुआ भी नहीं, क्योंकि उसके भी दो अलग-अलग घेरे हैं। दक्षिण तटपर मोंमार्त्र, जो सैंक्रेक'रके गिरजाघरके नीचे फैला हुआ एक पुराना मुहल्ला है और पिछले शताधिक वर्षोंसे यूरोपके कला-जीवनका केन्द्र रहा है—कलाके उत्कृष्ट और निकृष्ट दोनों अर्थोंमें। आज भी यहाँकी कौतुक-भरी गलियोंकी पिचपिचमें अनेक चित्रकार, शिल्पी और लेखक अपनी समस्याओंके लिए हल, अपनी वेदनाओंके लिए हाला, और अपनी आत्म-विनाशिनी कुण्ठाके लिए हालाहल ढूँढ़ते हुए रहते हैं: एक मेहराबके नीचे आपको किसी महान् कलाकारका स्टूडियो मिल सकता है; जिसके अगली ही मेहराबके नीचे कोई बदनाम नाचघर या शराबखाना हो सकता है, गलीके नुक्कड़पर एक छोटा-सा देवालय और उसीकी ओटमें रासायनिक नशोंका गैर-कानूनी अड्डा, या कि शव-पूजकोंका दीक्षा-केन्द्र। सेन नदीके दूसरे तटपर—जो 'वाम तट' ही प्रसिद्ध है—सैं मिशेल और सैं जर्मेनके आस-पासका प्रदेश दूसरा केन्द्र है, किन्तु यहाँ मोंमार्त्र जैसी संकरता नहीं है, और यह वास्तवमें स्वच्छन्दता-प्रेमी बुद्धिजीवियोंका (और, हाँ, उनके नकलचियोंका!) प्रदेश है। यहाँ आपको अनेक प्रकारकी आकर्षक और अनाकर्षक दाढ़ियाँ मिलेंगी, फटेहाल किन्तु निष्ठावान् कलाकार, निर्धन किन्तु लगनवाले विद्यार्थी, निस्साधन वैज्ञानिक, रोगी अथवा पंगु शिल्पी, अन्ध-प्राय बहु-भाषाविद्, बधिर-प्राय संगीत-स्रष्टा, वेदान्त और तन्त्र और हठयोगके हठीले साधक, बिना शब्दोंके केवल विराम चिह्नों और अंकोंसे कविता और

बिना तूली या रंगके चिन्दियों और चैलियोंसे चित्र बनानेवाले प्रयोगवादी या दिन-भर कहवा घरमें बैठकर दूसरोंको डाँट-फटकार और गालियाँ सुनाकर प्रतिष्ठापूर्वक (या उसके बिना भी) जीवन-यापन कर देना चाहनेवाले प्रगतिवादी—सब मिल जायेंगे। प्रतिभाकी विकृतियाँ, प्रतिभाकी प्रखर ज्योति-किरणोंसे टकराती और फुल-झड़ियाँ छोड़ती मिलेंगी। किसी कहवाघरमें बैठ जाइये—हर कला या साहित्य-सम्प्रदायका अपना-अपना कहवाघर है। एक ओर दाढ़ी बढ़ाये और उनींदेसे आँखें लाल किये निठल्ले दीखेंगे तो दूसरी ओर कोई कवि तल्लीन भावसे कविता लिखता भी दीख जायेगा; बेला बजाकर पैसे माँगती हुई हँसमुख यायावर (जिप्सी) कन्यासे छेड़खानी करते मनचले दीखेंगे, तो जाते-जाते उसके हाथोंकी मुद्राओं, उसके नासामूलपर थकानकी सूक्ष्मतम रेखाओं, उसकी स्थिर मुसकराहटमें छिपे नाना विरोधी भावोंकी संकुलताओंके दर्जनों द्रुत स्केच बना लेनेवाले सजग चित्र-शिल्पी भी दीख जायेंगे; और गोरे, काले, भूरे, पीले सभी वर्णोंकी त्वचाएँ; गोल, लम्बी, कंजी, भूरी, नीली, काली सभी प्रकारकी आँखें.... वर्ण-भेद और जाति-भेदका जितना कम प्रभाव पैरिसमें दीखता है, उतना किसी दूसरे यूरोपीय शहरमें नहीं। इस अर्थमें पैरिस सचमुच स्वतन्त्र नगर है और यह सहज ही समझमें आता है कि क्यों स्वातन्त्र्य-प्रेमी कलाकार सहज ही पैरिसकी ओर उन्मुख होता है और पैरिसमें एक बार जम जाये तो हटनेकी बात नहीं सोचता, हटता है तो बाध्य होकर ही और निरन्तर वहाँ लौटनेके स्वप्न देखते हुए। पैरिसकी स्मृति एक टीस-सी हमेशाके लिए उसके साथ रह जाती है।

लेकिन इस स्वतन्त्रताकी थोड़ी और गहरी पड़ताल करें तो धीरे-धीरे कई बातें लक्षित होने लगती हैं। वर्ण-भेद और रंग-भेद पैरिसमें बहुत कम है, इसके कारण जहाँ एक ओर उदारता है वहाँ दूसरी ओर उपेक्षा भी है। कोई क्या करता है, क्या पहनता है, क्या खाता-पीता है, इसपर पैरिसवासी टीका-टिप्पणी नहीं करते, उनकी तरफ़से सबको खुली छूट है

कि जो जैसा चाहे खाये, पहने, कहे, सोचे, करे। एक ओर इसकी जड़में यह विश्वास है कि मानव व्यक्तिको इस मामलेमें आत्म-निर्णयका अधिकार होना चाहिए और उसपर टीका-टिप्पणी करना या उसको बदलना चाहना अनधिकृत हस्तक्षेप है। दूसरी ओर इसकी जड़में दूसरे मानवोंके प्रति एक गहरी उदासीनता है। 'कोई क्या करता है, इसमें हमें क्या? कौन जीता-मरता है, इससे हमें क्या? जो जिसके मनमें आये करे या न करे, हमें क्या? हमने सबका ठेका थोड़े ही लिया है।' इसलिए जहाँ पैरिस संसारका सबसे स्वतन्त्र नगर है वहाँ यह भी कहना शायद अन्याय नहीं होगा कि वह संसारका सबसे हृदयहीन शहर है। यह तो है ही कि मानव प्राचीन समाजमें कभी उतना अकेला नहीं हुआ जितना आजके यन्त्र-समाजमें हो गया है—आज हर व्यक्ति भीड़में अकेला है और हर भीड़ अकेलोंकी भीड़ है—किन्तु इसके आगे भी ऐसा लगता है कि अकेला व्यक्ति पैरिसमें जितना अकेला हो सकता है उतना संसारमें कहीं नहीं।

इसीका एक पहलू और भी है। पैरिसवासीको अपनी भाषा और संस्कृतिका अभिमान है। अभिमान अपने आपमें अनिवार्यतया बुरा नहीं है, और भाषा या संस्कृतिका अभिमान तो बहुत हदतक अच्छा ही है। लेकिन फ्रांसमें यह परस्पर व्यवहारमें बाधक हो जाता है। इटलीमें आप वहाँकी भाषा न जानें तो आपको इसके लिए पूरा प्रोत्साहन मिलेगा कि आप टूटी-फूटी भाषामें ही अपनेको अभिव्यक्त कर सकें। और इसके लिए इटालियन व्यक्ति स्वयं टूटी-फूटी इटालियन या कोई भी और भाषा बोलनेको तैयार होगा। उसके साथ उसका हँसमुख भाव यह कहता जान पड़ता है कि—'हम लोग एक भाषा नहीं बोलते तो हुआ क्या फिर? भाषा इनसानकी ईजाद है। एक ईजाद काम नहीं देती तो हम जैसे-तैसे दूसरा साधन पा लेंगे—अभी-अभी। ज़रा और सब्र कीजिए, ज़रा और जोर लगाइए, इधर मैं भी कोशिश करके देखता हूँ।' मैं जो बड़ी जल्दी थोड़ी-बहुत इटालियन बोलने लग गया था (भूल भी गया हूँ, लेकिन उससे

क्या ? फिर मौक़ा मिलते ही स्मृति-संस्कार जाग जायेगा) उसका कारण यही सहज प्रोत्साहन था। इसके विपरीत फ़्रांसीसी आपको फ़्रांसीसी भाषामें लड़खड़ाता हुआ देखता रहेगा और आपका काम आसान करनेका ज़रा भी प्रयास नहीं करेगा। आपकी भाषा जानता भी होगा तो भी फ़्रांसीसी बोलना पसन्द करेगा—आप न समझें तो दोष आपका। यह उपेक्षाका एक दूसरा स्तर है जो एक प्रकारका स्वातन्त्र्य देता है या देता जान पड़ता है।

या कि ऐसा भी है कि फ़्रांसीसी व्यक्ति किसी हदतक अकेलेपनसे डरता है ? सभी फ़्रांसीसी बातचीतमें कुशल और सभा-चतुर होते हैं। खासकर वहाँके इण्टलैक्चुअल व्यक्तिसे बात करना तो एक स्मरणीय अनुभव होता है—उनकी बौद्धिक कलाबाज़ियों और शाब्दिक बाज़ीगरीपर अनभ्यस्त श्रोता चमत्कृत होकर रह जाता है। ऐसा जान पड़ता है कि सरकसका खेल या किसी अच्छे नाटकका प्रभावशाली अभिनय देखा हो। उस समय श्रोता यह पूछना ही भूल जा सकता है कि यह कुशल बाज़ीगर या अभिनेता जो रूप दिखा रहा है क्या वह सचमुच उसका रूप है ? क्या उसे स्वयं अपने इस रूपपर प्रत्यय है ? क्या जो मत या विचार वह प्रकट कर रहा है उनपर सचमुच उसका विश्वास है ?

जो श्रोता ऐसे प्रश्न पूछता है वह कभी भी अपना मत स्थिर नहीं कर सकता। न यह मान सकता है कि वह सब सच है, न इस निष्कर्षपर पहुँच सकता है कि सब झूठ है, निरी एक मुद्रा (पोज़) है। उसे जर्मन या अन्य उत्तरी देशोंके प्रबुद्ध व्यक्तियोंसे बातचीत करनेपर फ़्रांसीसी बुद्धिजीवीकी यह विशेषता और भी तीव्रतासे लक्षित होने लगती है। (यहाँ मैं मानो फ़्रांसीसीको यह पूछते सुन सकता हूँ कि क्या फ़्रांसके बाहर भी कहीं प्रबुद्ध व्यक्ति होते हैं ?)

एक मृषा जिसमें सब डूबे हुए हैं
क्योंकि एक सत्य जिससे सब ऊबे हुए हैं,

मारते हैं, मरते हैं
क्योंकि जीवनसे डरते हैं।

तो यह पैरिस है। लेकिन क्या सचमुच यही पैरिस है? रंगों, ध्वनियों, प्रभावोंका यह संकुल, जो सतही और पूर्वग्रह-युक्त भी हो सकता है, जो केवल हल्की ग्लानि या हल्की उत्तेजना देकर मनको वास्तविकताकी खोजसे विमुख कर दे सकता है?

सतही वह हो सकता है, लेकिन वह केवल इसलिए कि गहरे जानेके लिए अधिक समय अपेक्षित है, इसलिए नहीं कि वह झूठा है। यह भी कहा जा सकता है कि वह पैरिसवासीसे विच्छिन्न पैरिसका चित्र है। इस-लिए अधूरा और एकांगी है। ऐसा कहना ठीक भी हो सकता है क्योंकि अन्ततोगत्वा देखनेवाली दृष्टि पैरिसकी नहीं है, और यह मानकर चली है कि पैरिसका सौन्दर्य वहाँके निवासियोंके बावजूद है, उनके कारण नहीं। ढाई-तीन महीनेमें एक जातिको या संस्कृतिको कितना जाना जा सकता है? और सम्पूर्ण न जानना दोष क्यों है अगर उसका कोई दावा नहीं किया गया है?

यों ऐसा भी नहीं है कि फ़्रांसीसी संस्कृति या साहित्यसे उतना ही परिचय हो जितना पैरिसमें रहकर प्राप्त किया, बल्कि उस सन्दर्भमें तो नया वहाँ बहुत अधिक नहीं सीखा। (इसका एक कारण यह भी हुआ कि अधिक समय दस्तावेज़ी फ़िल्म बनानेके प्रशिक्षणमें लगाया—कैमराके उप-योगके भी और निर्देशकके भी। जिस उद्देश्यसे यह शिक्षा पायी थी वह अधूरा रह गया—पर कौन विद्या कब काम आ जाती है क्या ठिकाना।) अंग्रेज़ी साहित्यका अध्ययन अनिवार्यतया फ़्रांसीसी साहित्य और चिन्तनसे परिचयकी अपेक्षा करता है, और यूरोपियन कलाका अध्ययन तो बिना फ़्रांसीसी बल्कि ख़ास पैरिसकी कलाके अध्ययनके हो ही नहीं सकता। पिछले अस्सी-एक वर्षोंसे यूरोपीय कला-प्रवृत्तियोंका इतिहास मुख्यतया

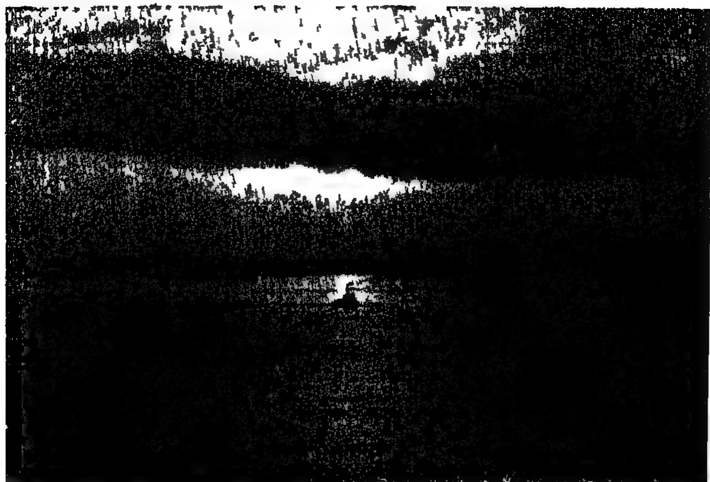
'पैरिस स्कूल'का इतिहास है, और अब भी उसका प्रभाव क्षीण हो गया हो ऐसा नहीं है, यद्यपि कोई बहुत बड़ी नयी या उदीयमान प्रतिभा इस समय नहीं दीख रही है। मुझे तो यही लगा कि पैरिसका प्रभाव अब भी जीवित होते हुए भी अब उतारपर है—यूरोपके सांस्कृतिक जीवनमें फ्रांसीसी संस्कृतिके प्रभावकी भाँति ही। किसी भी क्षेत्रमें आशापूर्ण जीवनोन्मुखता वहाँ नहीं दीखी। सांस्कृतिक जीर्णता और अवसादके लक्षण प्रत्येक क्षेत्रमें प्रकट थे और उनके प्रति ऐसा एक उदासीन स्वीकृति-भाव जो कि मेरी समझमें सक्रिय दुष्टतासे अधिक घातक—या सांघातिकताका चिह्न—होता है। 'मैं मर रहा हूँ', 'मैं जानता हूँ कि मैं मर रहा हूँ', 'मैंने स्वीकार कर लिया है कि मैं मर जाऊँ'—मृत्यून्मुखताकी मानो तीनों सीढ़ियाँ फ्रांसीसी संस्कृति—कमसे कम फ्रांसीसी साहित्य—पार कर चुका है। परमावसाद की इस अवस्थामें, जिसका एक विस्फोट युद्धकालमें और उसके तत्काल बादके युगमें हुआ, अपनी जीवन-परिस्थिति—अपनी अर्थात् व्यक्तिगत अपनी नहीं, मानव-मात्रकी जीवन-परिस्थिति—उसे घृण्य, अर्थहीन, उबाने-वाली ही नहीं बल्कि उबकाई लानेवाली जान पड़ने लगी है। अस्तित्ववादके साहित्यिक पक्षके, अर्थात् सार्त्रके साहित्यिक मतवादके, मूलमें यह विशेष रूपसे लक्ष्य है : उसका दर्शन मतलीका दर्शन है, जिसे उपन्यासोंमें गूँथनेमें उसने अपनी असाधारण प्रतिभा और अविश्रान्त पर्यवेक्षण-शक्ति लगा दी है। कैम्यू और आन्वील भी इसी सम्प्रदायमें हैं। धार्मिक अथवा ईसाई अस्तित्ववाद इससे अलग है, 'अनस्तित्वसे साक्षात्कार'के उस दर्शनमें चिन्तनका जो निर्मम साहस है उसका अपना भी महत्त्व है और वह आधु-निक जीवनके, आधुनिक परिस्थितिमें इस भूतपूर्व और अद्वितीय अस्तित्वके बारेमें एक नयी दृष्टि भी देता है। खिड़की खुलनेपर उसके बाहर जो दीखा उसके बारेमें एकमत होना ही सब-कुछ नहीं है, सारे परस्पर-विरोध के बावजूद इस बातका महत्त्व अक्षुण्ण रहता है कि खिड़की खुली है'....

एक दूसरा फ़्रांस

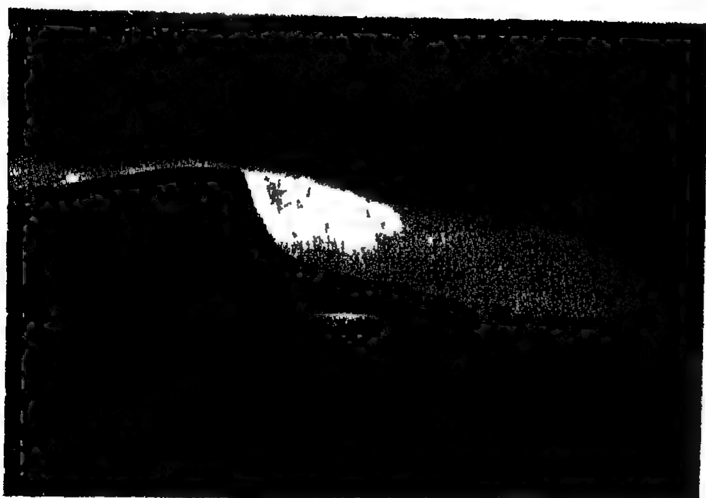
नहीं, निश्चय ही एक दूसरा भी पैरिस होना चाहिए, क्योंकि निस्सन्देह एक दूसरा भी फ़्रांस है जिसकी ओर शताब्दियोंसे यूरोप देखता आया, जिसकी संस्कृतिसे उसने प्रेरणा पायी और जिसके मुकुरमें उसने बाक़ी दुनियाको भी देखा····संस्कृतियाँ देशकी होती हैं, पर मुख्यतया राजधानीसे फैलती हैं जो कि वह देशका प्रतिनिधित्व करती है—तब फ़्रांसकी देन प्रधानतया पैरिसकी ही देन होनी चाहिए; क्या यूरोपीय जैसे भारतमें 'गोपन भारत'की खोजमें आते हैं, वैसे ही हम 'गोपन फ़्रांस'की खोजमें नहीं जा सकते ?

(राजधानी दिल्ली भी है; पर एक तो वह नयी राजधानी है—दिल्ली भी 'नयी' है—दूसरे वहाँसे भी जो फैलता है उसे हम अपनी गँवारू बोली-में 'भारतीय संस्कृति' न भी कह सकें तो 'इंडियन कल्चर' कहनेको तो बाध्य हैं ही····और दिल्लीके 'कल्चर्ड अधिकारी'के लिए भी क्या बाहरका संस्कारी भारत उतना ही 'गोपन भारत' नहीं है जितना कि विदेशीके लिए, बल्कि कुछ अधिक ही, क्योंकि विदेशी शायद भारतीय शास्त्र-पुराण थोड़ा-बहुत पढ़कर आया है !

गोपन फ़्रांस। गोपन पैरिस। निस्सन्देह वह पैरिस भी है। और ऐसा गोपन भी नहीं है—खोजने वाले ही ऐसे आते हैं कि 'गोपन' और 'जुगुप्स्य' का भेद भूलकर उसीके अन्वेषणमें रम जाते हैं जो जुगुप्साजनक हो···· कइयोंकी तो एक-मात्र खोज वही होती है, और ऐसे अनेक भारतीयोंको भी मैंने पैरिसमें देखा है जो उसकी गलियोंमें भटकते फिरते हैं और अपना देशवासी देखकर कतराकर निकल जाते हैं। यह नहीं कि मैं विदेशोंमें

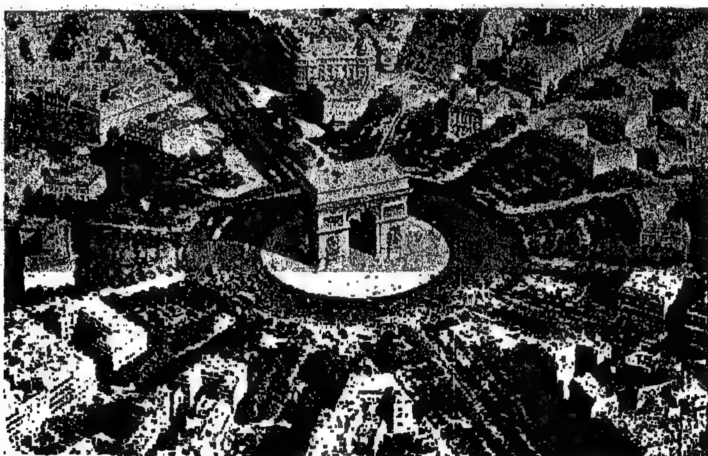


स्वेज़में सूर्योदय



क्रीटी : लिथोनोस अन्तरीपपर उषा-किरण





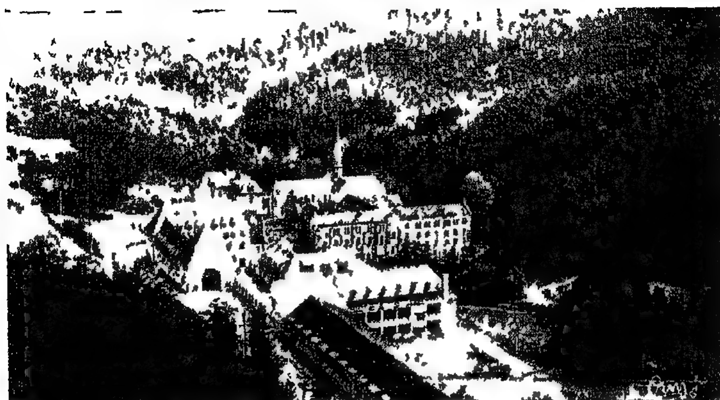
पैरिस—ऊपर-त्रोकादेरोसे आइफ़ेल मीनार। नीचे-विजय-स्मारक ('एत्वाल')

[सरकारी फ़ोटो]

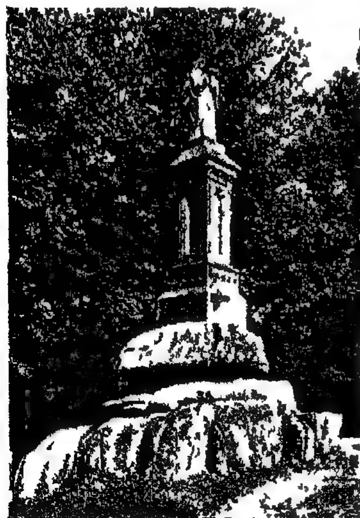


पैरिस—ऊपर–नोत्रदामका गिरजाघर । नीचे–नोत्रदाम और सेन नदी

[फ़ोटो टूरिंग इंटरनेशनल]



पिएर-क्वि-वीरका मठ



पिएर-क्वि-वीरकी मरियम



पिएर-क्वि-वीर : मठका द्वार

[फोटो मठ द्वारा प्राप्त]

जाकर अपने ही देशवालोंके समाज तक सीमित रहना अच्छा समझता हूँ; लेकिन कतरानेका कारण जब यह हो कि अपनी तलाशपर किसीके मनमें जुगुप्साका भाव है, तो वह कतराना दूसरेपर भी एक ग्लानिकी छाप छोड़ जाता है। अस्तु, 'भिन्नरुचिर्हि लोकः' कहकर इस वर्गसे तो बिल्कुल छुट्टी पायी जा सकती है। एक अधिक सस्कारी वर्ग है जो कला, साहित्य, स्थापत्य, संगीत और दर्शन आदिमें रुचि रखता है, किन्तु उस वर्गके लोग भी जब पैरिस जाते है तो उनके मनमें इन सब विषयोंके 'माडर्न' कहलानेवाले अंगका ही आग्रह विशेष होता है। लूव्रका संग्रहालय, पैंथियोन, नोत्रदाम तथा अन्य गिरजाघर आदि भी वे देखते हैं, पर उनका उत्साह विशेषतया 'माडर्न' कलाकी ओर ही होता है। शायद इसीलिए कि लौटकर अभिनवतम प्रवृत्तियोंकी चर्चा करना अधिक प्रभावशाली हो सकता है, और साथ ही उस क्षेत्रमें कम पूँजी लेकर भी अधिक दूर जाया जा सकता है—दस-पाँच नये नाम ले देनेसे ही लोग रोबमें आ सकते हैं, और मतभेदके लिए तो इतनी गुंजाइश है कि आप कोई भी राय दे दीजिए, उसे अज्ञकी राय नहीं कहा जा सकता! और तो और, भारतसे कितने चित्रकार ऐसे गये हैं, जो जब गये तब अच्छे-खासे कलाकार थे, किन्तु जब लौटे तब केवल माडर्न रह गये!

'माडर्न' के प्रति ऐसा भाव प्रकट करना जिसे अवज्ञा समझा जा सकता है, अपनेको जोखममें डालना है। इसलिए इस पक्षको छोड़ अपनी ही बात कहूँ। मुझे उस दूसरे पैरिसमें जानेका अवसर भी मिला जो एक दूसरे फ़्रांसकी राजधानी है; और वहाँसे परिचय-पत्र लेकर मैं इस दूसरे फ़ांसमें जहाँ-तहाँ प्रवेश पा सका।

कई दिनकी तपन और उसके बाद भूमध्य-सागरमें प्रवेश करके ठंडी हवाके झोकोंसे मर्माहत होकर, और फेनोच्छ्वसित प्रगाढ़ नीलिमाको देखकर

रोमांचित होता हुआ मारसेल्स उतरा तो अप्रत्याशित ठंड थी। ज्ञात हुआ कि पास हीके प्रदेशमें असाधारण शीतकी लहर आनेसे बर्फ़ पड़ी है और इसीलिए वहाँ भी इतनी ठण्ड है। क्यों ठण्ड है, इसका कारण जान लेनेसे ही तो वह कम नहीं हो जाती, पर दक्षिणी फ़्रांसका सागर-तट और उसके निकटवर्ती चट्टानी द्वीप इतने सुन्दर हैं कि उन्हें देखते रहनेके लिए सुनसान डैकपर कटखनी हवामें ठिठुरते खड़े रहना भी स्वीकार था। यों भूमध्य-सागरके पानीको ही घण्टों खड़े-खड़े देखा जा सकता है, किन्तु मेरा जहाज़ जिस राहसे गया था उसपर और भी कई भव्य दृश्य देखनेको मिल गये। भोरके समय क्रीटी द्वीपका चट्टानी अन्तरीप लिथोनोस, जिसके आस-पास छायी हुई धुन्धमें सूर्योदयकी किरणें मानो सोनेके जालमें खो गयी थीं। मैसीनाके जलडमरुके दोनों ओर इटली और सिसलीकी तट-रेखाएँ और दूर एटना ज्वालामुखीके हिम-मंडित शिखरकी आकाशमें निराधार टँगी हुई रेखा। सिल्ला और कैरिब्डिसकी चट्टानें और भँवर जिनके लुभावने आकर्पणसे यूलिसीज़के बच निकलनेकी कथा अनेक बार पढ़ी है। लिपारी और उसके आस-पासका द्वीप-समूह और सागरमें छितराये हुए शिला-खण्ड जिनमेंसे प्रत्येकसे सम्बद्ध पुराण-गाथाका स्मरण उसे नया आकर्षण देता रहा।[1] स्त्रोम्बोलीका ज्वालामुखी पर्वत-द्वीप जो अनवरत धुआँ उगल रहा था और जिसका एक पार्श्व शिखरसे सागर-तल तक लावा और राखसे ढका था तो दूसरी ओर हरे-भरे उद्यान और समृद्धिशील गाँव चमक रहे

१—वलकन द्वीपमें विश्वकर्मा वलकनकी भट्ठी थी जिसमें द्यौस्पितर के वज्र ढलते थे। इयोलियन द्वीपमें इयोलसने हवाओंको बन्दी कर रखा था। तूफ़ानी हवाओंका यह राजा बहुत बड़ा ज्योतिर्विद् था और नावोंके पालका आविष्कारक भी; थैलेमें बन्द करके रखी हुई हवाएँ उसने युलि-सीज़को भेंट दे दी थीं जिससे उसकी यात्रा निर्विघ्न समाप्त हो सके। यूलिसीज़के साथियोंने अनन्तर उन्हें मुक्त कर दिया।

थे····फिर मारसेल्सके बिल्कुल निकटके तटवर्ती द्वीप, जिनमें कुछका तो नाम नहीं जान सका और कुछ पहलेसे परिचित थे—जिनमें मुख्य था इफ़ द्वीप, जिसपर स्थित दुर्गमें ड्यूमाकी कथाके नायक काउण्ट माण्टेक्रिस्टोको बन्दी करके रक्खा गया था। फिर स्वयं मारसेल्स बन्दरगाहकी संरक्षिका देवी मरियमकी प्रतिमा दूरसे ही दीख रही थी····

दक्षिणी लोगोंके स्वभावमें शायद सूर्यका अंश अधिक होता है, इसी लिए वे प्रायः परिहास-प्रिय होते हैं। इसीलिए शायद उनके परिहासमें क्षार या चरपराहट अधिक होती है! मारसेल्सकी परिहासकी विशिष्ट परम्परा है, जिसके कुछ उदाहरण जहाजसे उतरकर बन्दरगाहके कस्टम आदिके नाना उपचार पूरे करके स्टेशन पहुँचने तक ही मिल गये।

मारसेल्ससे कई तेज़ गाड़ियाँ पैरिसकी ओर दौड़ती हैं और लगभग आठ घण्टेमें वहाँ पहुँचा देती हैं। रेलकी पटरी लियों तक रोन नदीके साथ-साथ जाती है। रोन मानो दक्षिणी फ़्रांसके अत्यन्त सुन्दर प्रदेशकी मेखला है—जेनेवाकी झीलसे निकलते ही वह फ़्रांसीसी प्रदेशमें प्रवेश करती है और वहींसे बहुविध प्राकृतिक सौन्दर्यका मुजरा लेती हुई चलती है। रोन का तट अपने अंगूरके बग़ीचोंके लिए भी प्रसिद्ध है—अर्थात् अपनी शराबों के लिए भी। धूपकी खोजमें उत्तरसे आनेवालोंका ताँता रोनके किनारे-किनारे उतरता हुआ दक्षिणी फ़्रांसके सागरकी ओर फैल जाता है या फ़्रांसीसी आल्प-श्रेणीके छोटे-छोटे गाँवोंकी ओर मुड़ जाता है; कुछ लोग किसी ओर भी न मुड़कर रोनके किनारे ही कोई मनचीता कोना ढूँढ़ लेते हैं। इम्प्रेशनिस्ट चित्रकारोंने इस प्रदेशके सौन्दर्य और वर्णच्छटाकी ख्याति दूर-दूर तक फैला दी है। आर्ल प्रदेशके खेतों और आविन्योंके आस-पास फलोंके बग़ीचोंके वान गोख द्वारा बनाये गये चित्र मेरे वर्षोंके परिचित हैं और उनका स्मरण भी धूप-नहाये प्रसन्न वर्णोंको आँखोंके सामने ले आता है····

लियोंका प्राचीन ऐतिहासिक नगर भी सुन्दर है। यह रोन और

साओन नदियोंका संगम भी है। यहाँसे प्राकृतिक दृश्य कुछ बदलने लगते हैं, किन्तु अंगूरकी बेलका महत्त्व इस प्रदेशमें भी कम नहीं होता—'बोजोले' और बर्गण्डीकी शराबोंके अपने-अपने प्रशंसक हैं।

मैं यद्यपि लियोंसे सीधा पैरिस ही गया था, तथापि जो स्थल—या जैसे स्थल—मेरी इस यात्राके लक्ष्य थे, वे पैरिससे दक्षिणमें ही पड़ते हैं, और पैरिससे आवश्यक सूचनाएँ तथा परिचय-पत्र लेकर मैं फिर इसी दक्षिणी प्रदेशमें लौट आया। इसलिए इस यात्रा-वर्णनको पैरिस तक ले जाना आवश्यक नहीं है। ओसेयरसे शाखा-पटरीसे एक ट्रामनुमा गाड़ीमें बैठकर योन् नदीके किनारे-किनारे एवेलोन गया; फिर एक छोटी-सी देहाती बसमें फलोंकी पेटियों, मछलीकी डलियों, और कीट-नाशक दवाके कनस्टरोंके साथ लदकर, लुढ़कता-पुढ़कता, और अन्य सवारियोंके साथ ड्राइवरकी बिलकुल त्वराहीन ठिठोली सुनता हुआ, दोपहरको सड़कके किनारे एक छोटे गिरजाघरके पास उतर गया। गन्तव्य यहाँसे लगभग चार किलोमीटर (ढाई मील) की दूरी पर था। सामानका झोला कन्धेपर उठाया और हल्की-सी फुहारकी परवाह न करता हुआ चल पड़ा।

प्रायः डेढ़ सौ साल पहले एक स्वप्न द्वारा प्रेरित पेयर मुआर इस वन प्रदेशमें बहते हुए एक छोटे-से झरनेके किनारे पहुँचे थे और अपने हाथोंसे पत्थर बीन कर उन्होंने एक छोटी-सी कुटिया बनायी थी। यह कुटिया अब 'पेयर मुआरकी कुटिया' नामसे प्रसिद्ध है, शायद अति-विश्वासी लोग यह भी मानते हों कि वह एकान्त साधक इसी कुटियामें निवास भी करता था। किन्तु वास्तवमें उस कुटियामें उन्होंने कभी दिनमें विश्राम भले ही कर लिया हो, रहनेका स्थान उसमें नहीं है। जो हो, इसी कुटियाके आस-पास और झरनेके किनारे क्रमशः एक-एक पत्थर जोड़कर एक छोटा मठ

बनाया गया, जिसमें बेनेडिक्टी सम्प्रदायके कुछ ईसाई संन्यासी (मंक) रहने लगे । अनन्तर उसके साथ और इमारतें जुड़ती गयीं; और कुछ वर्ष पहले एक नया मठ तथा अतिथिशाला, एक मुद्रणालय और कुछ अन्य कक्ष भी बन गये । नये मठके कलापूर्ण प्रवेश-द्वारके किवाड़पर मानो मौनका संकेत करती हुई ईसाकी काष्ठ-मूर्ति है । इसी मूर्तिकी ओटसे चुप-चाप प्रविष्ट होकर मैंने एक खिड़कीसे अपना परिचय-पत्र भीतर बैठे हुए संन्यासी-की ओर बढ़ा दिया; थोड़ी देर बाद एक और संन्यासी ड्योढ़ीमें आ गये और उनके नीरव इंगितका अनुसरण करता हुआ, दो लम्बे गलियारे पार करके और एक सीढ़ी उतरकर, मैं नये मठकी उस एकान्त कोठरीमें पहुँच गया जो अब इस प्रवासकी अवधि-पर्यन्त 'मेरी' होगी····

कोठरीमें एक ओर बिछाना है, दूसरी ओर एक बहुत छोटी मेज़पर बाइबिल और दो-एक प्रार्थना-ग्रन्थ रखे हैं; कुर्सी इतनी छोटी है कि उसे स्टूल भी कहें तो अवज्ञा न होगी । खिड़कीके पास छोटी बेसिनी और पानीका कल है । खिड़कीसे बाहर मठका भीतरी आँगन दीखता है, जिसके पार इसी खिड़की जैसी और खिड़कियोंसे अनुमान हो सकता है कि उधर भी कोठरियोंकी पंक्ति होगी । तीसरी ओर कुछ बड़ी खिड़कियाँ हैं; वह गलियारा है जिससे एक रास्ता बाहर होकर गिरजाघरको और उससे आगे पाठशालाको जाता है, और दूसरा भण्डारघर, पुस्तकालय तथा प्रार्थना-कक्ष (चैपेल) के पाससे होता हुआ नीचे पाकशाला और भोजनालयको ।

आँगनका चौथा पार्श्व दूर होनेके कारण पूरा नहीं दीखता; जितना दीखता है उसमें एक सपाट दीवारका अंश और एक बिना फाटककी महराब है, उसके आगे कुछ पेड़ दीखते हैं । यों उस तरफ़ मुद्रणालय और शिल्पकक्ष है ।

अलग-अलग कक्षोंको अलग-अलग नाम दिये गये हैं, लेकिन वास्तवमें सारी इमारत एक विशाल प्रार्थनागार है । कुल मिलाकर पाँच-छः घण्टे तो विधिवत् आह्निक-आरात्रिकमें बीत जाते हैं; किन्तु गिरजाघरमें बिताये हुए

इस समयके अलावा बाक़ी समयको भी भरसक आराधनाका ही रूप दिया जाता है। संलाप-सम्भाषण न्यूनतम होता है, बल्कि लगभग नहीं होता; शरीर-श्रम भी देवार्पित माना जाता है और भोजनके समय भी एक संन्यासी किसी धर्म-ग्रन्थ अथवा उपदेश-ग्रन्थसे पढ़कर कोई अंश सुनाता रहता है।

ईसाई-संन्यासियोंके अनेक सम्प्रदाय हैं। उनमेंसे कुछसे भारतका परिचय सदियोंसे रहा है। किन्तु जैसा वह परिचय रहा है, उसका यह अनिवार्य परिणाम है कि इन सम्प्रदायोंका संन्यस्त पक्ष हमारे सामने नहीं आता, बल्कि केवल प्रचार अथवा सामाजिक कर्मका पक्ष सामने आता है। हम 'मिशनरी' ही जानते हैं, संन्यासी नहीं जानते—यहाँ तक कि एक पढ़े-लिखे और यूरोप घूमकर लौटे हुए भारतवासीने मुझसे अचम्भेसे पूछा था, "अच्छा! यूरोपमें अब भी क्या मंक होते हैं? मैं तो समझता था कि ये मध्य-युगकी बातें हैं!"

अन्य सम्प्रदायोंके संन्यासियोंकी भाँति ईसाई संन्यासियोंमें भी कुछ सम्प्रदाय सामाजिक कर्म अथवा समाज-सेवापर बल देते हैं और कुछ दूसरे एकान्त साधनापर, चिन्तनपर, प्रार्थना अथवा स्तावनपर। सत्कर्म ('गुड वर्क्स') ईसाइयतका एक महत्त्वपूर्ण अंग है। हमारा सम्पर्क जिन सम्प्रदायोंसे रहा है उनका आग्रह सेवा-कर्म अथवा सन्देश-वहनपर ही रहा है। 'मिशन' शब्दके अन्तर्गत ये दोनों आ जाते हैं; यही भारतस्थ ईसाई मिशनों और मिशनरियोंकी मर्यादा है—उनके सम्प्रदायकी भी और उनके संगठन-जन्य दूषणोंकी भी।

बेनेडिक्टी सम्प्रदायमें आग्रह प्रार्थनापर है। एक प्रकारसे वह भारतीय चिन्ता-धाराके अधिक निकट है; वह सेवा द्वारा दूसरेके कल्याणकी अपेक्षा साधना द्वारा आत्मोन्मेष नहीं तो कमसे कम भगवत्कृपाकी आशा करता है। बेनेडिक्टी संन्यासी एक मिशनसे दूसरे मिशनमें नहीं भेजे जाते; जो

जिस मठ अथवा संघमें दीक्षा लेता है वहींका हो जाता है और उसी समुदायमें जीवन बिता देता है।

पेयर मुआरने क्यों वह स्थल चुना, इसका इतिहास है। बल्कि स्थलका इतिहास पेयर मुआरसे कहीं अधिक पुराना है। स्थानके नामसे मठका नाम 'पीएर-क्वि-बीर' है जिसका अर्थ है 'घूमनेवाला पत्थर'। यह नाम एक बहुत प्राचीन चट्टानका था जो ईसाइयतके प्रवेशके पहलेसे पवित्र समझी जाती थी। एक प्रस्तर-खण्डपर सन्तुलित यह शिला प्रकृतिका एक आश्चर्य तो थी ही, मसीही धर्मके आनेसे पहले स्थानीय सर्वेश्वरवादी धर्मकी बलि-पीठिका भी थी। अब तो इस उपरली शिलाको सीमेंटसे पुष्ट करके इसके ऊपर मरियमकी मूर्ति स्थापित कर दी गयी है, किन्तु चट्टानपर अब भी छोटे-छोटे कुण्डों और प्रणालियोंके अवशेष दीखते हैं जिनके बारेमें कहा जाता है कि बलि-पशुओंका रक्त इन्हींमें एकत्र होता या बहता था। इस बातकी सच्चाई जो भी हो, इसमें सन्देह नहीं कि यह स्थल और इसके आस-पासका वन-प्रदेश पुराकालसे ही पवित्र माना जाता था। आज भी वनमें प्रवेश करते ही जो भव्य विस्मय, शान्ति और श्रद्धाका भाव हठात् उदित होता है, उसे आप चाहें तो पुराने संस्कारोंका प्रभाव कह लें, चाहे वातावरणमें बसे हुए देवोन्मुख भावोंकी गूँज, चाहे केवल सभ्यताके चंगुलसे निकलकर प्रकृतिके क्रोडमें आनेका मुक्ति-बोध; पर इसमें सन्देह नहीं कि वनके बीच स्थित मठ तक पहुँचते-न-पहुँचते व्यक्तिका मन बहुत कुछ बदल जाता है। ईसाकी वह काष्ठ-मूर्त्ति उसे न केवल चौंकाती नहीं, बल्कि यात्राकी स्वाभाविक निष्पत्ति-सी लगती है—मानो उसके न होनेसे ही व्यक्ति चौंक जाता। यों वह मूर्त्ति केवल एक प्रतीक है, और मठके प्रवासका जो प्रभाव पड़ता है वह वहाँके जीवनकी सम्पूर्णताका ही है—उसके संसर्गमें आ जानेके बाद उस मूर्त्तिका प्रतीकत्व अपने स्वाभाविक स्तरपर आ जाता है—द्वार अन्ततोगत्वा द्वार है, देव-मन्दिर वह नहीं है। यों मन्दिर भी मन्दिर ही है, देवताका साक्षात् वहाँ नहीं हो सकता; अथवा

अगर यहाँ हो सकता है तो कहाँ नहीं हो सकता ? अनुकूलता वहाँ मिलती है, पर अनुकूलता भी मूलतः अपने मनकी होती है।....

प्राचीन सर्वेश्वरवादी यज्ञ-भूमिपर ईसाई मठकी प्रतिष्ठा एक प्रकारसे बेनेडिक्टी सम्प्रदायके इतिहासका प्रतीक है। यूरोपमें मसीही धर्मके प्रसारका श्रेय मुख्यतया इसी सम्प्रदायको है। सन्त ग्रेगोरी और सन्त आगुस्टीन इसी सम्प्रदायके थे, और बेनेडिक्टी मठोंसे ही धर्म-प्रचार करनेके लिए बाहर गये थे। आगुस्टीनने इंग्लैण्डमें एक बेनेडिक्टी मठकी स्थापना की थी; सन्त बेनेडिक्टकी जन्मभूमि इटलीके बाहर यह पहला बेनेडिक्टी मठ था। बेनेडिक्टका जन्म पाँचवीं सदीके उत्तरार्द्धमें सन् ४८०के लगभग, मध्य इटलीके उम्ब्रिया प्रान्तमें नुर्सियामें हुआ। उनके जीवन-वृत्तका जो कुछ पता लगता है सन्त ग्रेग्रोरीके लेखोंसे ही; किन्तु कोई कारण नहीं है कि उन्हें प्रामाणिक न माना जाय। पिताके द्वारा वह स्कूलमें पढ़नेके लिए भेजे गये, किन्तु स्कूलोंके दुराचार-पूर्ण वातावरणसे खिन्न होकर वह किशोरावस्थामें—अथवा प्रारम्भिक युवावस्थामें—विद्यालय छोड़कर बनोंमें भटकने लगे। इसी प्रकार भटकते हुए वह आर्बुत्सी पर्वत-श्रेणीमें एक स्थलपर पहुँचे जहाँ एक छोटी झीलके एक किनारेपर सम्राट् नीरोके महलोंके खण्डहर थे और दूसरे किनारेपर कुछ गुफाएँ। सुबियाकोकी एक कन्दरामें तीन वर्ष रहकर वह एकान्त चिन्तन करते रहे। इस गुफामें उनके प्रवासका पता केवल उसी प्रदेशके एक मठके एक संन्यासीको था, जिसने उन्हें एक पुराना चीवर दिया था और जो समय-समयपर कुछ खाद्य-सामग्री भी गुफामें रख जाता था।

क्रमशः उस एकान्त साधकका पता लोगोंको लगने लगा, और उसका नाम जहाँ-तहाँ सम्मानपूर्वक लिया जाने लगा। प्रदेशके एक मठके संन्यासी बेनेडिक्टको आग्रहपूर्वक अपना मुखिया बनाकर ले गये, किन्तु जब बेने-

डिक्टने मठके भ्रष्ट जीवनका सुधार करनेका प्रयत्न किया तब उन्हें विष दे दिया गया ! वह फिर गुफामें लौट आये और यहीं रहते हुए उन्होंने आस-पासकी पहाड़ियोंमें कई छोटे-छोटे मठ स्थापित किये जिनका निर्देशन वह अपने स्थानसे ही करते रहे। यह स्थान रोमसे केवल चालीस मील दूर था; रोमके अच्छे घरानोंके बालक उनके निर्देशमें शिक्षा पानेके लिए इन मठोंमें भेजे जाने लगे। दूसरे मठोंके विद्वेष और षड्यन्त्रोंसे विरक्त होकर बेनेडिक्टने फिर वह स्थान छोड़ दिया, और रोम तथा नेपोलीके अध-बीच कैसीनो पर्वतके शिखरपर आसन जमाया। मोंटे कैसीनोका यह मठ ही सारे पश्चिमी यूरोपके लिए ईसाइयतका ही नहीं, उदार आध्यात्मिक जीवनका प्रेरणा-स्रोत रहा।[1]

बेनेडिक्टी सम्प्रदायकी जीवन-चर्या पूर्वीय चर्याओंकी तुलनामें तो विशेष कड़ी नहीं ही थी; यों भी उसकी दृष्टि उदार थी और अनावश्यक आत्म-पीडनके लिए उसमें स्थान नहीं था यद्यपि सरल जीवनपर सच्चा आग्रह था। शरीर-श्रमके सिद्धान्तमें भी इसकी गुंजाइश रखी गयी थी कि मठके अथवा स्थानीय जीवनके सन्दर्भमें वह उपयोगी हो सके। उदाहरणके लिए पिएर-क्वि-वीरके मठमें श्रम-दानके अधीन जहाँ खेतीका श्रम आता है वहाँ काठ-खुदाई; चित्रकारी, मूर्तिकला और छपाई भी श्रम-दानके रूप हैं, मठका मुद्रणालय धार्मिक कलाका मुद्रण और प्रकाशन करता है। सोलेमके मठने धार्मिक संगीतपर विशेष शोध-कार्य किया है। वास्तुकला और शिल्पको भी कई मठोंमें श्रमके कार्यक्रममें स्थान दिया गया है।

बेनेडिक्टके अनुशासनमें दो और विशेषताएँ थीं। उनकी व्यवस्थामें इस बातका ध्यान रखा गया था कि एकान्त साधकोंमें आत्म-पीडनकी जो होड़-

---

१—पिछले महायुद्धमें मोंटे कैसीनो घमासान लड़ाईका क्षेत्र रहा और लगभग ध्वस्त हो गया—नेपोलीसे बढ़नेवाली मित्र-राष्ट्र सेनाओंका मार्ग वही था। मठका पुनर्निर्माण हो गया है।

सी लग जाती है—जिसके कारण तपस्याका उद्देश्य तो ओझल हो जाता है और केवल कष्ट सहनेकी प्रतिस्पर्द्धा ही गौरवकी बात बन जाती है—उसे प्रश्रय न दिया जावे। दूसरी ओर इस बातका भी ध्यान रखा गया था कि मठोंकी, अथवा व्यक्तिगत संन्यासियोंकी, सत्ता ग्रहण करनेकी प्रवृत्तिको प्रोत्साहन न मिले। प्रत्येक मठ एक स्वायत्त समाज था। आगे चलकर जब ऐसे अनेक समाज हो गये तब भी उनके परस्पर सहयोगको स्वायत्त रखनेका ही आग्रह रहा, और बीच-बीचमें केन्द्रीकरणकी जो चेष्टाएँ हुई उन्हें पनपने नहीं दिया गया। मठके प्रधानके लिए बेनेडिक्टने जो नियम बनाये थे वे उनकी उदार दृष्टिके (जिसे आज कदाचित् 'मानववादी प्रवृत्ति' कहा जायेगा), उदाहरण थे। प्रधान सर्व-सम्मतिसे चुना जाता है और प्रत्येक महत्त्वपूर्ण प्रश्नपर सभीकी राय लेता है। उसका निर्णय अन्तिम है और अनिवार्यतः सबको मानना होता है, किन्तु वह ऐसा नहीं होना चाहिए कि किसीको भी उचित आपत्तिका अवसर मिले या अवसाद हो।

किन्तु ईसाई मठवादके इतिहासमें जाना यहाँ प्रयोजनीय नहीं है। विभिन्न युगोंमें मठोंकी विभिन्न प्रकारकी विकृतियों और सुधारकी चेष्टाओंका विवेचन भी यहाँ असंगत होगा। एक समयमें विभिन्न प्रकारके दमन और क्रान्तियोंके प्रभावने उन्हें लगभग निःशेष कर दिया था किन्तु उनकी मूल प्रेरणाओंकी आन्तरिक शक्तिने समाज-जीवनमें फिर उनके लिए स्थान बना दिया। आज वे राजनीतिक जीवन और राष्ट्रीय सत्ताओंके संघर्षमें पहले-सा स्थान नहीं रखते हैं, और यह उचित ही है कि न रखें। सामाजिक जीवन में भी उनका वैसा स्थान नहीं है, और यह भी स्वाभाविक ही है जब समाज-कल्याणको एक लौकिक उद्देश्य मानकर राजकीय, नागरिक अथवा सार्वजनिक संस्थाओंको सौंप दिया गया है। किन्तु इन सब क्षेत्रोंसे हट जानेका मतलब यही है कि वे अपने क्षेत्रतक मर्यादित हो गये हैं। यह क्षेत्र यदि रहस्यमय और गोपन है तो किसी छिपावके अर्थमें नहीं बल्कि इसी अर्थमें कि वह आभ्यन्तर है, आध्यात्मिक है—उसी अर्थमें जिसमें कि धर्म

भी गोपन होता है और ईश्वर स्वयं धर्मका प्रकाशक न होकर गोप्ता हो जाता है—

त्वमव्ययः शाश्वत-धर्म-गोप्ता
सनातनस्त्वं पुरुषो मतो मे ।

—श्रीमद्भगवद्गीता

'पिएर-क्वि-वीर' । वह पत्थर जो घूमता है । चक्रमित शिला । चक्रान्त शिला। चक्रान्त : जो संक्रमण करके फिर लौट-लौटकर आता है, वह कालके अतिरिक्त क्या है ? समयकी शिला :

समय की शिला पर मधुर चित्र कितने,
किसी ने बनाये किसी ने मिटाये ।

—शम्भूनाथ सिंह

चक्रान्त शिला : समयकी शिला : युगोंके आवर्त्तनका क्रम जिसपर धर्म-सिद्धान्तकी प्रतिमा अडिग खड़ी है। धर्म कालजित् है। इसीलिए बुद्धने धर्मके शाश्वत भाव, और चक्रमणके काल-सापेक्ष्य भावको एक करके धर्म-चक्रकी उद्भावना की थी—जो घूमता भी है और स्थिर भी है····यहाँ घूमती हुई शिलापर सनातन श्रद्धाकी प्रतिमा है—रूपक सांग है, और प्रतीक अभिप्राय-भरा····सिंहत्रयीके ऊपर धर्म-चक्रकी प्रतिष्ठा की गयी, तो उसका भी प्रतीकत्व सम्पूर्ण सार्थक था—ऐहिक सत्ताको धर्म-सिद्धान्तके पद-तलमें ही आश्रय दिया गया था। (आज हम सिंहत्रयीके अधीन तो हैं पर सिंहत्रयीके ऊपरका वह धर्म-चक्र कहाँ छिप गया है, न जाने ! इस खण्डित प्रतीकसे शासित होकर हम क्या उस कमलसे कुछ सान्त्वना पा सकते हैं जिसकी भित्तिपर स्वयं सिंहत्रयी खड़ी है—कमल जो कि ऋतका प्रतीक है ?····)

इस प्रकार मठका नाम, जो वास्तवमें केवल स्थानका नाम है, एक प्रतीकार्थ ग्रहण करके मेरे सम्मुख आता है और प्रतीककी सत्ता निरन्तर

नये-नये बिम्ब मूर्त्त करती रहती हैं । मठके आस-पासकी वन-भूमिमें अकेला घूमता हूँ तो ये बिम्ब उस अकेलेपनको मर्यादित किये रहते हैं । कोठरीमें अकेला बैठता हूँ तो नीरव वायु-मण्डलमें वे मँडराते रहते हैं । कुछ लिखता हूँ तो उसमें उनका स्वर बोलने लगता है । उस लिखे हुएकी कभी झरने के पास बैठकर मानस आवृत्ति करता हूँ तो उनके स्वर झरनेकी कल-कलमें उसे मुखर-भावसे दोहरा जाते हैं····कभी, शायद, यह लिखा हुआ भी प्रकाशमें आवे····

स्थविरकी ओरसे एक अंग्रेजी-भाषी संन्यासीको मुझसे बातचीत करनेकी अनुमति है; कोई जिज्ञासा होनेपर उन्हें सूचित किया जा सकता है और उसी दिन या अगले दिन उनसे बात-चीत हो सकती है—अपराह्न तीनसे चार तकका समय बँधा ही हुआ है । लगभग प्रतिदिन उनसे बातें होती हैं—क्योंकि जिज्ञासाका अन्त कहाँ है ? और उन बातोंका आधार प्रायशः मानस आकाशमें मँड़रानेवाले ये बिम्ब और प्रतीक होते हैं····

····मसीही चर्च क्यों ईसाकी ऐतिहासिकतापर इतना बल देती है ? ईसा ईश्वर-पुत्र है, स्वयं ईश्वर है—जो ये दो बातें मान सकते हैं उनको यह मनवाना क्यों जरूरी है कि वह एक वास्तविक ऐतिहासिक मानव-पुरुष भी रहा ? फिर यह भी, कि वह ऐतिहासिक मानव भी उसी अर्थमें एक और अद्वितीय रहा, जिसमें ईश्वर एक और अद्वितीय है—यानी वैसा पुरुष न कभी पहले हुआ और न दुबारा हो सकता है ? क्या ऐतिहासिकताका यह आग्रह ही ईसाके सनातन अथवा व्यापक (कॉस्मिक) रूपका खण्डन नहीं करता ?····

····क्या पश्चिमी मानस यों भी कालकी भावनासे आक्रान्त नहीं है ? जिसे वह अपनी 'ऐतिहासिक चेतना' कहता है—और जिसके निःसन्देह बहुतसे गुण भी हैं—और जिसकी अनुपस्थितिको वह पूर्वीय मानस, विशेषतया भारतीय मानसका बहुत बड़ा दोष बताता है—क्या वह ऐतिहासिक चेतना स्वयं एक व्यापकतर चेतनाका खण्डन नहीं है ?····

····ऐतिहासिक चेतना पूर्वापरका अनिवार्य सम्बन्ध जोड़ती है, वर्तमान को अतीत और भविष्यत्‌के साथ जोड़कर जीवनको भय और आकांक्षाके साथ बाँध देती है; 'होने'को 'होना चाहने' तथा 'न होनेसे डरने'के अधीन कर देती है—और इस प्रकार जो अमर है उसे नश्वरताका वशवर्ती बना देती है! दौड़ता हुआ अंगुलिमाल क्यों नही निश्चल खड़े तथागतको पकड़ पा रहा था—केवल-मात्र इसीलिए तो कि वह दौड़ रहा था, पीछा कर रहा था, कालके वश होकर उसे पाना चाह रहा था जो कालजित् है····

····पाप क्या है? सनातन पाप क्या है? क्या मानवका होना ही उसका 'मौलिक पाप' है? एकके बलिदानसे दूसरेके पाप धुल सकते हैं, यह मान सकना ऐसा कठिन नहीं है। किन्तु ईसाके बलि-दानने अगर समूची मानव जातिके पाप अपने ऊपर ओढ़ लिये तो उनका क्या जो ईसासे पहले हुए? अगर इस बलि-दानका प्रभाव न केवल परवर्ती अनन्त काल तकके लिए है, बल्कि भिन्न-धर्मा लोगोंके लिए भी ईश्वरकी कृपाका माध्यम बन सकता है, और उसके साथ ही पूर्ववर्तियोंको भी पाप-मुक्त कर सकता है, तो फिर ऐतिहासिकताका सिद्धान्त क्या हुआ? यह नहीं कि अतीतकी ओर जानेवाले प्रभावको मानना अपने-आपमें इतना कठिन है; किन्तु यह स्पष्ट है कि उसकी तर्क-संगति ऐतिहासिक तर्क-संगति नहीं है, बल्कि इन दोनोंमें अनिवार्य विरोध है। अगर कारण-कार्य सम्बन्ध और पूर्वापर सम्बन्ध अलग नहीं किये जा सकते (और यही तो ऐतिहासिकताकी प्रतिज्ञा है), तो फिर यह उलटा प्रभाव कैसे माना जा सकता है? और अगर उसे मानना है तो ऐतिहासिकताका आग्रह क्या नहीं छोड़ा जा सकता है?····

इन सब प्रश्नोंको लेकर बहुत बातें होती रहीं। किसी निश्चयात्मक परिणामपर कैसे पहुँचा जा सकता था—श्रद्धाके निश्चयात्मक परिणाम तर्कके निश्चयात्मक परिणामसे अलग होते हैं; इतना ही नहीं, अलग-अलग श्रद्धाओंके अपने अलग-अलग निश्चय भी होते हैं! बल्कि वास्तवमें सारी बहस ही क्या यह नहीं थी कि श्रद्धाके निश्चयोंको क्यों तर्कके निश्चय

माननेका आग्रह किया जाये ? किन्तु विचार-विनिमय अत्यन्त सहज और निर्बाध भावसे होता रहा। मुझे उसमें एक भिन्न प्रकारकी आस्था और संस्कारकी अन्तरंग झांकी मिली; और मैं समझता हूँ कि पेयर जेवियरका मनोभाव भी कुछ ऐसा ही रहा होगा—नहीं तो विदा लेते समय जिस भावसे उन्होंने कहा, "प्रे फ़ार मी (मेरे लिए प्रार्थना करना)," वह शिष्टाचारके नाते आवश्यक नहीं था—वैसा और बहुत-कुछ, और सच्चे भावसे, कहा जा चुका था। न स्थविर, पेयर प्लासीडसे ही उस ढंगसे भेंट होती और मेरी जिज्ञासा-बुद्धिको उनका आशीर्वाद मिलता।

वास्तवमें इस समूचे प्रसंगका स्थान एक यात्रा-वृत्तान्तमें नहीं है। न ऐसे विषयोंकी अधिक चर्चा करके मैं उस दिव्य मौनका अपमान करना चाहता हूँ जो पिएर-क्वि-वीरमें मुझे मिला था—

पर सबसे अधिकमें
वनके सन्नाटेके साथ मौन हूँ, मौन हूँ—
क्योंकि वही मुझे बतलाता है कि मैं कौन हूँ,
जोड़ता है मुझको विराट्से
जो मौन, अपरिवर्त्त है, अपौरुषेय है,
जो सबको समोता है !....

किन्तु पैरिस, और इस प्रकार फ़्रांसके एक चित्रको सही परिप्रेक्ष्य देनेके लिए विशालतर भूमिका एक दूसरा चित्र देना आवश्यक था। प्रचलित चित्र बहुत भड़कीला है; और जो चित्र उसकी ओट हो गया है, वह यों भी बड़ी सूक्ष्म रेखाओंसे खिंचा हुआ है, इसलिए उसकी ओर थोड़ी देर स्थिर भाव और एकाग्र दृश्यसे देखना वांछित था। •

पिएर-क्वि-वीरसे लौटकर फिर पॉल मासिन्योंसे मिला—मठ जानेसे

पहले भी उनसे मिलकर गया था। यह ईसाई सूफ़ी, गेही संन्यासी, अध्ययन-शील रहस्यवादी, अस्सी वर्षका नवयुवक, एक ऐसा आश्चर्यमय व्यक्ति है कि उसके बारेमें कोई भी बात बिना विरोधाभासके नहीं कही जा सकती—उपर्युक्त वर्णनमें भी विरोधी विशेषणोंके जोड़ोंसे ही यह बात प्रकट हो जानी चाहिए। मासिन्यों अरबीके विद्वान् हैं और अरबके सन्तों तथा रहस्यवादी कवियोंपर उन्होंने विशेष काम किया है, यह तो पहलेसे जानता था। यह भी जानता था कि सत्याग्रह-सिद्धान्तमें उनका विश्वास है और वह उसका प्रयोग भी कर रहे हैं। (पहली बार मिला तब वह अभी जेलसे छूटकर आये थे; दूसरी बार मिला तब तक वह और एक बार जेल हो आये थे। सत्याग्रहका लक्ष्य था नजरबन्दीके कानूनका विरोध। अल्जीरियाके स्वाधीनता-आन्दोलनने प्रश्नको विशेष महत्त्व दे दिया है।) किन्तु कौन क्या करता है, यह जानना एक बात है; और कौन क्या है, यह जानना बिल्कुल दूसरी बात। मासिन्योंके बारेमें यह कहना ठीक होगा कि यह व्यक्ति क्या है, यह जाननेके लिए यह जानना अनिवार्य है कि उसने क्या-क्या किया है, पर ऐसा इसीलिए कि वह सब जाननेके बाद ही यह जाना जा सकता है कि जो कुछ उसने किया है (और वह कुछ कम रंगीन, साहसिक और आश्चर्यमय नहीं है !) उससे उसका कुछ भी अनुमान नहीं हो सकता जो वह है—क्योंकि वह उससे अधिक रंगीन, साहसिक और आश्चर्यमय है ! यह भी उन विरोध-मूल बातोंमेंसे एक है जो मासिन्योंके सन्दर्भमें अनिवार्य हो जाती हैं।

औरोंसे भी मिला जिनके बारेमें लिखा जा सकता है। किन्तु शायद इन सब बातोंके लिए भी यह उपयुक्त स्थान या अवसर नहीं है। अन्तमें उस आशीर्वादका उल्लेख कर देना चाहता हूँ जो चलते समय मासिन्योंसे मिला—विशेषतया इसलिए कि पैरिस एक अर्थमें 'दुनियाका सबसे अकेला शहर' है। मासिन्योंने जब कहा, "मैं तुम्हारे लिए आत्माके इसी अकेले-पनकी कामना करता हूँ—" तब उनका लक्ष्य उस अकेलेपनकी ओर नहीं

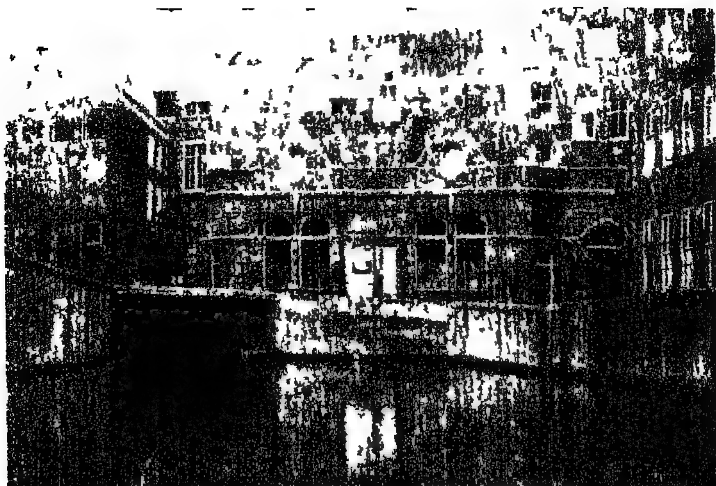
था जो पैरिस दे सकता है और जो मनुष्यको कंगाल बना देता है। मैं यह भी जानता हूँ कि उस समय उन्होंने अगर कंगालीकी भी बात की होती तो वह उस मोहताज अवस्थाकी बात न होती जो इनसानके बेटे (ईश्वर-पुत्र) मनुष्यको मारती है, बल्कि उस निःस्वताकी जिसका गान रहस्यवादियोंने किया है और जिसके बारेमें बाइबिलमें भी लिखा है, "ब्लेसेड आर द पुअर इन स्पिरिट, फ़ार देअर्स इज़ द किंगडम आफ़ हैवन।" उनके आशीर्वादसे वह अकेलापन और वह कंगाली मुझे मिल जाये तब तो मैं धन्य हुआ, कृती हुआ....



हालैंड : एक पवन-चक्की [सरकारी फोटो]



हालैंड : राजधानीका सागर-तट—स्खेवेनिङेन्



एम्स्टर्डामकी एक नहर



हालैंड : स्वेवेनिङेन्‌का 'स्वास्थ्य-भवन'

बालूकी भीतपर

समुद्री मिट्टी, नदीकी मिट्टी और बालू; और, हाँ, कुछ नरसलके मुट्ठे: इनसे देश बनाया जा सकता है या नहीं, यह सवाल पूछा जानेपर बहुतसे लोग अचकचा जायँगे । लेकिन हालैंड—या उसको उसका सही नाम दें तो नीदरलैंड्स (नीचा देश—अधोदेश)—इन्हीं पदार्थोंसे बनाया गया देश है । और बना हुआ नहीं, बनाया गया कहना ही सार्थक है, क्योंकि वास्तवमें उसका बहुत बड़ा अंश इन्हीं तत्त्वोंके उपयोगसे मानव द्वारा बनाया गया है : समुद्र-तटवर्ती या जल-मग्न प्रदेशको बाँध-बाँधकर और पानी उलीचकर खेती-बारी और बसाईके योग्य बनाया गया है । और यह काम एक बार करके समाप्त कर दिया गया हो, ऐसा नहीं है; जो बनाया गया है उसे बनाये रखनेके लिए डच जातिको अविराम परिश्रम करना पड़ता है और यह जाति-व्यापी उद्योग डच जीवन, डच समाज-संगठन और डच व्यापार-व्यवसायकी बुनियाद है ।

हालैंड बहुत बड़ा देश नहीं है—हमारे देशके एक ज़िलेके बराबर उसका प्रसार होगा—लेकिन समुद्रके साथ शताब्दियों लम्बे संघर्षने उसकी भूमिको जो रूप, और उसके निवासियोंको जो चरित्र दिया है दोनों ही उल्लेखनीय हैं, और यूरोपके इतिहास और जीवनमें अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं । हालैंडके प्रदेशका ९९ प्रतिशत भाग ऐसा है जिसकी समुद्र-तलसे ऊँचाई ५ मीटरसे कम है, और इसका बहुत बड़ा भाग समुद्रकी सतहसे उतना ही नीचा है : उसके नगर ठोस जमीन पर नहीं, समुद्री बालूमें जमाये गये लकड़ीके खम्भोंकी बुनियादपर खड़े हैं, जिसका उत्तम उदाहरण एम्स्टर्डमका सुन्दर और प्राचीन नगर है । और उसके हरे-भरे खेत भी बालूपर थोपकर

जमायी गयी मिट्टीकी उपज है ! 'बालूकी भीत' क्षण-भंगुरताके लिए रूढ़ प्रयोग है, लेकिन बालूकी भित्तिपर खड़ा यह देश आज भी दृढ़ विश्वासके साथ भविष्यकी ओर देख रहा है, और उसका अतीत तो धैर्य, साहस और वीरताके उदाहरणोंसे भरा पड़ा है। यूरोपके अन्य देशोंकी भाँति उसने भी अनेक बार विजय और पराजयके दृश्य देखे, आक्रमणकारी सेनाओंके और आततायी विदेशियोंके अत्याचार सहे; और स्वयं भी स्थल और जल सेनाएँ बाहर भेजीं, युद्ध किये, उपनिवेश जीते और साम्राज्य बसाये। ये सब बातें आयी-गयी हो गयीं क्योंकि स्वातन्त्र्य-प्रेम मानवके स्वभावमें निहित है और कोई भी अत्याचारी व्यवस्था वह चिर-कालके लिए नहीं स्वीकार कर सकता है; पर उसके नागरिकों और उसके साग-रिकोंने धैर्य और साहस और चरित्र-गठनकी जो परम्पराएँ गढ़ी हैं वे स्मरणीय हैं। इस दृष्टिसे इंग्लैंड और हालैंडका जीवन-इतिहास प्रायः समान्तर चलता है। यह समानता आकस्मिक नहीं है : सागरसे दोनोंका सम्बन्ध एक-सा रहा है और इस सम्बन्धके सहारे ही उनके चरित्र, उनकी संस्कृति और उनके इतिहासको समझा जा सकता है।

मैंने हालैंडमें उत्तरकी ओरसे विमान-मार्गसे प्रवेश किया था। डेन-मार्ककी राजधानी कोपेनहागेनसे उड़कर एम्स्टर्डमके हवाई बन्दर स्खीफ़ोल पर उतरा था। हालैंड आनेका प्रवेश-पत्र (वीज़ा) मैंने बहुत पहले पेरिस में लिया था, और आते समय मुझे इस बातका ध्यान नहीं रहा था कि वीज़ाकी दो महीनेकी अवधि तो पूरी हो चुकी है। बाहर निकलते समय कस्टम वालोंने रोक दिया और बताया कि मेरा वीज़ा तो व्यर्थ हो चुका है। नहीं जानता कि और देशोंमें ऐसी परिस्थितिमें क्या होता—या यों कहूँ कि जानता हूँ कि कुछ देशोंमें या तो दो-चार दिन नजरबन्दीकी-सी हालतमें पड़े रहना पड़ता अथवा अगले ही विमानसे वापिस चले जाना पड़ता। मेरे कस्टम वालोंसे यह कहनेपर, कि यह भूल अनजाने हो गयी है और प्रवेश-पत्रकी अवधि वहीं बढ़वा दें, उन्होंने उत्तर दिया कि यह

उनके बसकी बात नहीं क्योंकि यह तो केन्द्रीय विदेश मन्त्रालयका सम्बद्ध विभाग ही कर सकता था। किन्तु उन्होंने आश्वासन दिया कि वह प्रयत्न करके देखेंगे और भरसक जल्दी मुझे सूचित करेंगे। मुझे एक तरफ़ आराम-कुर्सीपर बिठाकर कर्मचारी मेरा पासपोर्ट लेकर चला गया। मैं बैठकर सोचने लगा कि मैं तो एम्स्टर्डाममें हूँ और मन्त्रालय राजधानी हेग (अथवा डच नामके अनुसार डेन हाख़) में; न जाने कितनी देर लगेगी....

लगभग छः मिनट बाद कर्मचारी मेरा पासपोर्ट लेकर लौट आया। उसपर अवधि बढ़ानेका प्रमाण-पत्र मुद्रित था, जिसके साथ मन्त्रालयके तत्सम्बन्धी फ़ाइलका नम्बर इत्यादि भी लगा हुआ था। मैंने धन्यवाद देकर पासपोर्ट ले लिया और बाहर चलनेकी तैयारी करने लगा। कर्मचारीने कुछ आत्मतुष्ट भावसे मुसकराते हुए कहा : 'इसे आप अत्यधिक विलम्ब तो नहीं कहेंगे न ?' मैंने एक बार फिर धन्यवादके साथ उसे और उसके मन्त्रालयको बधाई दी और आगे बढ़ गया।

उस समय मैं एम्स्टर्डाममें अधिक न रुक कर सीधे पूर्वोत्तर हालैंडके ख़ोनिङेन नगरको चला गया था, जहाँके विश्वविद्यालयमें 'तन्त्र-युग और आधुनिक सभ्यताकी प्रवृत्तियाँ' विषयपर एक विचार-गोष्ठीमें मुझे भाग लेना था। ख़ोनिङेनका विश्वविद्यालय हालैंडके उन प्राचीनतर विश्व-विद्यालयोंमेंसे एक है जो मिलकर प्रतिवर्ष एक अन्तर्राष्ट्रीय विचार-गोष्ठीका आयोजन किया करते हैं। इसमें प्रायः २५-३० देशोंके अध्यापक और विद्यार्थी—और कभी-कभी मुझ जैसे घुमन्तू लेखक—भाग लिया करते हैं। इस बार गोष्ठी कुछ दिन ख़ोनिङेनमें रही, कुछ दिन डेल्फ़्टमें जुटी; किन्तु इन दोनों विश्वविद्यालयोंके अलावा और केन्द्रोंसे भी आचार्य-गण आये हुए थे।

ख़ोनिङेनसे दक्षिण-पूर्वके इलाक़ेमें जाना हुआ। यह प्रदेश अपेक्षया कुछ ऊँचाईपर है और इसलिए इसीको विशेष रूपसे एक राष्ट्रीय उद्यान

की तरह सँवारकर रखा जाता है कि विदेशी यात्रियोंको आकृष्ट करे। यों तो सभी यूरोपीय देश बड़े पैमानेपर 'यात्रियोंका व्यवसाय' करते हैं। पर कुछ देशोंकी अर्थ-व्यवस्थाका आधार ही इन टूरिस्टों-सैलानियोंका आना-जाना है, और ऐसे देश उन्हें आकृष्ट करनेके लिए विशेष प्रयत्न करते हैं। हालैंडकी समृद्धि मुख्यतया टूरिस्टोंके आयातपर निर्भर हो, ऐसा तो नहीं है; उसका दूध, मक्खन, पनीरका निर्यात और उसका समुद्री व्यापार दोनों विश्व-विख्यात हैं। और हाँ, उसका फूलोंका निर्यात भी संसारका एक अचरज है। फिर भी सैलानियोंकी उपयोगिता उसके लिए काफ़ी है। दक्षिण-पूर्वके प्रदेशका सहज सौन्दर्य डच लोगोंको भी आकृष्ट करता है। आर्नहेममें राइन नदीकी तट-रेखा देखने, या गर्मियोंमें सांसबेकके राष्ट्रीय उद्यानमें घूमने, कम लोग नहीं जाते। पर अपने देशमें कौन खुले हाथसे खर्च करता है? और फिर डच गृहस्थ तो इतना प्रसिद्ध किफ़ायत-सार है कि 'डच आतिथ्य' का अर्थ ही अलग हो गया है: होटलमें दी गयी दावतमें अतिथि और आतिथेय सभी अपना-अपना हिसाब अलग चुकायें या बिल आपसमें बाँटकर चुकता करें तो यह 'डच आतिथ्य' कहलाता है। और लोग इसपर हँस भी सकते हैं, लेकिन ऐसी परिस्थितिसे सभी लोग परिचित हो गये हैं जब कि आत्म-सम्मान बनाये रखनेका वही एक मात्र उपाय रह जाता हो। इस विशेष प्रकारकी व्यावहारिकताका एक पहलू यह भी है कि हालैंडमें टिप देनेकी प्रथा लगभग नहीं है। न ही कुछ दूसरे देशोंकी भाँति बिलमें १० या १५ प्रतिशत जोड़ दिया जाता है। बल्कि ऐसा भी अनुभव हुआ कि टिप दिये जानेपर बेटर उसे ग्रहण करनेसे इनकार कर दे या पूछे: 'यह किसलिए?' विशेष रूपसे जब पैरिससे इसकी तुलना करें—जहाँ कि बिलमें बख्शीशके रूपमें १५ प्रतिशत जोड़ देनेके बाद भी स्वेच्छया कुछ दिये जानेकी अपेक्षा बेटर करता है—तब समझमें आता है कि हालैंडमें व्यावहारिकता और आत्माभिमानका कैसा योग उपस्थित किया गया है।

जो हो, सांसबेकके राष्ट्रीय उद्यान या ऐसे अन्य दर्शनीय स्थलोंकी समुचित व्यवस्था, और देशकी आर्थिक समृद्धिके लिए हालैंडको भी टूरिस्टों की तलाश करनी पड़नी है। राष्ट्रीय उद्यानकी सुरक्षित भूमिका सौन्दर्य सचमुच बड़ा आकर्षक है और इसके बीचमें 'क्रोलर-मूलर म्युज़ीयम' नामका आधुनिक कलाका जो सुन्दर संग्रहालय बना है, अकेले उसीको देखनेके लिए हालैंड आना सार्थक हो सकता है।

राष्ट्रीय उद्यान वास्तवमें वनोद्यान अथवा सुरक्षित वनखण्डी ही है, लेकिन उसके एक छोरपर एक यत्नपूर्वक पोषित हरियाली भी है जिसमें जमे हुए छायादार पुराने पेड़ोंके नीचे बच्चे क्रीडाके, और वयस्क युगल वायुसेवनके लिए आते रहते हैं। सांसबेकके इसी उद्यानमें खुलेमें मूर्ति-कला की अन्तर्राष्ट्रीय प्रदर्शनी होती है। मूर्तिकार मूर्तिकी कल्पना शून्यमें नहीं करता है, एक परिवेशको ध्यानमें रखकर ही करता है; यदि ऐसा है तो स्पष्ट है कि एक बन्द कमरेमें बहुत-सी मूर्तियाँ एक साथ जमा कर देनेसे ही प्रदर्शनी नहीं हो जाती—क्योंकि इस प्रकार वह संगठित इकाई सामने आ ही नहीं सकती जो रूप-कल्पीके मनमें थी। सांसबेककी मूर्तिकला-प्रदर्शनीमें यह प्रयत्न किया जाता है कि ऐसी मूर्तियोंको भरसक वैसे ही परिवेश अथवा परिदृश्यमें उपस्थित किया जावे जिसके लिए वह रची गयी थी। यह भी ध्यान रखा जाता है कि किसी एक मूर्तिको देखनेमें दूसरी मूर्ति बाधक न हो—दर्शक एकाग्र होकर मूर्ति-मंडित परिदृश्य देख सके। हाँ, जो छोटी मूर्तियाँ घरके भीतर या कमरेमें रखी जानेके लिए बनी हैं, उनके प्रदर्शनके लिए एक ओर छता हुआ स्थान भी है। ऐसी प्रदर्शनी न केवल बहुत अधिक तृप्तिकर होती है वरन् दर्शकके लिए भी और स्वयं मूर्ति-कारोंके लिए स्फूर्तिप्रद और शिक्षाप्रद भी। जिन दिनों मैं वहाँ गया उन दिनों यह प्रदर्शनी हो रही थी और उसकी कुछ मूर्तियाँ अब भी ज्योंकी त्यों मेरी दृष्टिके सामने आ जाती हैं—शून्यमें नहीं, पूरे परिदृश्यमें, जैसी देखी जानेके लिए वे बनी थीं।

क्रोलर-मूलर संग्रहालय एक निजी संग्रह था जो कि राष्ट्रको दान कर दिया गया। यूरोपके इम्प्रेशनिट कालकी—जो कि मेरी समझमें आधुनिक यूरोपीय चित्र-कलाका उत्कर्ष-काल था—चित्र-कलाके दो सुन्दर संग्रह हालैंडमें हैं जिनमेसे एक क्रोलर-मूलर संग्रह है, दूसरा संग्रह एम्स्टर्डामके नगर संग्रहालयमें। क्रोलर-मूलर दम्पति समकालीन चित्र-कलाके पारखी और संग्राहक तो थे ही, अपने समयके कई प्रसिद्ध कलाकारोंसे और विशेषतया वान् गोखसे उनका सौहार्द भी था। वान् गोखके चित्रोंकी अच्छीसे अच्छी प्रतिकृतियाँ मैंने देखी थीं, पर उन दोनों संग्रहालयोंमें उनके सैकड़ों चित्र देखकर समझमें आया कि यन्त्र-कौशल कभी कला-शिल्पको नहीं पा सकता, कुछ रह ही जाता है जिसे केवल कृतिकार कह सकता है—कुछ ऐसा जो एक ही हो सकता है और आवृत्तिसे परे रहता है····परम्परागत डच चित्र-कलाका मुख्य संग्रह एम्स्टर्डामके राजकीय संग्रहालयमें है, जहाँका रेम्ब्रांट संग्रह दर्शनीय है। यों संग्रहालय हालैंडमें कई हैं और टूरिस्ट लोग राजधानी हेगके मोरिट्ज़हाउसका संग्रहालय देखने प्रायः जाते हैं। इस संग्रहालयके भी कुछ चित्र जगत्प्रसिद्ध हैं, यथा योहानस वेर्मीयरका 'डेल्फ़्टके घाट'का चित्र। आज भी डेल्फ़्टका यह व्यापार-केन्द्र उस चित्रसे बहुत बदला नहीं है—मैं जब डेल्फ़्ट गया तब उस दृश्यको सामने पाकर भी तीन सौ वर्ष पहलेका वेर्मीयरका चित्र ही मानो मेरी आँखोंके सम्मुख रहा! हालैंडके प्राकृतिक दृश्योंके सर्वाधिक प्रसिद्ध चित्रकार रौसडाल (१७ वीं शती) के कुछ चित्र भी इस संग्रहालयमें हैं। उसमें कुछ विशेष प्रतिभा थी कि उसके सैरे (लैंडस्केप) यथार्थसे भी अधिक सच्चे हो आते हैं! हालैंडमें घूमते हुए कई बार सहसा किसी दृश्यको देखकर यह बोध चौंका देता कि जो सामने है उसे न देखकर मैं उसके रौसडाल द्वारा अंकित चित्रको ही देख रहा हूँ—कि प्रत्यक्ष दृष्टिसे पूर्वस्मृतिकी शक्ति अधिक है। विशेष रूपसे जिस प्रकारके मेघाच्छन्न आकाशमें बसे हुए आलोकके चित्र देखे थे, वह आलोक पहले-पहल हालैंडमें ही देखनेको मिला। हम सोच सकते

हैं कि आखिर दिनका प्रकाश सर्वत्र एक-सा होता है तो यहाँ और वहाँके प्रकाशमें ऐसा क्या अन्तर होगा। लेकिन वास्तवमें ऐसा नहीं है। भारतका या साधारणतया भूमध्यवर्ती देशोंका प्रकाश कुछ ऐसा तीखा होता है कि दृश्यके रंगको मानो सोख लेता है—हमें वर्ण उतने नहीं दीखते जितनी कि वर्णोंकी एक प्रकारकी चौंध।* समशीतोष्ण देशोंका तिरछा प्रकाश बहुत भिन्न होता है—वह रंगोंको सोखता नहीं, सहलाता है, जिससे उनमें एक नये प्रकारकी कान्ति आ जाती है। पर इस प्रदेशके सागर-तटवर्ती या द्वीप-प्रदेशोंमें यह तिरछा आलोक हल्की धुन्धमें, या नमकसे लदी हुई, नम समुद्री हवामें बसकर और भी नया रूप ले लेता है—प्रकाश मानो सूर्यसे पृथ्वीकी ओर नहीं आता बल्कि प्रकाशित वस्तुओंके भीतरसे फूटता है....यह अद्भुत प्रकाश विशेष रूपसे हालैंडमें और कहीं-कहीं ब्रिटिश द्वीप-समूहमें देखनेको मिला। फिर उत्तरमें प्रकाश और भी धीमा हो जाता है और रंग धुँधले पड़ने लगते हैं—ध्रुव-मण्डलमें तो रंग प्रायः लुप्त ही हो जाते हैं....

पर संग्रहालय देखनेवाले टूरिस्ट कम ही होते हैं, इसलिए हालैंडके अनेक प्रदेशोंको जीवित संग्रहालय-सा सजाकर भी रखा जाता है। एम्स्टर्डाम-से उत्तर मार्केन नामका छोटा-सा द्वीप और वोलैंडामका गाँव भी ऐसे ही प्रदेश थे। हमारे देशमें गाँव देखने जानेका विशेष उत्साह नहीं होता क्योंकि देश गाँवोंसे भरा पड़ा है: पर यूरोपमें, जहाँ नागर अथवा औद्यो-गिक संस्कृतियोंने लोक-संस्कृतियोंको प्रायः नामशेष कर दिया है, परम्परा-

---

* गर्म देशोंमें गहरे रंगोंका—लाल, गेरुआ, सिन्दूरी, नीला, काशनी, पक्का पीला, मूँगई, तोतापरी आदिका—चलन निस्सन्देह प्रकाशके इस गुणसे सम्बद्ध है।

गत ग्राम्य-जीवनकी परिपाटीपर चलनेवाले गाँव दुर्लभ हो गये हैं और जहाँ भी ऐसी परिपाटियाँ थोड़ी-बहुत भी अक्षुण्ण बनी हैं वहाँ उन्हें बनाये रखनेका संगठित प्रयत्न होता है। कुछ तो इसका सहज आकर्षण है ही, पर जहाँ इसकी जड़में आर्थिक लाभकी प्रेरणा मुख्य होती है वहाँ कभी-कभी हँसी भी आने लगती है। ख़ोनिडेन विश्वविद्यालयके अपने कामसे एक रविवार छुट्टी निकालकर मैं वोलैंडाम देखने गया था। छोटा-सा सुन्दर गाँव था जिसमें हर गली-कूचेमें गुलाबकी बाड़ें फूलोंसे लदी झूम रही थीं और खिड़कियोंके भीतरसे लाल धारीके परदे उजले चमक रहे थे; गाँवके चौकमें और सागर-बन्धकी सड़कपर परम्परागत पोशाकें पहने अनेक नर-नारी घूम रहे थे। चारों ओर हँसी-खुशीका वातावरण था। पहले तो मैं समझा कि गाँवके लोग सचमुच रविवारको इतने उत्साहसे छुट्टी मनाते हैं और टूरिस्टोंसे मिलते-जुलते हैं; लेकिन थोड़ी ही देरमें जान गया कि इन पुरानी पोशाकोंमें मटरगश्ती करते हुए आधेसे अधिक लोग विदेशी टूरिस्ट हैं, जो बन्धके किनारेकी दूकानोंसे पोशाकें और लकड़ीके खड़ाऊँ किरायेपर लेकर फोटो खींचते-खिचवाते हैं और चल देते हैं! कुछ दूकानों पर विज्ञापन भी देखा; सवा रुपये घंटा किरायेपर पूरी पोशाक मिल सकती थी—केवल फ़ोटो खिचानेके लिए दस आनेपर! परम्पराओंको बेच खानेकी यह प्रवृत्ति सारे पश्चिममें मिलती है, और कुछ भिन्न रूपमें यहाँ भी है ही (और क्या भारतमें भी लोक-संस्कृतिकी परम्पराका कम शोषण हो रहा है?), इसलिए वोलैंडामके परिश्रमी मछुओंको दोष क्यों दिया जाय, पर "चित्रलिखित परम्परागत गाँवों" की बातकी असलियत समझमें आ गयी।

लेकिन हालैंडकी और एक अद्वितीय दर्शनीय चीज़का आधार इतना दिखावटी नहीं है। वह है वहाँके फूलोंकी खेती—विशेष रूपसे उन फूलोंकी जो गाँठोंसे होते हैं—जैसे नरगिस, लाला, सोसन, भू-चम्पक, केशर, गुण-केशर—अंग्रेज़ी नाम लें तो नार्सिसस, ट्यूलिप, आयरिस,

लिली आफ़ द वैली, क्रोकस, डेफ़ोडिल, इत्यादि। इनमें गुल-लाला अथवा ट्यूलिप हालैंडकी विशेष चीज है। एम्स्टर्डामसे हेगको जो सड़क जाती है, उसके दोनों ओरका प्रदेश इसकी खेतीका विशेष प्रदेश है। अप्रैलके अन्तिम दिनोंसे मई-भर सड़कके आस-पास कोई बीस-पचीस मील लम्बी फूलोंकी क्यारी देखी जा सकती हैं, जिसे विभिन्न रंगों और जातियोंके ट्यूलिप फूलोंकी नियमित कतारें एक अलौकिक दुकूलका रूप दे देती हैं। यह दृश्य देखने भी टूरिस्ट आते हैं, पर इसमें बनावट कुछ नहीं है, न यह दावा है कि ये फूल जंगली या नैसर्गिक हैं, या कि खेत न होकर उद्यान हैं। नहीं, यह फूलकी खेती ही है, पर उसी रूपमें जगत्प्रसिद्ध है और प्रसिद्धिकी पात्र है। डच नागरिक *'संसारकी सबसे बड़ी फूलोंकी क्यारी'* पर भी *उतना ही गर्व कर सकता है जितना कि* राटर्डामकी संसारकी दूसरी सबसे बड़ी बन्दरगाहपर, और इसलिए और भी अधिक कि जिस भूमिपर वह फूल उगाता है वह भी उसने उसी प्रकार सागरसे छीनी है जिस प्रकार उसने राटर्डामको अभी इस पिछले महायुद्धमें मटियामेट हो जानेके बाद फिरसे बना लिया है। युद्धसे पूर्व कारबारकी दृष्टिसे राटर्डाम बन्दरगाहका स्थान न्यूयार्क और हामबुर्गके बाद तीसरा था, अब दूसरा रह गया है, और अचरज नहीं कि सारे यूरोपके आयात-निर्यातको केन्द्रित करता हुआ शीघ्र ही पहला हो जाय।

युद्धकालीन विध्वंसके लक्षण विशेष रूपसे जर्मनीमें बहुत देखनेको मिले, और युद्धोत्तर पुनर्निर्माणकी दृष्टिसे पश्चिमी बर्लिनका पुनर्निर्माण कम आश्चर्यजनक नहीं है। किन्तु राटर्डामका पुनर्निर्माण न केवल डच जातिकी दुर्दम जिजीविषाका प्रमाण है बल्कि कलात्मक दृष्टिसे भी विशेष महत्त्व रखता है। राटर्डाम मुख्यतया समुद्री व्यापारका केन्द्र था—वहाँके व्यापारी-वर्गके प्रतिनिधि अब भी सगर्व सारे यूरोपको 'राटर्डामका पिछवाड़ा' कहते हैं क्योंकि वहाँका आयात-निर्यात राटर्डाममें केन्द्रित है। इसलिए नगर और बन्दरगाहका पुनर्निर्माण केवल व्यापारिक सुविधाकी दृष्टिसे ही किया

गया होता तो भी अचम्भेकी बात होती; किन्तु नगरके निर्माताओंने इतने ही से सन्तोष नहीं किया, बराबर इसके लिए भी यत्नशील रहे कि उनका नगर स्थापत्यकी दृष्टिसे भी महत्त्व रखे। राटर्डामका नगर भव्य भी है और सुन्दर भी—और उपयोगी भी। मेयरने स्वयं कुछ समय निकालकर हमारी छोटी-सी टोलीको उसके विभिन्न कक्ष दिखाये तो उसमें अभ्यागतके सत्कारकी उदार भावना जितनी थी उतना ही इस बातका गौरव-भाव भी था कि उनका भवन आधुनिक यूरोपीय स्थापत्यमें अपना स्थान रखता है। राटर्डामके व्यापार मण्डलका भवन अत्यन्त प्रभावशाली था और आधुनिक स्थापत्यका एक उल्लेखनीय नमूना। विशाल भवनमें कामसे आनेवालोंकी सैकड़ों मोटरें खड़ी करनेके लिए स्थान भवनके बाहर नहीं बल्कि दूसरी मंजिलमें रखा गया है और मोटरें सीधे दूसरी मंजिलमें जाकर ही रुकती हैं। सबसे ऊपरकी मंजिलमें काँचसे जड़े हुए विशाल बरामदेमें कैंटीनमें चाय पीते हुए पूरे नगरका विहंगम दृश्य देखनेको मिला।

स्थापत्यकी ओर डच जाति विशेष ध्यान दे रही है। राटर्डामका बाउ-सेंट्रम—स्थापत्य-केन्द्र—अपने-आपमें स्थापत्यका महाविद्यालय भी है और संग्रहालय भी। हेगका मदूरोडाम उद्यान भी अपने ढंगकी एक चीज़ है। यहाँपर हालैंड-भरकी प्रसिद्ध इमारतोंके छोटे प्रतिरूप स्थापित किये गये हैं और उन्हींका एक छोटा-सा नगर बनाया गया है। इसकी बड़ीसे बड़ी इमारत भी छः फुटसे कम ऊँची ही होगी; किन्तु यह न समझा जाय कि यह केवल बच्चोंके मनोरंजनका एक नये ढंगका साधन मात्र है। बच्चे और स्कूलके विद्यार्थी वहाँ पर्याप्त संख्यामें जाते हैं और मनोरंजनके साथ-साथ शिक्षा पाते हैं। किन्तु उसका आकर्षण अथवा उपयोग वहीं तक सीमित नहीं है। स्थापत्यकी, और भवन-निर्माणमें सौन्दर्यकी ओर विशेष सजगताके प्रचारमें मदूरोडाम काफ़ी योग देता है, क्योंकि इसके भवन सब

वैज्ञानिक आनुपातिक प्रतिकृतियाँ (स्केल माडेल) हैं। इससे होने वाली आय एक विद्यार्थी-सहायकनिधिमें जाती है।

डच जातिका उसके पड़ोसी कभी मज़ाक भी उड़ाते हैं। कोई उसे कल्पना-विहीन बताता है तो कोई उसमें विनोदकी कमीकी आलोचना करता है। पर अथक उद्यम, अदम्य साहस, उत्कट स्वातन्त्र्य-प्रेम और अमुखर दया-भाव यदि किसी जातिको श्रद्धाका पात्र बनाते हैं तो डच जाति निस्सन्देह श्रद्धेय है। और अधिकांशमें मानव-निर्मित, नीचा और सपाट होकर भी स्वच्छ सुघर, और सजीला नीदरलैंड प्रदेश दर्शनीय भी है, रमणीय भी।

संयुक्त राज्य : दो राजधानियाँ

लन्दन

हर नगरका अपना एक स्वाद होता है। किसी भी नगरके स्वादका बखान बहुत किया जा सकता है, लेकिन बखानसे किसी दूसरेको वह चखाया नहीं जा सकता ! और ऐसे प्रयत्नसे स्वादका जो आभास होता है, वह उससे अधिक सच्चा नहीं होता जितना कि वजीरकी शहदमें डूबी हुई दाढ़ी चूसकर ईरानके बादशाहको आमके स्वादका आभास हो सका था !

स्वाद-बोधकी यह समस्या और भी विकट तब हो जाती है जब कोई व्यक्ति ऐसे नगरमें पहुँचता है जिसे वह वर्णनसे बहुत अच्छी तरह जानता है, जिसकी चर्चा सुनते-सुनते और जिसके मुहल्लों और रास्तोंका वर्णन उपन्यास-कहानियोंमें पढ़ते-पढ़ते वह उससे इतना परिचित हो गया है मानो स्वयं वहाँ रह चुका है—पर जहाँ पहुँचकर वह पाता है कि इस किताबी परिचयके आधारपर कल्पना द्वारा रचे हुए नगर और वास्तविक नगरके रूपमें सम्पूर्ण एकता रहते भी दोनोंके स्वादमें आकाश-पातालका अन्तर है। (यह नहीं कि आकाश या पातालका स्वाद मैं जानता हूँ—कमसे-कम पातालका तो बिलकुल नहीं जानता !—लेकिन आकाशके ही दो स्तरोंका स्वाद एक-दूसरेसे, और भूतलके स्वादसे, जितना भिन्न होता है उससे यह निष्कर्ष जरूर निकाल सकता हूँ कि पातालका स्वाद बिलकुल भिन्न होगा।)

फिर ऐसे नगरका स्वाद दूसरोंको करानेमें अतिरिक्त समस्या होती है कि यद्यपि वर्णन तो उसीका करना चाहता हूँ जो पहलेसे सुपरिचित है,

तथापि अनुभव उससे बिलकुल भिन्न प्रकारका कराना चाहता हूँ। इस प्रकार यह चाहता हूँ कि पुरानी पाटीपर नये रंगकी स्याहीसे नयी भाषामें कुछ लिख दूँ और यह मान लूँ कि उसके लिखनेसे ही न केवल वह नयी भाषा बोधगम्य हो जायगी, बल्कि पुराना लिखा हुआ सब मिट भी जायगा !

जिन्होंने अंग्रेजी पद्धतिसे शिक्षा पायी है—और भारतके शिक्षितोंका अधिसंख्य वर्ग अभी तक ऐसा ही है—उन सभीके लिए लन्दन ऐसा ही नगर है। जिन्होने देखा नही है वे भी उसे काफ़ी जानते-पहचानते हैं। यह दूसरी बात है कि उनमेंसे बहुतेरोंका लन्दन वह हो जो कि सन् १६६६ की आगमें जल गया और जिसका वर्णन डिकेंसने किया है; कुछका वह हो जिसका रूप अठारहवीं शतीके नाटककारोंने तत्कालीन नागर समाजके कृत्रिम जीवनके व्यंग्य नाटकोंमें किया है; और कुछका लन्दन वह हो जो गाल्सवर्दीके धनसेठोंके समाजका नगर है। कुछका अवश्य वह लन्दन भी होगा जो वोडहाउस द्वारा वर्णित क्लबों, अभिजात परिवारोंकी हवेलियों या रियासतों, अनब्याहे शहरियोंके फ़्लैट अथवा कमरों, 'चाची एगाथा' जैसे सम्बन्धियों अथवा 'जीव्ज' जैसे नौकरोंके वर्णनमें मूर्त होता है !

क्या मेरे लिए यह सम्भव होगा कि इस जाने-पहचाने लन्दनके ऊपर उस दूसरे लन्दनका आरोप कर दूँ जिसे केवल मैंने देखा, और जिसका स्वाद केवल मैं जानता हूँ—जिस स्वादमें परिचितके अपरिचयका अनिर्वचनीय स्वाद भी मिला हुआ है ? विशेषतया जो लोग टेम्स नदीके पुलपर खड़े होकर उसे अपनी आँखोंसे नहीं, बल्कि स्मरण की हुई वर्ड्स्वर्थकी पंक्तियोंसे*

* अर्थ हैज़ नाट एनीथिंग टु शो मोर फ़ेयर :
डल वुड ही बी ऑफ़ सोल हू कुड पास बाइ
ए साइट सो टचिंग इन इट्स मैजेस्टी···
शिप्स, टावर्स, डोम्स, थियेटर्स, एंड टेम्पल्स···इत्यादि
—वर्ड्स्वर्थ, 'अपॉन वेस्टमिंस्टर ब्रिज'

प्रत्यक्ष करते हैं, या हैम्पस्टेड जाकर अपनी आँखोंके सामनेके मैदानको न देखकर केवल कीट्सकी चली हुई भूमि देखते हैं, उनके लिए टेम्सके घाट आजके अन्तर्राष्ट्रीय व्यापारका एक केन्द्र-स्थल न होकर केवल वह रहस्यमय प्रदेश हैं जिसमें एडीसन और स्टील घूमते थे; जानसन और पोप्स अपनी पैनी उक्तियोंके लिए सामग्री ढूँढ़ते थे; मार्लो शराब पीकर मल्लाहोंकी तरह झगड़ते और फ़साद करते थे, कोलरिज और डक्विंसी नशा करके पिनकचियोंकी तरह रंगीन स्वप्न देखते थे,''''उनके लिए कैसे उस लन्दनको मूर्त किया जा सकता है जो आज है ?

मैं अपने यूरोपीय प्रवासमें तीन-चार वार लन्दन गया। प्रत्येक बार परिचय-अपरिचयका यह दोहरा भाव मेरे मनमें जागा—इसके बावजूद कि पहली बारके बाद तो मैं यह नहीं कह सकता था कि 'अभी वहाँ नहीं गया हूँ।'

पहली बार लन्दन मईके आरम्भमें गया था, रोम और पैरिस होता हुआ। इटली और फ्रांसके बसन्तके बाद लन्दनका नीरस और श्री-विहीन लगना स्वाभाविक ही है। फिर लातीनी और अंग्रेज़ी स्वभावका अन्तर भी ऐसा है कि लन्दनकी सहज धूसरताको और भी मटमैला, बल्कि कालिख-पुता, बना देता है ! जैसे अंग्रेज़ मज़ाक करता है और हँसता नहीं है, या सख्य चाहता है पर बोलता नहीं है; वैसे ही लन्दन शहर जीना चाहता है पर निश्चलताके तलके नीचे, सुलगता है पर राखकी मोटी पर्तके नीचे छिपकर !

रोम और पैरिसकी तुलनामें लन्दन कुरूप है; स्टाकहोम और कोपेन-हागेनकी तुलनामें गन्दा; बर्लिनकी तुलनामें शिथिल और निकम्मा। लेकिन कोई विचित्र कारण है कि लन्दन एक सहज घरेलूपनका भाव उत्पन्न करता है। उसमें कोई तड़क-भड़क नहीं है, लेकिन उसकी सड़कोंपर चलते हुए धीरे-धीरे यह बोध मनपर छा जाता है कि यह एक महानगर है जो अपने

काममें डूबा हुआ है और जानता है कि अधिक शोर मचाने या हड़बड़ानेसे ही काम अधिक नहीं हो जाता।

दूसरी बार जब लन्दन गया था तब ग्रीष्म-काल था, जिसमें सारा यूरोप मगन होकर छुट्टी मनाता है और लन्दनसे भी एक-एक पखवारेके वार्षिक विश्रामके लिए जानेवाली टोलियाँ सब दिशाओंमें जा रही थीं; फिर भी दूसरी राजधानियों और लन्दनका अन्तर स्पष्ट था।

पैरिस : "ग्रीष्ममें पैरिस मुर्दा शहर होता है—ग्रीष्म-भर यहाँ कोई हलचल नहीं होती!" जहाँतक कामका सवाल है, काम तो यों भी एक मुसीबत है; जब करना पड़ता है तब करना ही पड़ता है—तब फिर अभी क्यों उसकी बात सोचें?....

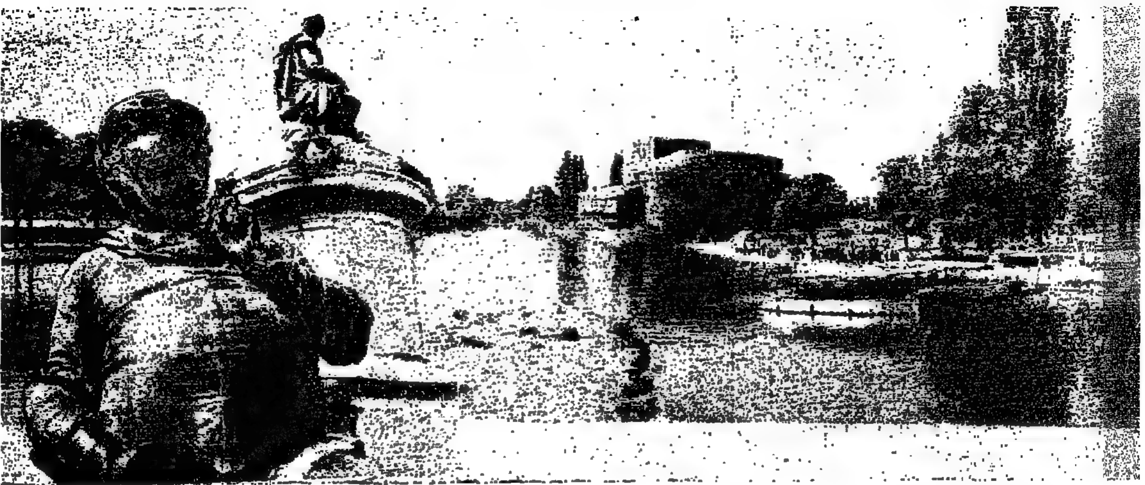
स्टाकहोम : साफ़-सुथरा और स्निग्ध, लेकिन जहाँतक किसीसे मिलनेका प्रश्न है, "गर्मियोंमें सब लोग बाहर चले जाते हैं—शायद ही कोई मिल सके!" और जहाँतक कामका सवाल है—थोड़ा-बहुत काम होता रहता है क्योंकि आख़िर इनसानको कुछ-न-कुछ तो करना ही चाहिए।....

कोपेनहागेन : स्टाकहोम-सा ही स्वच्छ; उससे कुछ और गर्म, और इसलिए पोशाकके नामपर कुछ और भी कम पहने हुए। "किसीसे मिलना है? तब किसी-न-किसी सागर-तटपर घूमने चले जाइये; कहीं-न-कहीं कोई-न-कोई मिल ही जायगा जिससे आप मिलना चाहेंगे! यों सभी तो हँसमुख और मिलनसार हैं, किसीसे भी मिल लीजिए! काम? हाँ-हाँ, ज़रूर, काम भी करेंगे, जब उसका समय होगा। तब उसकी बात भी ज़रूर सोची जायगी।"....

किन्तु लन्दन....यहाँ भी अवकाशका समय है, लेकिन तब भी वातावरण कामका है, लगनसे और परिश्रमपूर्वक किये जानेवाले कामका। खेलके लिए अधीर बच्चोंको दूर देहातमें, सागर-तटपर, झीलोंके प्रदेशमें, उद्यानोंमें, या चाहे कहीं भी भेज दिया गया है। "जाओ बच्चो, बाहर जाकर खेलो—मुझे काम करना है।"....

सचमुच काम करनेके लिए शहरोंमें लन्दन अच्छा शहर है। पैरिसमें मौज बहुत हो सकती है, और उसके लिए साथियोंकी कमी नहीं है, लेकिन जो अकेला पड़ जाय वह पैरिसमें इतना अकेला हो जा सकता है कि दुनियामें और कहीं उस निर्जनताकी बराबरी नहीं हो सकती। किसी हद तक ऐसा अकेलापन किसी भी बड़े शहरमें हो सकता है, लेकिन पैरिस शायद दुनियाका सबसे अकेला शहर होगा। लन्दनमें भी अकेलापन सम्भव है लेकिन वैसा नहीं। दूसरी ओर सांस्कृतिक आयोजनोंकी दृष्टिसे लन्दन संसारके किसी दूसरे शहरसे कम तत्पर नहीं है और उसके सांस्कृतिक जीवनकी सम्पूर्णता अद्वितीय है। लेकिन जहाँ जो मनोरंजन और कला-विनोद चाहता है, उसके लिए लन्दन वही प्रस्तुत करता है, वहाँ खाहमखाह सड़कोंपर डौंड़ी पीटता हुआ चलकर काम करना चाहनेवालोंको बाधा नहीं देता। अन्य सभी राजधानियोंमें कोई महीना ऐसा अवश्य होता है जब कि सांस्कृतिक आयोजन बन्द रहते हैं; लेकिन लन्दनमें ऐसा कभी नहीं होता—बल्कि अवकाशके दिनोंमें आश्चर्यजनक क्रियाशीलता लक्षित होती है। संग्रहालयोंमें नयी प्रदर्शनियाँ, रायल आपेरा हाउसमें नये आपेरा, आल्बर्ट हाल और फ़ेस्टिवल हालमें संगीत और नृत्य-नाट्य, ड्रूरी लेन, एडेल्फ़ी, फ़ीनिक्स, ग्लोब, लिरिक और अपोलो थिएटरोंमें नाटक और ओल्डविक्‌में शेक्सपियरके नाटक—ये सभी स्थान छुट्टीके मौसममें भी कार्यक्रम प्रस्तुत करते रहते हैं।

अंग्रेज़ी-शिक्षित भारतवासीका कल्पना-चित्रित लन्दन एक 'हिन्दुस्तानी लन्दन' है। इसके अलावा, चाहें तो दूसरा हिन्दुस्तानी लन्दन भी मूर्त्त किया जा सकता है—लन्दनमें रहनेवाले भारतीयोंका लन्दन। क्योंकि वहाँके भारतीय विद्यार्थियोंकी संख्या चार हज़ारसे ऊपर होगी; इसके अतिरिक्त वहाँ बस जानेवाले भारतीयोंकी संख्या बढ़ती ही जा रही है। निःसन्देह



शेक्सपियर स्मारक रंगशाला, स्ट्रैटफ़ोर्ड

[एवन नदीके तटपर स्मारक भवन है, पास ही उद्यानमें स्मारक मूर्ति जिसके कोणोंमें नाटकोंके प्रमुख पात्र। चित्रमें फ़ालस्टाफ़ दीख रहा है]



एडिनबरा दुर्ग [रातमे]

इन भारतीयोंमें अनेक ऐसे भी हैं जो केवल वंश-परम्परासे भारतीय हैं और जिनका भारतसे कोई निजी सम्पर्क नहीं है—जैसे मारीशस, दक्षिणी या पूर्वी अफ्रीका, वैस्ट इण्डीज़ या गियाना या फीज़ीमें बसनेवाले भारतीयोंकी सन्तान, जो उच्च शिक्षाके लिए वहाँ जाकर वहींपर नौकरी या व्यवसाय करने लगती हैं। लेकिन लन्दनके भारतीयोंमें सब पढ़े-लिखे या विद्याकर्मी नहीं हैं; विद्यार्थियों, डाक्टरों, वैज्ञानिकों, बैरिस्टरों और पत्रकारोंके अलावा प्रायः अनपढ़ व्यवसायी, मज़दूर और जहाज़ी भी वहाँ काफ़ी हैं।

एक तीसरे भारतीय लन्दनको भी निरूपित किया जा सकता है। यह भारतीय संस्कृतिके अध्येताओं और खोजियोंका लन्दन है। भारतीय कला और पुरातत्त्वकी अपूर्व सामग्री प्रचुर मात्रामें लन्दनमें पायी जा सकती है। निःसन्देह औपनिवेशिक इतिहासका स्मरण करके इसको आक्रोशका कारण बनाया जा सकता है कि इतनी मूल्यवान् वस्तुएँ क्यों यहाँसे ले जायी गयीं या ले जाने दी गयीं; बहुत-सी वस्तुओंपर भारतका दावा है और आशा की जा सकती है कि अनतिदूर भविष्यमें वे फिर यहाँ लौट आवेंगी। लेकिन ऐसा भी बहुत कुछ लन्दनमें संगृहीत है जिसका मूल औपनिवेशिक शोषणमें नहीं बल्कि शुद्ध कला-प्रेममें, या एक प्राचीन संस्कृतिके सम्मानमें है। जैसे जर्मनोंने स्वयं हमारी उपेक्षासे हमारे साहित्यका उद्धार किया; वैसे ही अनेक दृष्टि-सम्पन्न अँग्रेज़ोंने हमारी कला-वस्तुओं और पुरातत्त्व सामग्रीको हमारी अज्ञ उदासीनतासे बचाकर रखा और नये सिरेसे हमें उसका सम्मान करना सिखाया। भारत-विद्याकी सेवा और रक्षा करनेवाले इन अँग्रेज़ोंमें कई ऐसे भी थे जिन्हें राजनीतिक दृष्टिसे हमारा कट्टर शत्रु गिना जा सकता—बल्कि भारतके अंग्रेज़ शासकोंमें साधारणतया जिनकी कला-दृष्टि जितनी ही उदार और संवेदनशील थी उनकी राजनीतिक प्रवृत्तियाँ उतनी ही संकीर्ण और अदूरदर्शी रहीं, जिसका एक कारण यह भी था कि हमें अपनी संस्कृतिके प्रति इतना उदासीन देख

कर उनके मनमें हमारे प्रति अवहेलनाका भाव उमड़ता था। जो हो, इन कला-संग्रहोंके लिए हम कृतज्ञ ही हो सकते हैं और इनका लन्दन भी एक अलग भारतीय लन्दन है जिसमें प्रवेश करके हम भारतका ही एक अधिक प्रभामय रूप देख सकते हैं जो भारतके वर्तमान देश-कालका अतिक्रमण कर जाता है।'''''

ब्रिटिश म्युज़ीयम तथा विक्टोरिया एण्ड आल्बर्ट म्युज़ीयमके भारतीय कला-संग्रह, और ब्रिटिश म्युज़ीयम तथा इण्डिया लायब्रेरीके ग्रन्थ-संग्रह संसार-प्रसिद्ध हैं। लेकिन लन्दनसे बाहरके छोटे भारतीय संग्रह भी कम मूल्यवान् नहीं हैं। आक्सफ़ोर्ड और केम्ब्रिजके संग्रहालय भी उल्लेखनीय हैं; और बर्मिंगहम संग्रहालयकी बुद्धकी कांस्य प्रतिमा तो अनुपम है।

लन्दनके दृश्योंका अलग-अलग वर्णन इस सन्दर्भमें कोई प्रयोजन नहीं रखता। बकिंगहम महल और उसके सामने (अथवा सेण्ट जेम्स महलके सामने) सन्तरियोंकी रंगीन वर्दियाँ और सुनियन्त्रित परेड, पार्लमेंट भवन, और वैस्टमिंस्टर ऐबे, लन्दन टावर और उसके सामनेका टेम्सका पुल, सन्त पालका गिरजाघर—ये सभी दूसरे यात्रियोंके वर्णनोंसे या चित्रोंसे हमारे अतिपरिचित हो गये हैं। हाइड पार्क और उससे लगा हुआ केंसिंगटन उद्यान, हाइड पार्कमें कहीं भी, कभी भी, एक पेटीपर खड़े होकर लेक्चर झाड़ने लगनेवाले तरह-तरहके खब्ती, आदर्शवादी, पागल और पाखण्डी, और सवालों या व्यंग्य-बाणोंसे उनकी बोलती बन्द करनेवाले मनचले श्रोता—अंग्रेज़ी साहित्यसे थोड़ा-बहुत परिचय रखनेवाले भी इनसे परिचित हैं। बल्कि यह 'हरदम-तैयार' व्याख्यानदाता तो हाइड पार्कके सदाबहार फूलोंमें गिना जाता है। पिकाडिली और ट्रैफ़ल्गारके चौक भी प्रायः इतने ही परिचित हैं। अगर ट्रैफ़ल्गार स्क्वायरके फ़व्वारेके आस-पास हर समय मँडराते और गुटरगूँ करते झुण्डके-झुण्ड कबूतर कौतूहली

दर्शकोंकी उपेक्षा करते हैं, और आसपासकी विशाल ऐतिहासिक कांस्य-मूर्त्तियोंपर एक-सी उदासीनतासे बीटें करते रहते हैं, तो यह भी कोई विशेष उल्लेखनीय बात नहीं है—ऐसे ही दृश्य भारतके शहरोंमें बीसियों जगह देखे जा सकते हैं और दिल्लीके चाँदनी चौकमें भी देखे जा सकते हैं ! यह दूसरी बात है कि ट्रैफ़ल्गार चौकके एक तरफ़ राष्ट्रीय चित्र-संग्रहालय है जो कि संसारके प्रथम कोटिके संग्रहालयोंमें गिना जाता है और दूसरी ओर सन्त मार्टिनका गिरजाघर है; जब कि चाँदनी चौकमें विक्टोरिया महारानी के बुतके पीछे टाउनहाल है और सामने नयी सड़क की बनारसी साड़ियोंकी दुकानें। पिकाडिली और उसके आस-पासके रंगीले रात्रि-जीवनकी चर्चा हो सकती है, लेकिन जिनकी उसीमें दिलचस्पी हो उनके लिए पैरिस या रोम अधिक आकर्षक होगा। यों पिकाडिली लन्दनके गुण्डोंका भी केन्द्र है; और अन्य बड़े नगरोंकी भाँति इनमें भी इटालीय गुण्डोंका प्राधान्य है यद्यपि उनके अलावा इंग्लैण्डके सभी उपनिवेशोंके गुण्डे वहाँ पाये जा सकते हैं। इटालियन और वैस्ट इण्डीजके लोग यहाँ अधिक संख्यामें दीखते हैं, और इटालियन भोजनालयों और कहवाघरोंसे पिकाडिली भरा हुआ है। इधर इंग्लैण्डमे युवा अंग्रेज गुण्डोंका जो नया सम्प्रदाय बढ़ने लगा है—टैडी बॉएजका—उनकी बेतुकी पोशाक भी पिकाडिलीमें काफ़ी दीख जाती है पर उनका कार्य-क्षेत्र दूर-दूर तक फैला हुआ है और पिकाडिलीको उनका विशेष केन्द्र नहीं कहा जा सकता।

वैस्टमिस्टरमे ही पार्लामेंट भवनसे अथवा वैस्टमिस्टर ऐबेसे कुछ हटकर सन्त मार्गरेटका छोटा गिरजाघर है जिसे हाउस ऑफ़ कामन्सका गिरजाघर माना जाता है। मुझे यह गिरजाघर बहुत सुन्दर लगा, और यह सोचकर अब भी आश्चर्य होता है कि इसका उल्लेख इतना कम क्यों होता है।

लन्दनका परिवेश सुन्दर है। बल्कि बड़े शहरोंसे बाहर निकलकर इंग्लैण्डका सारा देहात ही बहुत सुन्दर है। और उसमें इतनी विविधता

है कि एक-एक जिलेके वर्णनमें एक-एक पुस्तक लिखी जा सकती है। मैं लन्दनमें अपने कार्यमें इतना व्यस्त रहा कि आसपास अधिक नहीं घूमा, और निकला तो लन्दन छोड़कर दूसरी जगह जानेके लिए ही; फिर भी क्यूका वनस्पति-उद्यान, जिसमें लगभग सत्तर हज़ार भिन्न जातियोंके पौधे और वृक्ष हैं, मैंने दो-तीन-बार देखा। हैम्पटेन कोर्ट भी देखा, जिसे कार्डिनल वूल्सीने हेनरी अष्टमको भेंट किया था—और जो अब भी हेनरीकी दो पत्नियों और छठे एडवर्डके प्रेतोंका आवास है!* आठ सौ वर्ष पुराना विण्डसरका महल और उद्यान और उसके निकट ईटनका विद्यालय देख आया; टेम्सके किनारे हेनले, जहाँ प्रतिवर्ष पालदार नावोंकी प्रतियोगिता होती है, रिचमण्ड और वहाँके हैम हाउसका संग्रह भी देखा; और ये सभी दर्शनीय हैं।

लेकिन तीसरी बार जाड़ोंमें लन्दन जाकर वहाँके कोहरेका, और ठण्डी वर्षाके साथ हाड़ भेदनेवाली हवाका अनुभव कर लेनेके बाद भी मेरी वही धारणा रही जो कि आरम्भमें बनी थी : लन्दन रहने और काम करनेके लिए अच्छा नगर है। अन्तमें इतना उसमें और जोड़ सका हूँ कि वह इसके लिए भी अच्छा है कि व्यक्ति बराबर वहाँसे बाहर आता-जाता रह सके—दक्षिणमें डेवन और कार्नवाल, तो उत्तरमें एडिनबरा और स्काटलैण्डकी झीलों तथा उत्तर-पश्चिममें कम्बरलैण्ड और वेस्टमोरलैण्डकी झीलों या वेल्सके पहाड़ी अथवा देहाती प्रदेश तक; और, हाँ, जब-तब जहाँ-तहाँके सागरतट तक।

---

* इंग्लैण्डमें अनेक भवन हैं जो भुतहे प्रसिद्ध हैं; भवनकी रक्षाके साथ भूतकी और उससे सम्बद्ध 'साहित्य'की भी रक्षा की जाती है, क्योंकि बहुधा भूतोंके विज्ञापनसे आकृष्ट सैलानी ही उस आयके साधन होते हैं जिससे भवनकी मरम्मत आदि होती रहे।

एडिनबरा

देश-विदेश घूमे हुए किसी व्यक्तिसे पूछा जाय कि संसारका सबसे सुन्दर नगर कौन-सा है, तो इसकी सम्भावना कम है कि वह एडिनबराका नाम लेगा। रोमा, पैरिस, फ़िरेंजे, वेनेत्सिया (वेनिस), स्टाकहोम, सान्फ़ांसिस्को—ये नाम इस प्रसंगमें बहुधा सुने जाते हैं। वियेनामें लार्ड पैथिक लारेंससे भेंट हुई थी तो उन्होंने कहा था कि बुडापेस्ट अवश्य देखूँ क्योंकि "वह संसारका सबसे सुन्दर शहर है।" बॉनमें अपने चैकोस्लोवाकिया जानेकी तैयारीकी बात फ़ाउलीन क्राउट्सट्रंकसे की थी तो वह कुछ क्षणोंके लिए स्मृति-विभोर हो गयी थीं; फिर उन्होंने कहा था, "प्राग संसारका सबसे सुन्दर शहर है—वहाँ जाओगे तो सन्त सोफ़ियाके गिरजाघरसे नगरका दृश्य देखना और उस समय मेरी ओरसे सारी नगरीको नमस्कार देना।"

किन्तु कोई अगर यह दावा कर ही दे कि एडिनबरा सबसे सुन्दर है, तो मैं समझता हूँ कि उसका खण्डन करनेसे पहले थोड़ी देर सोचना पड़ेगा। क्योंकि एडिनबरामें अवश्य बहुत कुछ ऐसा है जो सुन्दर और आकर्षक है और जिसकी बराबरीका कुछ अन्यत्र आसानीसे नहीं मिलेगा। सम्भव है कि सौन्दर्यके जो तत्त्व यहाँ मिलते हैं अलग-अलग उनमेंसे कोई भी अन्यत्र और अधिक मात्रामें मिल सकते हों; किन्तु प्रश्न उनके एक साथ और ठीक उसी अनुपातमें पाये जानेका है। क्योंकि जादू अलग-अलग तत्त्वोंमें नहीं बल्कि उनके योगमें होता है, कोई भी रसविद् इसकी पुष्टि करेगा।

यों तत्त्वोंमेंसे मुख्य कुछ गिनाये जा सकते हैं। सबसे पहला नगरके बीचकी पहाड़ी और उसके शिखरपर बना हुआ दुर्ग है। नगरमें कहीं भी चले जावें, यह दुर्ग ऊपर छाया रहता है और इसके कारण दृश्यकी क्षिति-रेखा सदैव सुन्दर रहती है। रातको जब दुर्ग आलोकित हो जाता है और शिखरसे हटकर पहाड़ीकी रीढ़पर बनी हुई इमारतें जगमगा उठती हैं तब

क्षिति-रेखाका रूप भी निखर आता है। एडिनबराकी मुख्य सड़क प्रिंसेज़ स्ट्रीट इसी पहाड़ीसे लगी हुई चलती है; सड़कके पहाड़ीवाले पार्श्वपर कोई इमारतें नहीं हैं जिससे सड़कके दूसरे किनारेपर बनी हुई इमारतें और भी उभर आती हैं और दुर्गके दृश्यमें कभी व्याघात नहीं पड़ता।

दूसरा तत्त्व नगरके भूतलकी असमता है। सीधी सपाट भूमिपर न बने हुए होनेके कारण एडिनबरामें जगह-जगह ऐसे स्थल मिलते हैं जहाँसे नगरके एक बड़े अंशका विहंगम दृश्य मिल जाय और दर्शकको मोह ले।

मेरी धारणा है कि सुन्दरताकी गणनामें जिन शहरोंके नाम लिये जाते हैं उनमें प्रायशः यह तत्त्व पाया जायगा। असमतल भूमि, या पानीका विस्तार, या दोनोंका योग, नगर-सौन्दर्यका एक बहुत बड़ा अंग है। यह बात इटलीके शहरोंके बारेमें कही जा सकती है, यही पेरिसके, यही बुडापैस्ट और सान्फ्रांसिस्कोके। और यही कदाचित् नयी दिल्लीके बारेमें भी कही जा सकी होती, यदि नयी बसाईमें उसकी सब पहाड़ियोंको छील और काटकर सपाट न कर दिया गया होता! अब भी लोग राष्ट्रपति भवनके पीछेकी पहाड़ियोंपरसे न केवल पूर्वके दृश्यकी प्रशंसा करते हैं बल्कि पश्चिमकी बसी हुई, वास्तु शिल्पकी दृष्टिसे अत्यन्त कुरूप, करौलबागकी बस्तीको भी सुन्दर पाते हैं—केवल इसलिए कि असम भूतलका तत्त्व अब भी कुछ बचा रह गया है। निःसन्देह प्राकृतिक पहाड़ियोंको ज्योंका-त्यों रहने देनेसे शहरकी गन्दगीकी निकासीकी समस्या कुछ कठिनतर होती—लेकिन नये नगर केवल गन्दगीकी निकासीके आधारपर तो नहीं बसाये जाते! लेकिन हमें बात दिल्लीकी नहीं, एडिनबराकी करनी है।····

एडिनबराके सौन्दर्यका तीसरा तत्त्व है उत्तरी प्रदेशका विशेष जल-वायु और स्वाभाविक प्रकाश। यों तो पृथ्वीकी उष्ण मेखलासे उत्तरकी ओर जाते हुए जब हम सम-शीतोष्ण प्रदेशमें पहुँचते हैं तो सर्वत्र यह दीखने लगता है कि वहाँका प्रकाश कुछ और ढंगका है—धूप भी भिन्न है और छाँह भी; और तीखी धूप भी प्राकृतिक रंगोंको और निखारती ही है, एकदम सोख नहीं

लेती, जैसा कि भूमध्यके निकटके प्रदेशोंमें होता है जहाँ रंग उतने नहीं दीखते जितनी रंगोंकी चौंध। लेकिन सूर्यकी किरणोंके सीधे न बरसकर तिरछे झरनेसे जो अन्तर आता है, उसकी अपेक्षा कहीं बड़े अन्तर सागरकी निकटता, पर्वतकी निकटता, सागर और पर्वत दोनोंकी निकटता, और वायुकी दिशा या गतिसे हो जाते हैं। वायु-मण्डलकी नमी प्रकाशको बदल देती है; फिर नम वायु-मण्डलमें तापमान और वायविक दबावके भेद उसे और बदलते रहते हैं। धुन्ध और उड़ती हुई बदली और धूप-छाँहके खेल जो चमत्कार लाते हैं वे इसके ऊपर हैं। कहनेमें जान पड़ता है कि यह सब थोड़ी-सी बातको बहुत अधिक तूल देना है; लेकिन वास्तवमें प्रकाशका यह भेद न केवल दृश्यको बदल देता है बल्कि उसपर आधारित चित्र-कलाको भी बदल देता है; पहरावेके रंग-ढंगको बदलकर सामाजिक जीवनको ही बदल देता है। लैण्डस्केपकी चित्र-कला अगर ब्रितानी द्वीप-समूहमें या हालैण्डमें ही विशेष रूपसे विकसित हुई तो यह अकारण नहीं था—प्रकाशकी रंगतके बारेमें जो कुछ कहा गया है वह हालैण्डपर भी लगभग उतना ही घटित होता है। फिर सैरे आँकनेवाले चित्रकारोंकी प्रतिभा ब्रिटेनमें जल-रंगोंकी, और हालैण्ड अथवा बेल्जियममें तैल-रंगोंकी ओर झुकी, तो इसका कारण भी मुख्यतः आलोकके इसी भेदमें है—ब्रिटेन और स्काटलैण्डका नम आकाश अधिक अन्तरालोकित होता है और पारदर्शी जल-रंग उसके अधिक अनुकूल होते हैं। गेहूँके पके खेत या हरियालीकी ढालपर दहकते हुए पोस्तेके फूल, या गिलास और अलूचेका 'शगूफ़ा' ब्रिटेनमें भी होता है और हालैण्ड या बेल्जियम या तटवर्ती फ़्रांसमें भी; लेकिन महाद्वीपके चित्रकार इन चीज़ोंको देखते हैं और इन्हींके निमित्तसे उस प्रकाशको जो आकाशसे झरकर इनपर गिरा है; जब कि ब्रिटेनका चित्रकार स्वयं आकाशमें बसे हुए प्रकाशको देखता है और उसीके निमित्त से भूतलके रंगोंको देखता है जो उस प्रकाशकी गहराईपर बल देते हैं। परिदृश्य-चित्रणकी दोनों परम्पराओंका समान्तर अध्ययन बड़ा रोचक हो

सकता है, और आन्दोलनोंकी उर्वर भूमि पैरिसके प्रभाववादी (इम्प्रेश-निस्ट) सम्प्रदाय या आलोक-कणवादी (प्वांटिलिस्ट) शैलीको नया सन्दर्भ देता है। सेज़ान, मोने, माने, सेर्रा, रेन्वार और वानगोख़के चित्र और उनके कला-सम्बन्धी वाद-विवाद इसी सन्दर्भमें सार्थक होते हैं।....

एडिनबराके सौन्दर्यको अद्वितीय माना जाय या न जाय, एक नगरके रूपमें उसका चरित्र विशिष्ट है। वास्तवमें वह अब भी एक राजधानी है, यद्यपि स्काटलैंड अब अलग राष्ट्र नहीं है।

राष्ट्रीयताके बोधके दो तत्त्व होते हैं: राजनीतिक एकताका ज्ञान, और एक जातीयताकी भावना। स्काटलैंडमें पहलेके जीवित प्रतीक अब नहीं रह गये हैं; किन्तु जहाँ तक अलग जाति अथवा जनकी भावना है, उसमें अब भी कोई अन्तर नहीं आया है। प्रायः तीन सौ वर्ष पहले इंग्लैंडसे संयुक्त न होकर भी स्काटी जाति जैसी होती आज भी वैसी ही है, इसके बावजूद कि अंग्रेज़ों द्वारा दमनके एक कालमें स्काटी पहाड़ी इलाक़ोंके बहुतसे दबंग, उद्धत और आज़ाद-तबीयत बाँकोंको देश-निकाला दे दिया गया या देशान्तर—मुख्यतया कनाडा—भेज दिया गया। सत्रहवीं शतीके आरम्भमें स्काटलैंडने अपना राजा जेम्स षष्ठ इंग्लैंडको दे दिया—सन् १६०३में स्काटलैंडका जेम्स इंग्लैंडके सिंहासनपर आरूढ़ हुआ। अठारहवीं शतीके आरम्भमें स्काटलैंड 'ग्रेट ब्रिटेन और आयरलैंडके संयुक्त राज्य' का अंग बन गया। इस प्रकार अपना राजा और राजवंश इंग्लैंडको देकर स्काटलैंडने अपना स्वतन्त्र राज्यत्व तो छोड़ दिया लेकिन अपने स्वतन्त्र जातित्वको बनाये रखनेकी और भी अच्छी व्यवस्था कर ली। उस जातीय चरित्रकी विशेषता चार सौ वर्ष पहलेके उस संघर्षमें प्रकट हो गयी थी जो उन्होंने अंग्रेज़ोंसे अपनी स्वतन्त्रताकी रक्षाके लिए किया था। सन् १३१४ में बैनकबर्नकी जो लड़ाई हुई वह इतिहास-प्रसिद्ध है, लेकिन

अंग्रेज या फ्रांसीसी इतिहासकारोंने उसका सही वर्णन नहीं किया है। बैनकबर्नमें स्काटियोंकी विजय हुई और इस प्रकार इनका देश कुछ शतियोंके लिए सुरक्षित हो गया, यह तो सही है; इस एक परिणामको स्वीकार कर लेनेसे ही युद्धका वास्तविक रूप स्पष्ट नहीं होता। अंग्रेज और फ्रांसीसी इतिहासकारोंने फ्रांसीसी 'सूरमाई परम्परा' का अनुसरण किया है जिसके अनुसार युद्ध दोनों पक्षोंके गिने-चुने सूरमाओं अथवा महा-रथियोंका शौर्य-प्रदर्शन हो जाता है। निःसन्देह मध्यकालीन युद्ध ऐसे ही होते थे, लेकिन बैनकबर्नकी लड़ाई स्वयं भी ऐसी नहीं थी और जिस युद्धका वह अंग थी वह तो कदापि ऐसा नहीं था। वास्तवमें राबर्ट ब्रूस और उसके अनुयायियोंका संघर्ष थोड़ेसे उल्लेखनीय सूरमाओं और बहुतसे नगण्य अनुचरोंका युद्ध नहीं था; बल्कि एक जन-युद्ध था जिसमें अनेक स्वाधीनता-प्रेमी और स्वाधीन-चेता, जन-योद्धा स्वतन्त्र रूपसे योग दे रहे थे। राबर्टके लिए एक दुर्ग एक किसानने जीता, दूसरा एक नौकरने; ब्रूस अपने थके हुए सहयोगियोंको कहानियाँ सुनाकर सहलाते या बढ़ावा देते; रातको स्वयं किसानोंके झोंपड़ोंमें सोते····वह वास्तवमें सैनिक अधि-नायक उतने नहीं थे जितने एक ऐसे बड़े सम्प्रदायके अग्रज जिसके सभी सदस्य अग्रजमें श्रद्धा रखते हुए भी मनचले, अक्खड़ और दबंग थे और मनमाने ढंगसे, बिना नेताकी अनुमति माँगे, मौका देखकर युद्ध करते, धावा बोलते या घात लगाते, और शत्रुके गढ़ या ठिये छीन लेते।

स्काटी कवि बार्बरने अपने काव्यमें इस युद्धका जो वर्णन किया है उससे स्काटी जातिका चरित्र उभरकर सामने आता है। स्वाधीनताके साथ एक बुनियादी ढंगकी समताका भाव (जिसे आज शायद प्रजातान्त्रिक प्रवृत्ति कहा जायगा) स्काटी स्वभावके मूल गुण हैं। स्वाधीनता कभी निरंकुशताका रूप भी लेती है, तब स्काटी लोग व्हिस्की पीते हैं (व्हिस्की आखिर उन्हींकी ईजाद है !) और शेखी बघारते हैं या लड़ते हैं। समताकी भावना कभी-कभी दूसरोंके मामलोंमें उचितसे अधिक दिलचस्पी या अका-

रण आलोचना करनेकी ओर प्रवृत्त करती हैं, लेकिन उनकी प्रखर सहज-बुद्धि उन्हें सदैव अतिसे बचा लेती है। बुद्धि, तर्क और स्पष्ट अथवा प्रसाद-युक्त कथनका उनमें बड़ा सम्मान है। प्रोटेस्टैंट ईसाई मतके अन्तर्गत स्काटियोंका जो विशिष्ट सम्प्रदाय बना, उसके मूलमें भी यह माँग थी कि धर्म-विश्वास भी स्पष्ट और बुद्धि-संगत, और समताकी भावनापर आधारित होने चाहिए।

स्काटी जातिकी चरित्रगत विशेषताओंका प्रतिबिम्ब एडिनबरा है। उसकी भौगोलिक अथवा भौमिक स्थितिने उसे जो सौन्दर्य दिया है, उसे ये चारित्रिक विशेषताएँ पुष्ट करती हैं। दक्षिणमें इंग्लैंडसे पृथक् करनेवाली सीमान्तकी गिरि-श्रृंखलाओं और उत्तरमें दुर्गम पर्वतीय प्रदेशके बीच तल-हटीमें बसे हुए एडिनबराके लिए कभी यह सम्भव नहीं हुआ कि वह स्काट-लैंडमें उस प्रकारका सत्तामूलक शासन स्थापित करे जैसा इंग्लैंडमें था और जैसा आज किसी भी सुव्यवस्थित देशमें आवश्यक माना जायगा। किन्तु इसी विशेष स्थितिने उसे उस समानीकरणसे भी बचा रखा हो जो उस प्रकारकी व्यवस्थाके साथ आता है। स्काटलैंडका धर्म-संगठन अलग है, शिक्षा-पद्धति और न्याय-व्यवस्था भी अलग है। सभीका केन्द्र एडिनबरा है, जो इनके अतिरिक्त चिकित्सा-विज्ञानका विश्व-विख्यात केन्द्र है। यन्त्र-उद्योग स्काटलैंडके दूसरे बड़े नगर ग्लासगोमें केन्द्रित है। जहाजोंके निर्माणके क्लाइडके मुहानेके केन्द्र, ब्रिटेनमें सबसे अधिक समर्थ हैं। ग्लासगो और उसके आसपासकी यन्त्र-उद्योगकी बस्तियाँ, कुरूपताकी होड़में पहली पंक्तिमें आयेंगी, जिसका कारण यह है कि औद्योगिक क्रान्ति ब्रिटेनमें ही आरम्भ हुई और उसके प्रथम दुष्परिणाम वहीं प्रकट हुए। उनसे शिक्षा ग्रहण कर दूसरे देशोंने यन्त्र-विकासको पूर्व-व्यवस्थित ढंगसे नियन्त्रित किया, पर ब्रिटेनमें—उत्तरी इंग्लैण्ड और दक्षिणी स्काटलैण्डमें—जो हो चुका था वह हो चुका था। उद्यमके एक बुखार-से में अन्धाधुन्ध कारखाने और मजदूर बस्तियाँ बन गयी थीं, और धुआँ और गन्दगी उगलने लगी

थीं। आसपासके देहाती प्रदेशोंसे किसान मन्त्र-मुग्धसे खिंचे चले आये थे और मजदूर बन गये थे। सैंकड़ों वर्षोंकी परम्पराएँ मिट गयी थीं, और दो ही पीढ़ियोंमें प्रतिष्ठित जीवन-परिपाटीका स्थान अव्यवस्थाने ले लिया था। अनन्तर कानून बने, सुधार हुए, जीवन-व्यवस्था कुछ सँभली; लेकिन ये कुरूप बस्तियाँ हठपूर्वक कुरूप ही बनी रहीं।....

उधर उत्तरमें अठारहवीं शतीमें चार्ल्स एडवर्ड स्टुअर्ट (प्रिंस चार्ली) के नेतृत्वमें ब्रिटेनके विरुद्ध जो विद्रोह हुआ था, उसके कुचले जानेपर अंग्रेजोंने जो कठोरता बरती उसके कारण उत्तरका जीवन भी बदल गया। अंग्रेज सेनापति कम्बरलैण्डकी गतिविधि ऐसी थी मानो वह विद्रोह-भावके साथ-साथ हाइलैण्डर जातिको ही मिटा देना चाहता हो—बल्कि उसका वश चले तो पर्वत-वासियोंके साथ-साथ पर्वतीय प्रदेशोंको ही मिटा दे! इस विनाश-लीलाके बाद सदरलैण्डको यह सूझी कि पर्वतीय प्रदेश मानवों की अपेक्षा भेड़ें पालनेके लिए अधिक उपयोगी हो सकता है; बहुत बड़े प्रदेशकी कुल जन-संख्याको वहाँसे हटाकर कनाडा भेज दिया गया या भूखों मरनेके लिए छोड़ दिया गया। भेड़ें पालनेकी नयी योजनाएँ सफल नहीं हुईं, और अन्तमें उजाड़ पर्वतीय प्रदेश ग्रीष्ममें आनेवाले सैलानियों और शिकारियोंकी क्रीड़ा-भूमि रह गयी। इस प्रदेशका निर्जन, बीहड़ और कुछ-कुछ डरावना सौन्दर्य अब भी अपना आकर्षण रखता है और अभिमानी स्काटके आत्म-गौरवको पुष्ट करता है। जहाँ-तहाँ किसानों, भेड़ पालने वालों, ऊन कातने और बुननेवालों और मछेरोंको फिरसे बसानेके प्रयत्न भी हो रहे हैं। बीहड़ प्रदेशोंमें बसनेवाले इन परिवारोंमें—जैसा कि ऐसी परिस्थितिमें प्रायः होता है—एक आश्चर्यजनक विनय और सौजन्य, सूक्ष्म संवेदना और शान्त और सन्तोषपूर्ण जीवन-दृष्टि मिलेगी। पर जो सफलता-वादी आधुनिक यान्त्रिक जीवनके मूल्योंको मानते हैं, उन्हें इस सादे और कठिन जीवनके मूल्य अथवा परितुष्टियोंको समझनेमें कठिनाई होगी।

इन्हीं विरोधोंके बीच एडिनबरा नगर बसा हुआ है। वह इन विरोधोंको प्रतिबिम्बित भी करता है लेकिन इन्हींके कारण इनसे अलग बना भी रह गया है। उत्तरके दुर्गों, महलों और शिकारगाहोंमें प्रतिवर्ष इंग्लैण्डका अभिजात-वर्ग जाता है और वन-प्रदेशोंमें इंग्लैण्डके अलावा अनेक देशोंके सैलानी घूमते हैं; इंग्लैण्डके राज-परिवारके एकाधिक महल वहाँ हैं और ब्रिटेनके राजा या रानी प्रतिवर्ष विधिपूर्वक वहाँ जाते हैं और निवास करते हैं। लेकिन उस संयुक्त राष्ट्रीय जीवनके, जिसका केन्द्र और राजधानी लन्दन है, एक भीतरी मण्डलमें, एक अलग जाति-जीवनकी राजधानी के रूपमें, एडिनबरा अपना स्थान अक्षुण्ण बनाये हुए है। इसी अक्षुण्णताके ज्ञानमें सुरक्षित स्काटी अपनी पीठ भी ठोंक लेता है और अपनेपर हँस भी लेता है। स्काटी कंजूस प्रसिद्ध है, किन्तु स्वयं अपने इस 'गुण'के बारेमें जितने चुटकुले वह आपको सुनायेगा उतने आपको कहीं और नहीं मिलेंगे; इस प्रकार अपनी मितव्ययिताके बारेमें आश्वस्त होकर वह जितनी उदारता बरतेगा वह भी, कम-से-कम ब्रिटेनमें, अन्यत्र नहीं मिलेगी।····अपनी ह्विस्कीका वह दूर-दूर तक निर्यात करता है; इधर उसे और बढ़ानेके लिए वह स्वयं बाहरसे आयी हुई घटिया ह्विस्कियाँ भी पीने लगा है—सचमुच !—और यन्त्र-उद्योगोंके साथ उसके कुटीर-उद्योग भी उन्नति करने लगे हैं। और आर्थिक स्तरपर आश्वस्त होकर उसने जो विशाल सांस्कृतिक आयोजन आरम्भ किया है—एडिनबरा फ़ेस्टिवल—वह सारे संसारमें विख्यात हो गया है; उसके आकर्षणसे दूर-दूरके लोग वहाँ पहुँचने लगे हैं। मैंने ही जो पर्व देखा उसमें डेनिश नृत्य-नाट्य, इसराइली और अफ़्रीकी वृत्त-फ़िल्म, अमेरिकी नाटक, जर्मन संगीत आदि थे; फ़िल्म प्रदर्शिनीमें बीससे अधिक देशोंके चित्र थे। भारतीय नृत्य-नाट्य वहाँ हो चुका है, जापानी नाटक और कठपुतली, चीनी आपेरा····इस प्रकार वह सांस्कृतिक प्रगतिके साथ चलता है, पर हृदयमें वही वन-सुलभ, लोक-जीवन-पुष्ट, आत्म-गौरवमय सारल्य लिये हुए है जो उसके राष्ट्रीय कवि राबर्ट बर्न्सके गीतोंमें प्रतिबिम्बित होता है।····

"ओ माइ लव्'ज लाइक ए रेड, रेड रोज
वैट्'स न्यूली स्प्रंग इन जून :
ओ माइ लव्'ज लाइक द मेलोडी
वैट्'स स्वीटली प्लेड इन ट्यून !"*

× ×

"टु सी हर इज टु लव हर
एण्ड लव बट हर फ़ार एवर
फ़ार नेचर मेड हर व्हाट शी इज
एण्ड ने'र मेड सिक् एनिदर !"†



---

* राबर्ट बर्न्स, 'ए रेड रेड रोज' । †वही, 'बॉनी लेस्ली' ।

ताल-तलहटी, स्रोत और स्रष्टा

[तीन पत्र]

प्रिय—,

आज रात बारह बजेसे रेल-हड़ताल हो जायगी। मैं आशा करता हूँ कि यह पत्र इससे पहले यहाँसे निकलकर लन्दन तक पहुँच जायगा, क्योंकि वहाँसे आगे तो तुम तक विमानसे जा ही सकेगा—हड़तालके बावजूद। यों तो यह भी सम्भव है कि कल शुरू होकर हड़ताल परसों समाप्त भी हो जाय, क्योंकि ऐसा नहीं जान पड़ता कि परिस्थिति उतनी विषम या तनाव उतना अधिक है जितना पिछली व्यापक हड़तालके समय था; लेकिन कुछ कहा नहीं जा सकता—दस-पन्द्रह दिन तो चल ही सकती है।

यह दिन मैंने यात्राके लिए पहलेसे नियत कर रखा था और उसी कार्यक्रमका पालन कर रहा हूँ—इतना ही है कि रेलके टिकट सब वापिस कर दिये हैं और बसोंसे यात्रा करता रहूँगा।

कल बर्मिंगहम पहुँचा। जा तो रहा था स्ट्रैटफ़ोर्ड, जो शेक्सपियरकी भूमि रहा और जहाँ अब शेक्सपियर स्मारक थियेटर है—वहींसे पत्र लिख रहा हूँ—और उसके बाद झीलोंके प्रदेशमें, जो वर्ड्स्वर्थ आदि कवियोंको प्रेरणा देता रहा; लेकिन लन्दनमें जब कार्यक्रम तय कर रहा था तब मुझसे पूछा गया, "बर्मिंगहम तो जाओगे ही—वहाँके संग्रहालयमें काँसेकी बुद्ध मूर्त्ति देखने ?" मैं संग्रहालय बहुत देखता रहा हूँ, और उनके भारतीय संग्रह

विशेष रूपसे; और इस विषयमें मेरी रुचि सभी जान गये हैं! इसलिए बर्मिंगहम होकर ही स्ट्रैटफ़ोर्ड जानेका निश्चय हुआ, और अब बहुत प्रसन्न हूँ कि वैसा हुआ। गान्धार शैलीकी काँसेकी मानवाकार बुद्ध-प्रतिमा मैंने दूसरी नहीं देखी और भारतके संग्रहालयोंमें कहीं भी इससे तुलनीय कोई मूर्त्ति नहीं है। बुद्धकी प्रस्तर मूर्त्तियाँ अवश्य इससे अच्छी हैं लेकिन काँसे की ऐसी त्रुटि-विहीन भव्य मूर्त्ति नहीं। काले पत्थरकी पद्म-पाणिकी भी एक सुन्दर मूर्त्ति देखी, और कुछ अन्य मूर्त्तियाँ भी।

प्री-राफ़ेलाइट सम्प्रदायके चित्रोंका बहुत बड़ा संग्रह भी देखा। लन्दनमें भी राष्ट्रीय चित्र-संग्रहालयमें बर्न जोन्स और मिलै और रोजेटीके कुछ चित्र देखे थे, लेकिन यहाँ बड़े तैल-चित्रोंके अलावा छोटे चित्र और रेखा-चित्र बहुत बड़ी संख्यामें देखनेको मिले और मेरी वर्षोंकी एक कामना पूरी हुई। इस शैलीके दिन बीत गये, और अब ऐसे कला-समीक्षक बहुत हैं जो सारे सम्प्रदायके समूचे कृतित्वको एक 'उँह!'के साथ उड़ा देना चाहते हैं, लेकिन अंग्रेजी रोमांटिक कविताके साथ इसका जो अभिन्न सम्बन्ध है उसका अध्ययन रोमांटिक प्रवृत्तिको और रोमांटिक काव्यको समझनेके लिए आवश्यक है। प्राक्‌राफ़ेल कलामें एक साथ ही प्रकट होनेवाले एक ओर दैहिक आग्रहके, और दूसरी ओर देहकी नश्वरताके तत्त्व, रोमांटिक काव्य और भावनापर विशद प्रकाश डालते हैं।

बर्मिंगहमसे स्ट्रैटफ़ोर्ड आकर ऐवन नदीके किनारे बना हुआ भव्य शेक्सपियर थियेटर देखा। आजकल शेक्सपियर उत्सव चल रहा है और प्रतिदिन नया नाटक खेला जाता है। इनके टिकट महीनों पहले बिक चुकते हैं और यहाँ आकर हालके हाल टिकट पा लेनेकी आशा दुराशा ही होती है—या कोई बचा-खुचा या लौटाया हुआ टिकट मिलता भी है तो बहुत अधिक दामोंका। किन्तु ब्रिटिश कौंसिल विदेशी अध्येताओंके लिए कुछ स्थान सुरक्षित रखती है और उनके टिकट क्रमानुसार उसके आमन्त्रित व्यक्तियोंको मिल सकते हैं। यूनेस्कोकी ऐजेंसीके रूपमें ब्रिटिश कौंसिल

मेरे ब्रिटेन-प्रवासका प्रबन्ध कर रही है, इसलिए दो दिनके टिकट मुझे भी मिल सके। एक सुखान्त नाटक रात देख लिया—'ट्वैल्फ्थ नाईट' जिसमें वायोलाका अभिनय विवियन ले ने किया और माल्वोलियोका लारेंस ओलिवियेर ने। इसके बाद एक दुखान्त भी देख सकूँगा—हैमलेट। सम्भव है कि दो-एक और भी अभिनय देख सकूँ, क्योंकि प्रत्येक खेलके लिए दो सौ टिकट उसी दिन खेलसे पहले बिकते हैं जिनके लिए पाँत लगाकर खड़ा होना पड़ता है। ये टिकट किसी सुरक्षित स्थानके लिए नहीं, केवल खड़े होने भरकी जगहके लिए होते हैं, जिसकी गुंजाइश हालमें रखी गयी है।

स्मारक थियेटर भवनके, शेक्सपियरकी स्मृति-रक्षा और प्रतिष्ठाके लिए किये जानेवाले आयोजनोंके, और साधारणतया सारे ब्रिटेनमें रंगमंचको पुनरुज्जीवित करनेके लिए ब्रिटेनकी आर्ट्‌स कौंसिलके उद्योग, सहयोग और अनुदानके बारेमें बहुत कुछ कहना चाहता हूँ, किन्तु अभी नहीं। काश कि ऐसी कोई संस्था हमारे देशमें होती! आर्ट्‌स कौंसिलको पार्लमेंटसे अनुदान मिलता है—पार्लमेंटका अनुदान क्योंकि निर्वाचित प्रतिनिधियोंके बहुमतसे मिलता है इसलिए उसे 'सरकारी' सहायता नहीं कहा जाता और ऐसा अनुदान पानेवाली संस्थाएँ इस भेदपर बहुत बल देती हैं। और उनका वैसा करना सार्थक है, यह तब स्पष्ट हो जाता है जब हम ऐसी संस्थाओंकी कार्य-विधिकी तुलना अपने देशकी अकादेमियोंसे करते हैं जिन्हें सरकारी अनुदान मिलता है और जिनकी अधीनता प्रति दिन बढ़ती ही जा रही है।

लेकिन स्ट्रैटफ़ोर्डकी बात कहूँ। अभिनय अच्छा था, यद्यपि दर्शक-मण्डलीमें मेरी स्थिति कुछ विकट थी। दोनों ओर अमेरिकी टूरिस्ट बैठे थे—टूरिस्ट लोग शेक्सपियर स्मारक थियेटरका बहुत बड़ा सहारा हैं और आजकल उनका मौसम है। दाहिनी ओर टेक्सासका एक परिवार: मेरे साथकी कुर्सीपर मिस्टर टैक्सास, दुबले, लम्बे और छीतर-थोर जैसे कँटीले

चेहरे वाले, उसके बाद उनकी दोनों सन्तान और पत्नी। इंग्लैण्ड आये हैं तो स्ट्रैटफ़ोर्ड-आन-ऐवन जाये बिना लौटना कैसे हो सकता है ? 'लेकिन यह शेक्सपियर कब हुआ, और क्या सचमुच बड़ा लोकप्रिय नाटककार है ? हमें तो कुछ-कुछ पुराना जान पड़ता है'.....मेरे दूसरी ओर एक मुटकी आयरिश-अमेरिकी स्त्री जो तुतलाती थी; और इन दो अमेरिकाओंके बीच बातचीत बराबर जारी थी। थोचो, एथी मुथीबतमें थेक्थपियर कैथे देखा जा थकता ! इथमें तो थाँथ लेना भी मुथकिल था !

नाटक देखकर बाहर निकला तो आकाश खुल गया था और चाँद निकल आया था। रंगशालासे कुछ दूर नदीके पुलपर जाकर बैठा रहा और बड़ी देर तक नदीका दृश्य देखता रहा और थियेटर भवनसे आते हुए लोगोंकी बात सुनता रहा।

ये पश्चिमी सैलानी लोग मेरी समझमें नहीं आते। सुन्दरके प्रति ये समर्पित नहीं होते; वैसेके-वैसे छिछले और सतही बने रह जाते हैं। मैं सोचता हूँ, जब ये स्वर्ग जाते होंगे तो नन्दन काननमें पहुँचकर कहते होंगे, "नाइस स्पॉट"—और जेबसे सैण्डविच निकालकर खाने बैठ जाते होंगे—या रबड़के बुलबुलोंकी मिठाई—बबूल-गम् ! नहीं तो 'यि ओल्ड इन—यि एलिफ़ैंट एण्ड मेस ('पुरानी कलवारी—ऐरावत और वज्रदण्ड') की तलाश में चल पड़ते होंगे, जहाँ एक-एक मग सोमरस पीते-पीते बारमेड-अप्सरासे थोड़ी हलकी चुहल होती रहे ! (मैं जानता हूँ कि यह अतिरंजना भी है और अनुदारता भी, लेकिन अभी मुझे अपने मनोभावके अलावा किसीसे कोई मतलब नहीं है !)

पत्र अभी गया नहीं, और रेल-हड़ताल शुरू हो गयी है। स्टेशन सूने पड़ गये हैं और काम ठण्डा पड़ गया है। जो दो-एक गाड़ियाँ चलती भी हैं तो बिलकुल खाली, क्योंकि यह जोखम कोई नहीं उठाना चाहता कि

गाड़ी कहीं रास्तेमें अटक जावे। ये छुट्टियोंके दिन हैं, और कौन अंग्रेज़ अपनी छुट्टीको खटाईमें डालना चाहेगा! पत्र मैंने शुक्रवारको आरम्भ किया था, आज सोमवार है। कलसे ही यहाँ खचाखच भीड़ हो गयी थी और आज सोमवारकी तो पूछो मत। सप्ताहान्त, ह्विट मनडे, बैंक हालिडे, रेल-हड़ताल, और खुली चटक धूप—सब एक साथ हो गया है! तीन ग्रह भी एक घरमें आ जावें तो राज-योग हो जाता है; यहाँ तो पाँच ग्रह ये हो गये और छठा शेक्सपियर-उत्सव तो है ही। स्ट्रैटफ़ोर्डका चौक और छोटी-बड़ी सड़कें सब बसों और मोटरोंसे पट गयी हैं। गली-गलियारोंमें और नदीके किनारेपर लोगोंकी ठेलम-ठेल है। जो कुछ भी करना हो उसके लिए कतार लगानी पड़ रही है; खाने-पीने तकके लिए लोग कहवा-घरोंके बाहर कतार लगाये खड़े हैं।

मैं भी इस समय कतारमें हूँ—लेकिन खड़ा नहीं हूँ, अपने सूटकेसपर बैठा हूँ। एक हाथमें सूटकेस और दूसरेमें एक अटैची और एक झोला उठाये हुए मैं बर्मिंगहमके बसके अड्डे तक पहुँचा हूँ और कतारमें अपना स्थान लेकर बैठ गया हूँ। बर्मिंगहमसे आगे झीलोंके प्रदेश जानेके लिए ज़िलेकी बसके टिकट तो पहलेसे रखे हैं, लेकिन स्ट्रैटफ़ोर्डसे बर्मिंगहमकी सर्विस 'शहरी सर्विस' है, जिसका टिकट बसमें सवार होकर ही लिया जाता है। मुझसे आगे लगभग छः सौकी कतार है, और पीछे तो इस कतारका छोर मुझे दीखता ही नहीं है। दस-दस मिनटकी सर्विस है; बसमें चालीस-पैंतालीस सवारियाँ भरती हैं। मेरी बारी कब आवेगी इसका हिसाब लगाना कठिन नहीं है, पर आवश्यक भी नहीं है—इतना सोच लेना काफ़ी है कि चिट्ठी लिखनेका पर्याप्त समय है। प्रत्येक दस मिनट बाद सामान उठाकर दस-एक गज़ आगे बढ़ जाना होता है, बस।

इस बीच शेक्सपियरसे सम्बद्ध सब स्थान देख आया था। अच्छा ही हुआ कि शनिवारको बहुत-सा घूम लिया, नहीं तो हर जगह कतार लगाकर देखने जाना पड़ता; और कतारमें एक-एक क़दम ठेलते-ठिलते कैसे कुछ

देखा जा सकता है मैं तो सोच नहीं सकता हूँ। शेक्सपियरकी पत्नी ऐन हैथावेका बँगला ('संसारका सबसे अधिक फ़ोटोग्राफ़ित घर' !); 'हॉल्स क्रॉफ़्ट' जो शेक्सपियरकी बहन सूसन और उसके पति डाक्टर हॉलका घर था और जहाँ अब ब्रिटिश कौंसिलका कार्यालय और शेक्स-पियर संग्रहालय है; और मेरी आर्डेनका बँगला जिसमें कविका जन्म हुआ, सभी देख लिये। इसके अलावा शेक्सपियर और उसके अभिनयके सम्बन्धमें विद्वानोंके भाषण भी सुन लिये। यहाँ पंक्तिमें अभी और बैठा रहना पड़ेगा, लेकिन रात तक किसी-न-किसी तरह बर्मिंगहम पहुँच ही जाऊँगा। वहाँसे कल झीलोंके प्रदेशकी बस मिलेगी। बर्मिंगहममें कुछ घण्टे सोनेमें बिताये जा सकेंगे, या फिर यदि वहाँके रेपर्टरी थियेटरमें कुछ हो रहा होगा और उसका टिकट मिल सकेगा तो वह देख लिया जायगा। रेपर्टरी थियेटर भी आर्ट्स कौंसिलकी सहायतासे चलता है; छोटा है पर प्रसिद्ध है और आधुनिक नाटक अच्छे प्रस्तुत करता रहता है। अभी आनेसे पहले वहाँ जाँ आन्वीलका 'आर्डेल' देखकर आया हूँ।

इथथे अगली बथ मेरी हो थकती है। थेक्थपियरको थलाम !

[२]

प्रिय—,

दोपहरको बर्मिंगहमके बसके अड्डेपर पहुँचकर लगभग दो बजे वहाँसे प्रस्थान किया। आठ बजे केण्डल, साढ़े नौ बजे एम्बलसाइड और साढ़े दस बजे ग्रासमेयर पहुँच गया। केण्डलसे ही झीलोंका प्रदेश आरम्भ हो जाता है और एम्बलसाइड तककी यात्रामें कई स्थलोंसे झीलोंकी सुन्दर झाँकियाँ मिल जाती हैं। लेकिन इन दोनों जगह बस बदल कर ग्रासमेयर आ रुकनेका कारण यह है कि यहाँकी छोटी झील, पासकी दूसरी झील राइडाल, और आसपासके पहाड़ी ताल, विशेष रूपसे वर्ड्स्वर्थसे सम्बद्ध हैं।

वर्ड्स्वर्थ मेरा विशेष प्रिय अंग्रेज़ी कवि रहा हो ऐसा तो नहीं है, लेकिन इस प्रदेशका कल्पना-परिचय उसीकी कविताओंके द्वारा हुआ और अंग्रेज़ी पढ़नेवाले अन्य भारतीयोंकी तरह मेरे लिए भी इंग्लैण्डका आकर्षण पहले किताबी है।

ग्रासमेयर झीलके उपरले छोरपर ('मल्लीताल'!) रोथे नदीके किनारे एक होटलमें आ टिका हूँ। यह होटल शाकाहारी है—और शाका-हारी होनेके साथ-साथ कुछ खद्दरका भी जान पड़ता है; लेकिन स्वच्छ और सुन्दर है और झीलसे कुछ दूर होनेपर भी नदीके किनारेके अपने बग़ीचेके कारण बहुत सुन्दर। संचालिका न केवल शाकाहारका समर्थन करती हैं वरन् ब्रिटेनके शाकाहार संघकी उपाध्यक्षा हैं और शाकाहारी पाक-विद्या पर उनकी पुस्तक प्रसिद्ध है। कई पाक-प्रतियोगिताओंमें वह पुरस्कार पा चुकी हैं। यहाँका भोजन अच्छा और स्वादिष्ट भी होता है और पर्याप्त विविधता लिये हुए भी। नहीं तो अंग्रेज़ी खाना यों भी अनाकर्षक होता है, और शाकको तो उबालनेके अलावा वे बहुत कम कुछ करना जानते हैं! मेरे लिए यह भी आश्चर्यकी बात थी कि होटलके नियुक्त समयसे साढ़े तीन घण्टे देरसे पहुँचनेपर भी मुझे अपने लिए भोजन रखा हुआ मिला; और वह भी गर्म, और खानेके कमरेमें स्वयं संचालिका द्वारा प्रस्तुत किया गया! (पुरानी सूचनाके अनुसार मेरे तीसरे पहर पहुँचनेकी बात थी, किन्तु मैं रातको देरसे पहुँचा।) अन्यत्र ऐसी स्थितिमें खानेको कुछ मिलता भी तो ठण्डा कुछ, और अपने कमरेमें। इंग्लैण्डमें ऐसा सत्कार पहली बार मिला। शाकाहारके खब्तके साथ आतिथ्यका खब्त भी संचालिकाको है!

लेकिन जहाँ तक झील प्रदेशके सौन्दर्यका सवाल है, अपने भीतर झाँकता हूँ तो पाता हूँ कि पहली प्रतिक्रिया निराशाकी है। यह तो ठीक ही है कि काव्यके प्रकृति-रूप दूसरे होते हैं और स्थूल प्रकृतिके दूसरे; और कल्पना-चित्रको वास्तविक दृष्टिसे मिलाकर सुधारना ही पड़ता है।

फिर वर्ड्स्वर्थ और दोनों कोलरिज★ और सदे† जिस कालके थे उस काल में प्रकृति-वर्णनमें स्थूल रूप-वर्णनका सिद्धान्त मानते ही नहीं थे, वैसा दावा करना तो दूरकी बात है।

हरियालीसे ऊब भी आ सकती है, यह नहीं जानता था। अब भी निश्चयपूर्वक नहीं कह सकता कि यहाँ हरियालीसे ऊब आती है या कि उसकी अति-नियन्त्रित व्यवस्थासे। यह ठीक है कि हरियाली एक-रूप नहीं है और उसमें अनेक झाईयाँ हैं—जमीनकी घासपर ही नहीं, पेड़ों-पत्तियोंमें भी। हरेपनका मानो निरा सन्देह-भर लिये हुए सोंतियासे लेकर मूँगियासे भी अधिक कलौंस वाले हरे तक सभी तरहका हरा रंग दीखता है। किन्तु पेड़ तो बीच-बीचमें आते हैं, और घासकी हरियाली सर्वव्यापी है। पेड़ोंमें कॉपर-बीच नामका एक पेड़ है जिसका ताम्र-लोहित रंग अपनी अलग कान्ति और रम्यता रखता है। इसके नये गाँछके 'किसलयमसृन'के 'रूपमनघं'में वैसा ही अस्पृष्ट सौकुमार्य है जिसने कालिदाससे बरबस कहलवाया था :

किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम् !

और वयस्क होनेपर उसमें एक राजसिक भाव आ जाता है जो फिर उसे उतना ही अलगाव दिये रहता है। कभी-कभी फूले हुए लैबर्नम भी दीख जाते हैं, जिन्हें विलायती अमलतास कहा जा सकता है—वही रंग, उसी तरहके झूलते हुए लच्छे। भारतमें अंग्रेज लोग अमलतासको देशी लैबर्नम कहते भी थे !

ऊँची-नीची घाससे ढँकी पहाड़ियाँ नीलगिरि शृंखलाके उटकमण्डके पासके प्रदेशकी, अथवा शिवराय गिरि-शृंखलाके यरकाडकी याद दिलाती हैं—विशेषतया शिवराय शिखरके आसपासके तरु-विहीन प्रदेशकी। कुछ-कुछ

★ पिता सैमुएल टेलर कोलरिज, पुत्र हार्टले कोलरिज।

† रार्बट सदे, जिनकी पत्नी और कोलरिजकी पत्नी बहनें थीं।

ऐसी ही घास-भरी अधित्यकाएँ शिलङ्के निकट बड़ापानी अथवा माफ़लाङ्में (जिस खसिया शब्दका व्युत्पत्त्यर्थ ही 'घासका पहाड़' अथवा दूर्वाचल है) मिलती हैं।

ग्रासमेयरके आस-पासकी दो-एक प्रसिद्ध सैरें मैं कर आया। ऊँचाई पर ईज़डेलका ताल मुख्यतया अपनी निर्जनताके कारण सुन्दर है, लेकिन ऐसा कुछ नहीं है कि उसके लिए भारतसे दौड़े हुए जावें ! ग्रासमेयरकी झील और राइडालका पानी जिसे विनयवश ही झील कहा जा सकता है, वर्ड्स्वर्थको ही मुबारिक हों। हमारा काम मजेमें इनके बिना चल सकता है। बल्कि ग्रासमेयरके आस-पासका प्रदेश अधिक सुन्दर है—पेड़ों और बँगलोंके कारण।

इन्हीं बँगलोंमेंसे एक वर्ड्स्वर्थका है—'डव काटेज', जो वैसा ही सुरक्षित है जैसा कविके समयमें था। 'डैफ़ोडिल्स' और 'लूसी' आदि प्रसिद्ध कविताएँ यहीं लिखी गयी थीं। इसी बँगलेसे राइडालकी ओर कुछ दूरपर वह स्थान है जो वर्ड्स्वर्थका प्रिय स्थान बताया जाता है और जहाँसे राइडालके पानीका अच्छा दृश्य दीखता है। ठीक उसी स्थानसे एक फ़ोटो भी ले लिया।

ग्रासमेयरमें ही वह गिरजाघर है जो स्वयं, और जिससे संलग्न उद्यान और कब्रगाह, वर्ड्स्वर्थकी स्मृतिके साथ अभिन्न रूपसे बँधी हुई है। स्थापत्यकी दृष्टिसे यह गिरजाघर रोचक है क्योंकि दो अंग अलग-अलग कालोंमें बने थे और विस्तार करते समय पहले निर्माणके शहतीर बने रहने दिये गये। अनगढ़ काठका यह स्थापत्य लक्षणीय है। ऐसा ही एक छोटा गिरजाघर थर्लमेयर झीलके किनारेपर है—विथबर्न गिरजाघर। अगर काठ का नगीना हो सकता है तो यह गिरजाघर वैसा नगीना है—बहुत छोटा, किन्तु बहुत सुन्दर और अपने स्थापत्यसे भी उस भावनाको प्रतिबिम्बित करता हुआ जो वास्तवमें ईसाई धर्म-भावना है। ग्रासमेयरके गिरजाघरका वर्णन वर्ड्स्वर्थने अपनी लम्बी कविता 'एक्सकर्शन' में किया है। कब्रगाहमें

सड़कके जो पेड़ हैं उनमेंसे कई एक वड्स्वर्थके लगाये हुए हैं। इन्हींमें-से एक की छायामें, नदीके किनारेपर, वर्ड्स्वर्थकी अपनी समाधि है। समाधि-लेख चरम शब्द-संयमके साथ केवल इतना कहता है: "विलियम वर्ड्स्वर्थ, १८५०। मेरी वर्ड्स्वर्थ, १८५९।" इसके पास ही वड्स्वर्थकी लड़की डोरा और बहन डारोथीकी क़ब्रें हैं। कुछ हटकर हार्टले कोलरिजकी क़ब्र है जिसके लिए स्थान स्वयं वड्स्वर्थने चुना था।

× × ×

आह, यह उल्लास, यह आनन्द
वह जाने, बहा है
सनसनाता पवन जिसकी लटोंसे छनकर!

आख़िर एक ऐसा स्थान भी मिला जिसे मैं सुन्दर कह सकूँ, जो रोमांचित कर सके, जो ज्ञानेन्द्रियों और भावनाको एक साथ उत्तेजित कर सके....

मैं डर्वेंटवाटर नामकी बड़ी झीलके किनारेपर संन्यासीके टीले (फ़्रायर्स क्रैग) पर बैठा हूँ। मेरे पीछे वह अनगढ़ चट्टान है जो 'रस्किनका पत्थर' कहलाती है: इसपर एक फुल्लेमें रस्किनका चेहरा उकेरा हुआ है और उसके नीचे लिखा है: "जीवनकी पहली घटना जिसकी स्मृति मुझे है—कि नर्स मुझे संन्यासी टीले तक ले गयी।"....

मेरे ऊपर फ़र जातिके विशाल देवदारुओंकी छाँह है, और सामने झीलका खुला हुआ प्रसार जिसके ऊपरसे बहती हुई सनसनाती तेज़ हवा मेरे कपड़ोंको भेदती हुई चली जा रही है। झील सुन्दर है; हवासे मथी जाकर वह और भी सुन्दर हो जाती है। उसकी सफ़ेद झालरदार लहरें अनवरत मेरी ओर दौड़ती आती हैं और मेरे पैरोंके नीचे झागमें

बिखर जाती हैं—अपने साथ उस पिघली हुई चाँदीको बिखेरती हुई जो सामनेका दोपहरका सूर्य झीलपर बरसा रहा है।····

इससे मेरा आनन्द कुछ कम तो नहीं होता, लेकिन कुछ विस्मय ज़रूर होता है, कि यहाँ आनेवाले दूसरे लोग उसमें साझा बटाना नहीं चाहते। पिछले आध घण्टेमें मेरे यहाँ बैठे-बैठे कोई बीस दल यहाँ तक आये हैं—कभी तीन-चारका परिवार, लेकिन अधिकतर युगल जोड़े—स्त्री-पुरुष या नारियाँ, और नारियाँ हैं तो साधारणतया ढलती उम्र की; और प्रत्येककी ठीक एक-सी प्रतिक्रिया होती है। "बहुत हवा है, चलो चलें यहाँसे!" कोई भी दस-एक सैकंडसे अधिक यहाँ नहीं ठहरा है, वे भी नहीं जिन्होंने आते ही मुझे सम्बोधन करके कहा था, "कैसा सुन्दर मौसम है!" अथवा "यह तो बड़ा सुन्दर स्थल है!" (अंग्रेज अजनबीसे मौसमकी बातके अलावा और बात ही क्या कर सकता है! यों इन बातोंका अर्थ कुछ नहीं होता—केवल यही कि खुली धूपका स्वागत किया जा रहा है।)

सभी टोलियाँ ढाल परसे उस ओर उतर गयी हैं जिसे टीलेने कोहनी का मोड़-सा बना कर घेर रक्खा है और जो हवाके थपेड़ोंसे बचा हुआ है। वहीं वे धूपमें पसर रही होंगी और बीच-बीचमें गलबहियाँ डालती हुई अपने-अपने सैण्डविच खा रही होंगी। सैण्डविच और दुलारका यह योग मेरी समझमें नहीं आता है, लेकिन 'अपने-अपने मुल्कका रिवाज है!' (इस वाक्यका जिस चुटकुलेसे सम्बन्ध है वह यहाँ लिखने लायक़ नहीं है।)

लेकिन सचमुच इंग्लैंडमें, और सारे यूरोपमें ही मध्य वयकी टूरिस्ट नारियोंकी बहुलता आश्चर्यजनक है। इतनी प्रौढ़ाएँ, इतने स्मश्रु-गुम्फित स्त्री-मुख, इतनी ऊँची और कर्कश आवाजें, और क्रिसमसके समय उपहारों से भरे हुए जालके बेडौल मोज़ोंकी याद दिलानेवाली इतनी थुलथुल टाँगें —मूर्त्तिकार एप्स्टाइन क्या कहना चाहता रहा होगा सहसा समझमें आ जाता है!

झील पार करके लोडोरका प्रसिद्ध प्रपात देख आया। वह प्रसिद्ध अधिक है, प्रपात कम। निजी जमींदारीमें होनेके कारण प्रवेश नियन्त्रित है; यन्त्र-चालित फाटकमें सिक्का डालकर भीतर जाते हैं : घनी छायादार गली और उसके दूसरे छोरपर बहुत-सी चट्टानोंके बीच खोया हुआ थोड़ा-सा पानी। शायद बहुत-सी वर्षाके बाद यहाँ आनेसे प्रपातका दृश्य अधिक आकर्षक होता है। लेकिन जैसा कि गाइड-बुकमें लिखा था, "कोई भी स्थल देखने, उसे देखकर प्रसन्न होनेका दृढ़ निश्चय करके जाना चाहिए। किसी स्थानकी किसी दूसरेसे तुलना करना घातक होता है।" अच्छा साहब, नहीं करते तुलना, नहीं तो हम अभी जून महीनेके कैम्पटी प्रपातको याद करने वाले थे। मान लेते हैं कि हम प्रसन्न हैं, कि लोडोरका प्रपात सुन्दर है। कमसे कम प्रपातका जो तैल-चित्र लन्दनमें टेट संग्रहालयमें देखा था वह तो सुन्दर था ही। हम नहीं कहते कि चित्रकार झूठ बोल रहा था। वह जरूर बहुत भारी वर्षाके बाद आया होगा, और ऐसे समय जब कि सूर्य अभी-अभी बादल फाड़कर निकला होगा और सभी पत्तियाँ अभी गीली होंगी और बूँद-बूँद जल टपका रही होंगी।....

यहाँसे दूसरी दिशामें झील पार की; लेकिन दिन ढलने लगा था इस लिए वापिस केजविक आकर बससे ग्रासमेयर लौट आया। दूसरे दिन सबेरे फिर केजविक पहुँच कर दूसरी दिशामें डर्वेंटवाटरकी झील पार की और ऊपरी ब्रैंडल हो पहुँचकर मैनेस्टीका सुरक्षित वनोद्यान तथा ह्यू वाल-पोलका घर देखा। फिर कैटबेल्स शिखरपर चढ़कर डर्वेंटवाटर झीलका दृश्य देखा और चित्र लिया; यहाँसे झीलका और पार बस्ती और पहाड़ोंका दृश्य बड़ा मनोरम है। लौटकर एक बार फिर संन्यासी टीले और रस्किन शिलाकी ओरसे होता हुआ बसके अड्डे तक पहुँच गया। यहाँसे आधा रास्ता लौटकर थर्लमेयर झीलके किनारे वियवर्नके गिरजाघरके पास उतर

गया। थर्लमेयर सुरक्षित झील है क्योंकि इसका पानी पीनेके काम आता है; झील तक जाना ही नहीं वल्कि सड़क और झीलके बीचके वन-प्रदेशमें भी प्रवेश निषिद्ध है। इसलिए झीलका सौन्दर्य कुछ ऊँचाई परसे ही देखनेको मिला। झील-प्रदेशीय झीलोंमें यह सबसे गहरी है।

गिरजाघरके पाससे ही हेल्वेलिन शिखरकी करीं चढ़ाई शुरू होती है। मैं चढ़ने लगा तो हेल्वेलिन तक जानेका विचार नहीं था, क्योंकि दोपहर दो बजेके बाद ही मैंने चढ़ना आरम्भ किया था। यही विचार था कि कुछ ऊँचाई परसे झीलके चित्र लूँगा; क्योंकि सड़कके निकट ऊपर फ़रके और चीड़के ऊँचे-ऊँचे पेड़ थे। (चीड़के पेड़ मांचेस्टर कार्पोरेशनने झीलकी रक्षाके लिए लगाये हैं क्योंकि मांचेस्टरके पीनेका पानीका स्रोत यही है। अंग्रेज लोग इससे बहुत नाराज़ हैं कि ये विदेशी वृक्ष यहाँ क्यों लगाये गये जहाँका स्वाभाविक वृक्ष फ़र है।) जो हो, पेड़ोंकी सीमासे ऊपर घासके प्रसार तक पहुँच जानेपर लगने लगा कि थोड़ा और जानेपर पहाड़की दूसरी पीठ दीख जायगी; और इसके मोहमें चढ़ता ही गया। लगभग पाँच बजे थे जब कि उतरते हुए एक यात्रीने बताया कि शिखर तक पहुँचनेके लिए घण्टे-भर और कड़ी चढ़ाई चढ़नी होगी और तभी दूसरी ओरका दृश्य दीखेगा। फिर एक बार उसने तीखी दृष्टिसे मेरी ओर देखकर पूछा, "डू यू डू मच क्लाइम्बिंग ?" मैंने उत्तर दिया, "हाँ थोड़ा-बहुत तो करता रहा हूँ", और आगे बढ़ने लगा।

अंग्रेज अतिरंजना नहीं करता, और संकोची भी है; उसकी बातमें सर्वदा कहे हुएसे अधिक कुछ अभिप्राय होता है। इस प्रश्नमें क्या अभिप्राय था, थोड़ी देर बाद समझमें आया।

सहसा बड़े ज़ोरकी हवा चलने लगी। मैं ओवरकोट पहने हुए था; हवा-से उससे विशेष रक्षा नहीं होती थी बल्कि इतनी तेज़ हवामें वह गुब्बारे-सा भरकर मुझे ऊपर अपने साथ उड़ाने लगा। मैंने उसे उतारकर उसकी

पोटली पेटीके साथ कसकर कमरमें बाँध ली और आगे बढ़ने लगा। स्कॉट की पंक्ति याद आयी :

आइ क्लाइम्ब्ड द ब्राउ ऑफ़ द माइटी हेल्वेलिन

और उससे कुछ और उत्तेजना मिली।

शिखर तक पहुँचा तो। लेकिन मैं पहुँचा, यह कहना कुछ गर्वोक्ति-सी जान पड़ती है; क्योंकि वास्तवमें हवाने ही मुझे वहाँ पहुँचाया। और हवाने पहुँचाया, इसलिए वहाँ टिकने भी नहीं दिया और थपेड़ती हुई आगे ले चलती गयी। रास्ता—जो यों भी धुँधली-सी पगडण्डी था—छूट गया और आकाशके घिर जानेसे दिशा-ज्ञान भी असम्भव हो गया। थोड़ी देर यों ही चलता हुआ, या चलाया जाता हुआ, मैं पत्थरके एक ढेरसे जा टकराया। ध्यानसे देखा—वह ढेर नहीं था बल्कि मानव द्वारा बनाया हुआ ऊँचा चबूतरा था—पहाड़ोंमें स्मारकके रूपमें ऐसे चबूतरे या थान प्रायः बनाये जाते हैं। इसीके कारण हवासे कुछ रक्षा भी मिली और मैंने दुबककर कोट फिर पहन लिया। चबूतरेको ध्यानसे देखते हुए पाया कि उसपर लेख भी है। उसको पढ़कर सँभल-सँभलकर एक ओर बढ़कर नीचे झाँका—उसके पार ही बहुत गहरी खड्डके नीचे एक पहाड़ी ताल—लेखके अनुसार इसका नाम 'लाल ताल' (रेड टार्न) जाना। जहाँ चबूतरा बनाया गया था; वहाँसे जाड़ोंमें हवाके झोंकेसे तालमें गिरकर एक व्यक्ति मर गया था; उसकी कोई निशानी भी न मिलती यदि उसका कुत्ता उसी स्थानपर तीन महीने तक पहरा न देता रहता, जब तक कि बर्फ़के पिघलने पर स्वामीकी अस्थियाँ न पायी जावें! कुत्तेकी स्वामि-भक्तिकी यह सच्ची घटना वर्ड्स्वर्थकी एक कविताका विषय है। यह कविता मैंने कोई तीस वर्ष पहले पढ़ी थी। 'कुत्ते और मानवकी मैत्री'के स्मारक रूपमें यह चबूतरा सन् १८९० में बनाया गया था।

मैं प्रायः दो घण्टे वहीं बैठा ठिठुरता रहा। गर्मियोंमें यह अँधेरा दस बजे तक होता है इसलिए बहुत अधिक चिन्ता नहीं थी—इतना ही था

कि एक बार पगडण्डीकी लीक मिल जाय। लगभग आठ बजे वह सम्भव हुआ और फिर तो मैं दौड़ता हुआ नीचे उतरता ही आया और गिरजाघरसे दस पाकर रात ग्रासमेयर पहुँच गया। यहाँ आकर फिर गाइड-बुक देखी है; उनमें सहसा उमड़नेवाली आँधी और धुन्धका उल्लेख है और आरोहियोंको चेतावनी दी गयी है कि इनके खतरेकी कभी अवज्ञा न करें—धुन्ध तो कभी ऐसी जम सकती है कि कई दिन तक स्वयं अपने हाथ-पैर भी न सूझें!

होटलमें अपने कमरेमें बैठकर ये सब आतंककारी बातें पढ़नेमें दुगना मजा आता है।

× × ×

ग्रासमेयरसे एम्बलसाइड, जो विंडरमेयरके किनारेपर है। प्रदेशकी झीलोंमें यह सबसे बड़ी है—लम्बाईमें प्रायः साढ़े-दस मील। सौन्दर्यके लिए शायद कुछ ज्यादा बड़ी है, क्योंकि पूरी झील एक साथ नहीं देखी जा सकती। लेकिन इसके आस-पास कई सुन्दर स्थल हैं, और यों प्राकृतिक दृश्योंके प्रेमियोंके लिए अनेक सैरोंका यह केन्द्र भी है। जिस होटलमें ठहरा हूँ उसीमें ठहरे हुए एक स्काटी दम्पतिके सौजन्यसे उनके साथ मोटरमें बैठकर आसपासकी और दो-तीन झीलें भी देख आया हूँ—इस चक्करके अन्तमें हमलोग विंडरमेयरके पार बोनेस घाट पहुँचे जहाँसे मोटर भी नावमें लादकर झीलके पार लायी गयी।

सबेरे फिर झीलके पार रे दुर्ग और गिरजाघर देखने गये। रविवार था; इसलिए इस खेपके दूसरे सब यात्री गिरजाघरके अन्दर चले गये; मुझे दुर्गकी और झीलके किनारों और जंगलकी सैर करनेका एकान्त सुयोग मिल गया। रे दुर्ग और उसका उद्यान भी बहुत सुन्दर हैं। वहाँसे गिरजाघरकी प्रार्थना समाप्त हो जानेके बाद दूसरे यात्रियोंके साथ एम्बलसाइड लौटकर

भोजन किया और फिर एक लम्बी पैदल सैरकी ठानी। राइडालतक जाकर पहाड़पर चढ़ना शुरू किया; दो-एक जगह पत्थरकी पुरानी खदानोंके झाड़ियोंसे ढँके हुए गढ्ढोंमें गिरते-गिरते बचा; दो-एक जगह हरियालीके नीचे छिपी हुई दलदलमें पिण्डलियां तक धँस गया; लेकिन लोखरिग ताल, लोखरिग शिखरके रास्ते होता हुआ क्लैपर्स गेट तक पहुँचा; वहाँसे एलर्स ग्राउ होता हुआ वापिस एम्बलसाइड।

झील-प्रदेशका मेरा प्रवास पूरा होता है। लेखा मिलाने बैठूँ तो सहसा नहीं कह सकता कि बहुत अधिक मुनाफ़ा करके जा रहा हूँ। कुछ साहित्यिक स्मृतियाँ फिर हरी हो गयी हैं; कुछ कविताएँ दुबारा पढ़ने की प्रवृत्ति हुई है और यह भी हुआ है कि उनको दुबारा पढ़ूँगा तो नया अर्थ मिलेगा और अधिक वस्तु-संगत चित्र सामने आवेंगे। लेकिन असल बात यह है कि झीलोंके प्रदेशका सौन्दर्य झील या पर्वत या प्रदेशमें ही उतना नहीं है, जितना कि उसमें घूम-फिर कर उसे आत्मसात् करनेवालोंमें। शुद्ध प्राकृतिक रूपके ख्यालसे कहीं सुन्दरतर स्थल मैं स्वदेशमें देख चुका हूँ। सभी दुर्गम हों ऐसा भी नहीं है; अनेकोंमें सैर-सपाटेके लिए ऐसे ही बहुसंख्य रास्ते और पगडण्डियाँ हैं, जैसे यहाँपर। अन्तर इतना ही है कि उनमें घूमनेवाले लोग नहीं हैं; या कि उनमें घूमनेवाले दूसरे हैं और कविताएँ लिखनेवाले दूसरे। इस प्रकार प्रकृतिका यह बिखरा हुआ सौन्दर्य असंचित ही रह जाता है; किसीके द्वारा स्वायत्त नहीं किया जाता। इसलिए कवि-प्रतिभा उसे नये प्रभामय रूपमें ढाल कर हमें नहीं देती; वहीं पड़ा रहने देती है। एक सौन्दर्य होता है जो पहाड़ों और झीलोंपर पड़ा रहता है; एक सौन्दर्य होता है जो इस रूपश्री और कवि-दृष्टिकी रागश्रीके योगसे उत्पन्न होता है। यह दूसरा सौन्दर्य ही वास्तवमें रस है, बल्कि रसायन है, राज-रसायन है।

मुनाफ़ेके रूपमें यही उपलब्धि लेकर जा रहा हूँ। इसके लिए यहाँ आना आवश्यक नहीं था; लेकिन जो भी उन्मेष जहाँ भी हो जाय वहींका

होता है । बोधि-वृक्षके लिए कोई बना-बनाया स्थान नहीं होता; पथ-तटका कोई भी वृक्ष वह पद प्राप्त कर सकता है अगर उसकी छायामें आँखें खुलें !

> **थैंक्स टु द ह्यूमन हार्ट बाई ह्विच वी लिव**
> **थैंक्स टु इट्स टेंडरनेस, इट्स जाएज, एंड फ़ीयर्स,**
> **टु मी द मीनेस्ट फ्लावर दैट ब्लोज, कैन गिव**
> **थाट्स दैट डू आफ़न लाइ टू डीप फ़ार टीयर्स''''***

[३]

प्रिय—,

कार्यक्रमके अनुसार मुझे लन्दनसे आयरलैण्ड और फिर उसके बाद स्काटलैंड जाना था, चाहे आयरलैंडसे सीधे, चाहे लन्दन लौट कर । लेकिन ब्रिटेनमें कहीं भी जानेके लिए लन्दनसे जाना सुविधाजनक जान पड़ता है और इसलिए कहींसे कहीं और जानेके लिए भी लन्दन होते हुए जाना सुविधाका मार्ग है ! अलग-अलग स्थानोंमें अलग-अलग प्रकारके सामानकी आवश्यकता होती है और सब एक-साथ लादे फिरने की बजाय प्रत्येक अभियानके लिए आवश्यक सामान लेकर बाक़ी सब लन्दनमें छोड़ जा सकना भी एक सुविधा हैं; इसलिए भी लन्दन लौटना उपयोगी होता है ।

डब्लिनसे विमानसे लन्दन लौटा । यहाँसे रेलसे एडिनबरा जाना था, लेकिन बीचमें तीन दिनका अवकाश था । दक्षिणी इंग्लैंड अभी तक नहीं देखा था—लन्दनसे डोवर घाटकी यात्राकी बात छोड़ दूँ तो !—इसलिए उत्तरमें एडिनबराका रास्ता, दक्षिण-पश्चिमके डेवनशायरकी ओरसे पाना कुछ बे-ठीक नहीं लगा !

---

* वर्ड्स्वर्थ, 'ओड आन द इंटिमेशन्स आफ़ इम्मार्टेलिटी'

बाथ, जैसा कि नामसे ही स्पष्ट है, स्नानोपचारका प्रसिद्ध स्थान है। यूरोपमें तो ऐसे अनेक स्थान हैं जहाँ लोग इलाज या विश्रामके लिए जाते हैं; जर्मनी और फ्रांसके ऐसे स्थल बहुत प्रसिद्ध हैं। यद्यपि ऐसे स्थलोंका समकालीन समाजमें वह महत्त्व नहीं रहा है जो दो शताब्दी पहले था, जब कि ये न केवल स्वास्थ्यके केन्द्र थे बल्कि फ़ैशनके भी; और अभिजात-वर्गके दर्प, धनिक-वर्गके आत्म-प्रदर्शन तथा चोरों और चतुरोंके अपने हुनर दिखानेके केन्द्र थे। इतना ही नहीं, बड़े खानदानके ग़रीब और निकम्मे युवक धनवती बहूकी खोजमें यहाँ आते थे; रूपसी कन्याओंके लोभी या महत्त्वाकांक्षी माता-पिता उपयुक्त वर ढूँढ़नेकी आशामें। स्पष्ट ही ऐसी परिस्थितिमें वहाँका जीवन अत्यन्त कृत्रिम, भड़कीला, दिखावटी और दम्भपूर्ण रहा होगा। ठीक ऐसे ही जीवनका चित्र कांग्रीव और वाइचर्लीके नाटकोंमें हमें मिलता है। स्वयं बाथके उल्लेख अठारहवीं-उन्नीसवीं शतीके अंग्रेजी साहित्यमें बहुत मिलेंगे; स्मालेट, फ़ील्डिंग, डिकेंस, गोल्डस्मिथ, जेन आस्टेन आदिकी रचनाओंमें। मिथ्यापर, छिपी लोलुपता और प्रत्यक्ष निरीहतापर, खड़ी की गयी इस धोखेकी टट्टीके गिर जानेका दुःख किसे होगा! इतिहासपर उसकी जो छाप है उतनी काफ़ी है—वह दूरी इस सारी छद्मलीलाको मनोरंजक बना देती है।

लेकिन बाथका उल्लेख मैं जो मिट गया या नष्ट हो गया उसके लिए नहीं, जो बचा या बना रह गया उसके लिए करना चाहता हूँ। यों तो यहाँके रसायन-मिश्रित गर्म पानीकी ऐतिहासिक प्रसिद्धि उसी समयसे है जबकि रोमनोंने ब्रिटेनपर आक्रमण करके उसे परास्त करना शुरू किया। रोमिक आक्रमण ईसाकी पहली शतीमें ही आरम्भ हो गये थे और तभीसे बाथके गर्म जलके सोतोंसे उनका परिचय रहा। लगभग चार सौ वर्षके रोमिक उपनिवेश-कालमें यह स्थान आकर्षणका केन्द्र बना रहा। बाथके रोमिक स्नानागार अब भी इसका प्रमाण हैं। अब स्नानागारोंके ऊपर पीछेकी बनायी हुई इमारतें हैं, लेकिन तलघरोंके रोमिक स्नानागार और

उनकी जल-प्रणालियाँ वही हैं जो प्रायः दो हजार वर्ष पहले थीं। उस समयके बने हुए सीसेके नल अब भी काम देते हैं। गोताखोरोंके कूदनेके लिए घाटका पत्थर अब भी है। उसके घिसे हुए सिरे रोमिक स्नानार्थियोंके पैरोंकी छापकी साक्षी दे रहे हैं।

नये स्नानागार और नल-घर अठारहवीं शतीके आरम्भके हैं। सन् १७०५में पहले निर्माणके बाद उसमें समय-समयपर कई परिवर्तन हुए; किन्तु स्नानागारोंके और बाथके अधिकांशके स्थापत्यमें जो एकरूपता है वह अठारहवीं शतीकी ही है और उसी समयके जीवनकी साक्षी देती है। और मैं उल्लेख करना चाहता हूँ तो रोमिक कालके अवशेषोंका नहीं, बल्कि इस दूसरी विशेषताका ही। रोमिक अवशेष न जाने कब उपेक्षित होकर खो गये थे; और अठारहवीं शतीमें जब नये स्नानागारोंका निर्माण हुआ तब उनका कोई पता नहीं था। उनका पता उन्नीसवीं शतीके उत्तरार्द्ध में लगा और सन् १८७९-८० में उन्हें खोद कर उनका उद्धार किया गया। सन् १९२३ में और खुदाई हुई और कुछ नये अवशेष पाये गये। रोमिक खण्डोंका पूरा ढाँचा बाथके संग्रहालयमें रखा हुआ है। कुछ और अमूल्य अवशेष भी हैं—मिनर्वा देवीका काँसेका एक मस्तक, कुछ मुद्रिकाएँ और उनके जड़ाऊ रत्न इत्यादि मिले हैं। एक मनोरंजक उपलब्धि रोमिक कालका पाँसा है जिसकी विशेषता यह है कि वह केवल जुआ खेलनेके लिए नहीं बल्कि जुएमें धोखा देनेके लिए बनाया गया है। एक पार्श्व भारी कर दिया गया है, जिससे वह उल्टा पड़ ही नहीं सकता! इस प्रकार वह स्नानागारोंसे सम्बद्ध रोमिक विलासिताके एक विशेष युगका प्रतीक बन जाता है; और इसी हीन परम्पराका मानो पुनर्जागरण आरम्भिक अठारहवीं शतीमें होता है।

रोमिक इमारतें थीं, खो गयीं; फिर उनके अवशेष दुबारा खोज निकाले गये। लेकिन अठारहवीं शतीका बाथ खोया या मिटा नहीं। जिस समाजने उसे जन्म और रूप दिया था उसके मिट जानेपर नगर-सभाने



वर्ड्स्वर्थका घर : 'डव काटेज'



राइडाल वाटर



[डर्वेण्टवाटरके किनारे 'संध्यासीटोले' — फ्रायर्स क्रैगपर रस्किन-स्मारक शिला]

रस्किन शिला



डर्वेंटवाटर

बाथके वास्तु-रूपको बनाये रखनेका निश्चय किया; और आज हम उसकी सड़कों और इमारतोंका जो रूप देखते हैं वह वही है जो अठारहवीं शतीमें था। मेरे निकट इस समय बाथ इसीलिए उल्लेख्य है कि उसमें हम अठारहवीं शतीके नगर-रूपको अक्षुण्ण देख सकते हैं। उसकी सड़कों और उसके मुहल्लों या चौकोंकी तुलना तत्कालीन चित्रों और वर्णनोंसे की जा सकती है और प्रत्येक चबूतरे, खम्भे, खिड़की और छज्जेको पहचाना जा सकता है। कई पुराने मकान जीर्णोद्धार या पुनर्निर्माणके समय भीतरसे उनमें रहने वालोंकी सुविधाके अनुसार बदले गये हैं, लेकिन बहिरूपमें कोई परिवर्तन करनेकी अनुमति नहीं मिली है और इसीलिए नगरके विभिन्न खण्ड देखनेमें ज्योंके-त्यों बने हुए हैं।

इसका अर्थ यह नहीं है कि मैं सर्वत्र सभी नगरोंमें ऐसा करनेका समर्थन कर रहा हूँ; निःसन्देह बदलती हुई दुनियाके साथ बहुत कुछ न केवल अनिवार्यतः बदलेगा बल्कि स्वेच्छया बदलना होगा। लेकिन कुछ ऐतिहासिक शहरोंके ऐतिहासिक रूपकी, और अनेक नगरोंके कुछ ऐतिहासिक खण्डोंकी, रक्षा हो सकती है और होनी चाहिए—यह देशके जीवनको सम्पूर्णतर बनाती है और उसकी सांस्कृतिक गहराई बढ़ाती है। विशेष रूपसे ऐसे नगर, जो न केवल ऐतिहासिक महत्त्व रखते हैं बल्कि किसी विशेष स्थापत्य-शैलीको उदाहृत करते हैं, जरूर सुरक्षित रहने चाहिए। और यह आवश्यक नहीं है कि इस तरहके ऐतिहासिक संरक्षणका काम केवल केन्द्रीय शासन या प्रादेशिक शासन ही करे। नागरिक शासन स्वयं इसका प्रबन्ध कर सकता है, और करेगा तो सरकारसे सहयोग भी पा सकेगा। जिस नगरके नागरिक अपने नगरकी विशेषतापर गर्व करना नहीं जानते क्योंकि उस विशेषताको पहचानते ही नहीं, उसके लिए दूर बैठी हुई सरकारें क्या करेंगी? बनारसका अद्वितीय गंगातट और उसके ऐतिहासिक घाटोंकी चिन्ता सबसे पहले बनारसियोंको होनी चाहिए, राज्य या केन्द्रकी सहायता बादकी बात है। और यह केवल संयोग है कि

राज्यके मुख्य मन्त्रीका बनारससे सम्बन्ध है—इतनी पतली डोरके सहारे इतिहास नहीं टाँगा जा सकता—बनारसका भी नहीं, जो बहुधा तरंगमें रहता है और कभी उड़ भी सकता है।

बाथकी एक संस्था भी उल्लेखनीय है—कोर्शम कोर्टकी 'बाथ एकैडेमी आफ़ आर्ट' जिसमे चित्र और मूर्त्ति-कलाकी विभिन्न शाखाओंके अलावा रंगमंच और संगीतकी शिक्षाकी पूरी व्यवस्था है। कोर्शम कोर्ट एक समय सैक्सन राजवंशकी जागीर था। उससे लगा हुआ वनोद्यान दसवीं शतीका है। अब वह जिस परिवारकी सम्पत्ति है, कला-संग्रह उसका पुश्तैनी व्यसन रहा, और यह उसकी उदारता है कि बाथकी कला एकैडेमीको वहाँ स्थान दिया गया है। 'ऐतिहासिक अथवा स्थापत्य-कलाकी दृष्टिसे महत्त्वपूर्ण भवन'—इस विषयके अध्ययनके लिए जो 'गावर्स समिति' बनी थी उसने अपनी रिपोर्टमें "सौन्दर्य, कला और प्रकृतिके संगम"का उल्लेख किया था, जो "बहुधा शतियोंके परिश्रमका परिणाम होता है, सभ्यताके इतिहासमें जिसके दूसरे उदाहरण कम ही मिलेंगे, और जिसकी क्षति कभी पूरी न की जा सकेगी।" बाथकी परम्परागत सम्पत्तिकी रक्षापर जोर देते हुए समितिने कोर्शम कोर्टकी कला एकैडेमीका उल्लेख किया था : "लगन हो और अनुकूल परिस्थितियाँ मिल जावें तो यह उद्देश्य कितने सुन्दर ढंगसे पूरा हो सकता है!"

इस समय एकैडेमीके अन्तर्गत दो संस्थाएँ हैं : 'दृश्य-कलाओंका विद्यालय' और 'साधारण पाठशालाओंके कला-शिक्षकोंका प्रशिक्षण महाविद्यालय'। रंगमंच और संगीतके विभाग दूसरी संस्थाके अंग हैं। दृश्य-कलाओंके अन्तर्गत चित्र-कला, मूर्त्ति-कला, रंगीन छपाई, भांड-निर्माण, कपड़ेकी कताई, बुनाई, रंगाई, छपाई और सिलाई सिखाये जाते हैं। रंगमंचकी शिक्षामें नृत्य, नाट्य, अभिनय और रंगमंचसे सम्बद्ध सभी शिल्पोंकी शिक्षा

दी जाती है। कठपुतली मंचकी शिक्षा भी दी जाती है। शिक्षा-क्रम साधारणतया चार वर्षका होता है, कला-शिक्षकोंके लिए कम समयके शिक्षा-क्रम भी होते हैं।

इस संस्थाके कृतित्वके उदाहरण कोर्शम कोर्टमें देखकर तो प्रभावित हुआ ही था; डार्टिंगटन पहुँचकर उनके चित्रोंकी प्रदर्शनी देखी तो और भी प्रभावित हुआ। इन चित्रोंमें कुछ बिकाऊ भी थे; बिक्रीसे होनेवाली आयका तृतीयांश एकैडेमीको देशाटन छात्रवृत्तिके लिए दिया जाता है। एकैडेमीके सभी छात्र विभिन्न संग्रहालयों या कला-केन्द्रोंको देखने ले जाये और भेजे जाते हैं; ग्रीष्मावकाशमें अनेक यूरोपके विभिन्न कला-केन्द्रोंकी सैर करते हैं; विशेष प्रतिभा-सम्पन्न विद्यार्थियोंको छात्रवृत्ति मिलती है।

डार्टिंगटनमें और भी बहुत-कुछ देखा, लेकिन उसकी चर्चा करनेसे पहले यह बताना होगा कि डार्टिंगटन है क्या और वहाँ पहुँचा कैसे।

बाथ जानेके लिए लन्दनसे सीधा ब्रिस्टल गया था, यद्यपि वहाँ जानेके लिए बाथ रास्तेमें पड़ता है। अब बाथसे पहले सीधे दक्षिण और फिर दक्षिण-पश्चिम मुड़ते हुए ब्रिटेनके दक्षिणी सागर-तटतक पहुँच गया। बीच-बीचमें तटके सुन्दर दृश्य और तैरते या जलक्रीड़ा करते हुए अनेक प्रसन्न परिवारोंको देखता हुआ टोटनेस पहुँचा—टेन नदीके मुहानेसे रेलकी पटरी फिर सागर-तटसे हट गयी थी। टोटनेससे प्रायः चार मील टैक्सीसे जाना होता है।

डार्टिंगटन हालको इंग्लैंडका शान्तिनिकेतन कहा जा सकता है। शान्तिनिकेतनका नाम मैं जान-बूझकर ले रहा हूँ यद्यपि उसके संस्थापक एल्महर्स्ट दम्पतिमेसे कोई कवि नहीं है! लेओनार्ड एल्महर्स्ट स्वयं उत्तरी इंग्लैंडके हैं, और उनकी पत्नी डारोथी न्यूयार्कके एक धनिक परिवारकी। दोनोंकी परम्पराएँ उन्हें तीव्र व्यवहार-बुद्धि देती हैं, लेकिन

दोनोंका जीवन विवाहसे पहले भी साहसिक और परिवर्तनमय रहा, और व्यावहारिकताके साथ प्रयोग करनेकी प्रवृत्ति दोनोंमें है। अमेरिकामें लिओनार्डने कृषि-विज्ञानकी शिक्षाके साथ-साथ कृषिके प्रयोगोंकी प्रवृत्ति भी पायी थी; शिक्षा पूरी करके वह भारत आये और संयोगसे रवीन्द्रनाथ ठाकुरसे उनका परिचय हुआ। कृषि, और देहाती समाजके पुनःसंगठनकी ओर रुचिके कारण एल्महर्स्टने शान्तिनिकेतनसे सम्बद्ध एक और प्रयोग करनेका उत्तरदायित्व स्वीकार किया और इस प्रकार श्रीनिकेतनका सूत्रपात हुआ। सन् १९२४ में एल्महर्स्ट सारा काम अपने भारतीय सहयोगियोंको सौंपकर इंग्लैंड लौट गये, जहाँ उन्होंने विवाह किया और फिर दक्षिणी इंग्लैंडमें डेवनशायरमें ज़मीन ख़रीदकर अपनी नयी संस्थाका निर्माण आरम्भ किया।

डार्टिंगटनमें उनके उद्योगोंका पहला ध्येय पुनर्निर्माण और पुनर्वासन ही था। अपनी योजनाको उन्होंने दो भागोंमें बाँटा था—आर्थिक और अनार्थिक—इस दूसरे शीर्षकके अन्तर्गत ऐसे सभी काम थे जिनका आधार व्यावसायिक नहीं था। लेकिन वास्तवमें इन दोनों भागोंको अलग करना कभी सम्भव नहीं हुआ। पर यह भेद और उसकी असम्भावना ही डार्टिंगटनके इतिहासका रहस्य है!

आर्थिक योजनाके अधीन भूमिके उत्पादनकी वृद्धि और उसका समुचित प्रयोग था। खेती और वनभूमिके उपयोगके लिए क्रमशः गोधन और मुर्गियोंके पालन, फलोंकी खेती और रस निकालनेके यन्त्र, चिराईकी मशीन और कताई-बुनाईके विभाग जोड़ दिये गये। यह मान लिया गया कि ये सभी क्योंकि एक समय लाभकर देहाती उद्योग रहे, इसलिए उन्हें फिर वैसा बनाया जा सकता है।

योजनाका दूसरा भाग कहीं अधिक जटिल था। उसमें मुख्यतया चार कार्यक्षेत्र थे। पहला तो शोधका था जिसमें कृषि और वनस्पतिसे सम्बन्ध रखनेवाले सभी तरहके प्रयोग शामिल थे और जिसके लिए एक प्रयोगशाला

भी बनायी गयी। दूसरा शिक्षण; जिसमें महशिक्षणका विद्यालय, प्रशिक्षण केन्द्र और अन्य संस्थाएँ थीं। तीसरा कला-शिक्षा; जिसके अन्तर्गत नृत्य, नाट्य, संगीत, चित्र और मूत्तिकलाका अभ्यास था। चौथा, स्थानीय मध्यकालीन इमारतोंका ऐसे ढगसे पुर्निर्माण करना कि वे संस्थाकी आवश्यकताओंकी पूर्ति भी कर सकें।

संस्थाके सामने जो विभिन्न समस्याएं आयी और उनका सामना करनेके लिए जो-जो संगठन किये गये, उन सवका उल्लेख यहाँ अनावश्यक है। संक्षेपमें व्यवसाय-पक्ष 'डार्टिंगटन हाल लिमिटेड' नामक संस्थाको सौंप दिया गया और सांस्कृतिक पुनर्निर्माणका कार्य डार्टिंगटन हाल ट्रस्टको। किन्तु इन दो नामोंसे यह न समझना चाहिए कि संगठनकी मूल एकता नष्ट हो गयी, या कि एल्महर्स्ट दम्पतिने समूचे जीवनको एक ही भित्तिपर आधारित करनेकी अपनी आशा और अपना प्रयोग छोड़ दिया।

डार्टिंगटन हाल पहुँचनेपर मुझे एक परिवारके साथ ठहराया गया; गृहस्वामी डार्टिंगटनकी पैदावारकी बिक्री करनेवाले संगठनसे सम्बद्ध थे और गृह-स्वामिनी प्राथमिक विद्यालयसे। रातको कला-केन्द्रमें अमेरिकी संगीतका कांसर्ट था—कला-केन्द्र बराबर विभिन्न क्षेत्रोंमें तरह-तरहके आयोजन करता रहता है और कुछ ही दिन पहले श्रीमती शान्ता राव भरतनाट्य और मोहिनी अटम्‌का प्रदर्शन वहाँ करके गयी थी; अली अकबर खाँका सरोद-वादन भी वहाँ हो चुका था। विभिन्न संस्थाओंकी ओरसे शेक्सपियरके या दूसरे नाटकोंके अभिनय, आपेरा, चित्रोंके प्रदर्शन इत्यादि भी होते रहते हैं। अनन्तर केन्द्रकी लोक-नृत्यकी शिक्षिकासे भेंट हुई; दूसरे दिन प्रातःकाल ही उनके घर गया और उनकी वर्कशाप भी देखी जिसमें नाना प्रकारके लोक-वाद्योंके निर्माण और मरम्मतकी व्यवस्था थी। कुछ रिकार्ड किया हुआ लोक-नृत्य संगीत भी सुना। दोपहरको कला-केन्द्र संचालक श्री

पीटर काक्ससे दुबारा भेंट हुई और उसके बाद संस्थाके लोक-सम्पर्क अधिकारीके साथ डार्टिगटनके वन-प्रदेश और विभिन्न उद्योगोंके केन्द्र देखे; विद्यालय भी देखे। फिर दोपहरमें ही संगीतकी एक रिहर्सलमें बैठनेकी अनुमति मिल गयी—प्रसिद्ध जर्मन कंडक्टर हर्मन शेर्खेन कला-केन्द्रसे सम्बद्ध हैं और उनके संचालनमें कला-केन्द्र निरन्तर यूरोपीय क्लासिकल संगीतके कार्यक्रम प्रस्तुत करता रहता है—बहुधा ऐसा संगीत भी जो सार्वजनिक रूपसे इंग्लैंडमें पहली बार डार्टिगटन हालमें ही प्रस्तुत किया गया हो।

अनन्तर कला-केन्द्रके गायकवृन्दके कुछ सदस्योंके साथ भोजन करके फ़िल्मी संगीत लिखनेवालोंकी भी एक रिहर्सल देखी। फ़िल्मी अथवा पृष्ठ-भूमि संगीतकी शिक्षा भी यहाँ दी जाती है और विद्यार्थी-गण फ़िल्मोंके छोटे-छोटे टुकड़े देखकर उसके लिए अलग-अलग संगीतकी रचना करते हैं जो रिहर्सलोंमें सुनाया जाता है और परस्पर आलोचना और अध्यापक द्वारा निर्देशनका आधार बनाता है। फ़िल्मी संगीतसे केवल फ़िल्मी गाना नहीं समझ लेना चाहिए वल्कि दृश्यके प्रभावको और गहरा बनानेवाला सभी संगीत उसमें आ जाता है।

अभी थोड़ी देरमें फिर टोटनेसके लिए रवाना होता हूँ; वहाँसे न्यूटन एबटमें गाड़ी बदलकर रातको लन्दन पहुँच जाऊँगा, जहाँसे तुरत दूसरे जंकशन जाकर एडिनबराकी गाड़ी पकड़नी होगी।····



बीस हज़ार राष्ट्रकवि

निर्धन, किन्तु सुनहली धूप और सुनहले खेतोंसे सम्पन्न सुन्दर प्रदेश। पहाड़ियोंसे लहराते हुए सागर-तट तथा क्रमशः उतरती तलहटियाँ, जिनके पके गेहूँके कुन्दनमें जहाँ-तहाँ अप्रत्याशित ढंगसे पोस्तेके फूलके लाल नगीने जड़े हैं। अंग्रेज़ीसे भिन्न लय और स्वर-योजनावाली संगीतमयी बोली, जिसकी विशेष प्रकारकी मींड़ें उसके बोलनेवालोंकी अंग्रेज़ीमें भी उतर आती हैं। मिलनसार परन्तु आशु-क्रोधी, गम्भीर पर सहानुभूति-सम्पन्न, फटेहाल पर उदार, अभिमानी किन्तु पर-दुःख-कातर लोग।

कोई भारतीय अपने मनमें इंग्लैंडका और अंग्रेज़का जो भी बिम्ब लेकर आया हो, वेल्सकी सीमामें प्रवेश करते ही वह बदलने लगता है, और कुल मिलाकर वह परिवर्तन प्रीतिकर ही होता है। लम्बी अवधि तक रह लेनेके बाद तो यह भी जान पड़ने लगता है कि जिस जाति-समूहको हम अज्ञान अथवा सुविधा-वश 'अंग्रेज़ जाति' कहते हैं उसमें सम्मिलित दूसरी सभी जातियाँ वास्तविक अंग्रेज़ जातिसे अधिक आकर्षक हैं। तब अंग्रेज़की प्रभुतापर आश्चर्य भी होने लगता है और धीरे-धीरे सतहके नीचेके वे दुराव-खिंचाव भी समझमें आने लगते हैं जो समय-समयपर फूटकर बाहर निकल पड़ते हैं। अंग्रेज़ और आयरिशका विरोध तो आयरी स्वातन्त्र्य आन्दोलनने हमारे सामने ला रखा, बल्कि आयरी विद्रोह-भावनासे एक समयके भारतीय क्रान्तिकारीको बड़ी प्रेरणा भी मिलती रही। लेकिन इस राजनीतिक द्वन्द्वके पीछे धार्मिक परम्पराओंका (एंग्लिकन और कैथोलिक सम्प्रदायोंका) जो द्वन्द्व था, और उससे भी बढ़कर जातिगत संवेदना और आदर्शोंका जो भेद था, वह यहाँ

भारतमें रहते हुए उतना स्पष्ट नहीं होता। मुझे याद है, जिन दिनों मैं सेनामें था, उन दिनों अपने साथी एक ब्रिटिश अफ़सरको अंग्रेजोंकी बुराई करते पा कर ("द इंग्लिश आर वेरी मीन"—अंग्रेज़ बहुत कमीने होते हैं) मैंने जब अचकचाकर कहा था कि "आप भी तो अंग्रेज हैं", तो उसने तिलमिलाकर उत्तर दिया था, "नहीं, मैं वेल्श हूँ !" अंग्रेज और आयरिशके विरोधके बावजूद ब्रिटिश सेनामें आयरिश सैनिकोंकी बहुसंख्या को तो मैं आयरी स्वभावके अन्तर्विरोधका एक चिह्न मानकर स्वीकार कर चुका था, लेकिन इंग्लिश और वेल्शका यह विरोध मेरे लिए नयी बात थी। इसकी वास्तविक शक्ति यूरोप और इंग्लैंडकी यात्राके बाद ही ठीक-ठीक समझ सका। इंग्लिश और वेल्श, आयरिश और स्काट, एंग्लो-सेक्सन और केल्टिक अथवा गेलिक, इनके जातिगत संस्कार कितने गहरे और कितने भिन्न हैं इसका अनुमान भी उन लोगोंके लिए कठिन है जो कि सारे यूरोपको ही नहीं, सारे पश्चिमको एक मान लेते हैं। (यों यह अधिक विस्मयकी बात तो नहीं है, क्योंकि यूरोपके लोग भी सारे पूर्व अथवा 'ओरिएंट'को एक मान लेते हैं और अनुभवके बाद ही अलग-अलग देशोंकी अलग-अलग प्रवृत्तियाँ पहचान पाते हैं। फिर इससे आगे बढ़कर 'पहाड़ी' और 'देसवाल' या पंजाबी और बंगाली, या 'हिन्दुस्तानी' और द्रविड, या द्रविड़के अन्तर्गत तमिल और मलयालीके स्वभाव, संवेदना, रागात्मक प्रवृत्ति और जीवन-दृष्टिके अन्तरको पहचानना तो दूरकी बात है !)

इंग्लैंडमें भी, और भी अधिक रहनेसे अंग्रेजकी प्रभुतापर आश्चर्य नहीं रहता, क्योंकि धीरे-धीरे उसके कारण भी समझमें आने लगते हैं। अंग्रेजके अपने गुण हैं, जो उसे आकर्षक भले ही न बनावें, समर्थ अवश्य बनाते हैं। किन्तु जाति-तत्त्वके विवेचनमें मुझे नहीं पड़ना है। एक बार वेल्सकी सीमामें प्रविष्ट हो जानेपर अपनेको उस प्रदेशके सौन्दर्यके प्रति समर्पित कर देना ही श्रेयस्कर है। फिर जल्दी भी है—आगे बढ़कर हमें वेल्सके बीस हजार राष्ट्र-कवियोंके दर्शन भी तो करने हैं।

हम वेल्श प्रदेस पार करते हुए उत्तरी वेल्सकी एक मुख्य वस्ती पुथ्लेलीकी ओर जा रहे हैं, जहाँपर इस वर्षका राष्ट्रीय-उत्सव 'आइस्तेद्वद' हो रहा है।

वेल्समें बड़े शहर नहीं हैं; शहर ही अभी हाल तक नहीं थे; ग्राम अथवा लोक-सभ्यताका वह उत्तम उदाहरण था। अब कोयलेकी खानोंके कारण कुछ शहर बन गये हैं, और गर्मियोंमें सागर-स्नानके अभिलाषी सैलानियोंके वार्षिक आक्रमणके कारण तटवर्ती क़स्बे तो बहुतसे हो गये हैं; फिर भी वेल्सकी परम्पराएँ सब ग्राम-जीवनकी परम्पराएँ हैं और उसके सामाजिक जीवनमें वैसी ही सुगठित एकता है। औद्योगिक क्रान्तिके प्रवर्त्तक ब्रिटेनमें इतना ही वेल्सको विशिष्ट स्थान देता, पर उसकी विशिष्ट सांस्कृतिक परम्पराएँ तो उसे और भी उल्लेख्य बना देती हैं। सारे यूरोपमें कदाचित् यही प्रदेश ऐसा है जहाँ काव्य-गायनकी परम्परा अक्षुण्ण बनी है, जहाँ किसान-कमकर स्वयं वर्णवृत्तोंमें कविता करते और वाद्योंके साथ गाकर सुनाते हैं; जहाँ गाँव-गाँव और ज़िले-ज़िलेका अपना काव्योत्सव और काव्य-प्रतियोगिता होती है, और राष्ट्रीय काव्योत्सवमें सैकड़ों प्रतियोगी भाग लेते हैं और हज़ारों व्यक्ति सप्ताह-भर तक कविता, गान, वादन आदि सुनते और प्रतियोगिताके निर्णयमें दिलचस्पी रखते हैं। कहते हैं कि संस्कृतिकी एक पहचान यह है कि लोग अपने फ़ुरसतके समयका क्या उपयोग करते हैं, दूसरी यह कि उनके सामूहिक मनोरंजन क्या रूप लेते हैं; इन दोनों कसौटियोंपर वेल्सकी संस्कृति बहुत ऊँचा स्थान पाती है, और एक बार फिर हमें वह बात माननी पड़ती है जिसका एक उदाहरण हमारा अपना देश भी है—कि साक्षरता ही संस्कृति नहीं है, कि नगरमें बसकर हर शनिवारको रेस खेलनेवाले या रविवारको राबेरेके शोमें सिनेमा देखनेवाले अनिवार्यतया उस ग्रामवासी निरक्षरसे अधिक संस्कृत नहीं हैं जो आल्हा और चौपाई गाता है, बिरहेके दंगलमें जाता है, या भाँड़ों द्वारा की गयी समकालीन सामाजिक और

राजनैतिक प्रवृत्तियोंकी व्यंग्य आलोचनामें रस लेता है। भौगोलिक विस्तार की असमानता बाधक न हो, तो भारत और वेल्सके जीवनकी कई स्तरोंपर तुलना हो सकती है।

पुल्हेलीमें मैं एक वेल्स परिवारके साथ ठहरा। गृह-स्वामी कृषि-विभागके अधिकारी थे और निरन्तर दौरेपर रहते थे; पहाड़के ऊपर अपने छोटे-से बँगलेमें दूसरे-तीसरे दिन शामको आते और बड़े सबेरे ही फिर निकल जाते। घरमें गृह-स्वामिनी, दश वर्षका लड़का मार्टिन और उनका कुत्ता ही रहते थे। बँगलेकी छोटी-सी बग़ीचीसे नीचे ही सागर-तटकी रेती और उसके पास ही सैलानियोंकी नयी बस्तीसे लगा हुआ आइस्तेद्वदका पण्डाल दीख पड़ता था। इस काव्योत्सवमें जानेके लिए तो मैं आया ही था, लेकिन पण्डालमें जानेसे पहले घर ही पर जो हुआ वह भी उल्लेखनीय जान पड़ता है। जिस बँगलेमें मैं ठहरा था उसके सामने ही एक अवकाश-प्राप्त प्रोफ़ेसर रहते थे जो भारतमें भी रह चुके थे—एक कालेजमें इतिहासके अध्यापकके रूपमें—उनसे भेंट कर आया; फिर दाहिनी ओरके बँगलेके पड़ोसियोंसे भेंट हुई। इनकी कन्याएँ मार्टिनकी सहेलियाँ थीं और गाती थीं। उनसे कुछ वेल्श लोक-गीत और एक प्रार्थना-गीत सुनकर मैंने उनकी माताकी अनुमतिसे उन गीतोंका रेकार्ड भर लिया और लड़कियोंका कौतूहल शान्त करनेके लिए उन्हें सुना भी दिया। यह होते न होते एक अत्यन्त वृद्ध सज्जन वहाँ पहुँच गये और उन्होंने भी रिकार्ड सुननेकी इच्छा प्रकट की। परिचय हुआ; ज्ञात हुआ कि यह उन बालिकाओंके दादा हैं। रेकार्ड सुनकर उन्होंने पूछा कि क्या मैं कोई कविता भी रेकार्ड करना चाहूँगा? मैंने कहा, सम्भव हुआ तो अवश्य। उन्होंने सहज भावसे कहा, "मेरी कविता रिकार्ड कर लीजिए।"

मैं न उन सज्जनके बारेमें कुछ जानता था, न वेल्स भाषाकी कविता

समझ सकता था। पर शिष्टाचार-वश जब मैं उनकी कविता रेकार्ड कर चुका, तब उन्होंने उसका अर्थ भी मुझे समझाया और फिर आग्रहपूर्वक एक पुराना लोक-गीत भी रेकार्ड करा दिया। लोक-गीतकी धुन अच्छी थी, पर उसकी ऊँची तानके लायक बल उनकी बूढ़ी आवाज़में नहीं था। बल्कि गानेके आयाससे जब उनका चेहरा तमतमाकर टमाटर-सा लाल हो आया; और स्वर भी लड़खड़ा गया, तो मुझे चिन्ता भी हुई; उनका उत्साह ही मेरी जबान न बन्द किये रहता तो मैं उन्हें रोक देता। गाना पूरा करके दो-चार मिनट साँस लेकर जब वह चले गये, तब गृह-स्वामिनीने बताया कि तीस वर्ष पहलेके राष्ट्रीय काव्योत्सवमें उन्हींको राष्ट्रकविका आसन दिया गया था। दस-ग्यारह वर्षकी बालिकाओंसे लेकर पच्चासी वर्षके वृद्ध तकमें अपनी भाषाके काव्यके प्रति समान उत्साह मेरे लिए स्फूर्तिप्रद अनुभव था, पर अगले पाँच-छः दिनोंमें इस उत्साहकी व्यापकताके और भी प्रमाण मिले और स्फूर्तिका स्थान एक आश्चर्य-मिश्रित श्रद्धाने ले लिया।

आइस्तेढ्वदका कार्यक्रम छः दिनका होता है, प्रतिदिन सबेरे नौ बजेसे सायंकाल साढ़े-आठतक—बीचमें दो घण्टेका अन्तराल छोड़कर। इस अधिकृत कार्यक्रमके अलावा रातको तीन घण्टे और ऐच्छिक कार्यक्रम भी होता था—अर्थात् प्रतियोगितासे बाहर जो लोग कविता-पाठ, काव्य-गान आदि करना चाहें उनका कार्य-क्रम। इस प्रकार कुल लगभग पचहत्तर घण्टे लगातार काव्य और गायन सुनने वेल्स-भरके लोग एकत्र होते हैं। पुथ्लेलीके उत्सवमें श्रोताओंकी संख्या मुख्य बैठकोंमें बीस हज़ार थी। ध्यान रहे कि समूचे वेल्शकी कुल जन-संख्या बीस लाख है। अर्थात् वेल्श-भाषी जनताका एक प्रतिशत इस उत्सवमें आया था। यदि यह ध्यानमें रखें कि इस राष्ट्रीय उत्सवकी तैयारीमें अनेक प्रादेशिक और स्थानिक प्रतियोगिताएँ और उत्सव होते हैं, तब जाकर इसमें भाग लेनेवालोंका निर्वाचन हो पाता है, तो समझमें आ जायगा कि इसका वेल्शके जीवनमें क्या

स्थान है : प्रत्येक सौमें अधिकसे अधिक दस ऐसे होते होंगे जिन्होंने किसी न किसी सोपानपर आइस्तेड्वदका काव्य-पाठ न सुना हो। वेल्श जातिको 'राष्ट्र' कहाँतक कहा जा सकता है यह विचारका विषय हो सकता है, पर यह उत्सव सच्चे अर्थमें जातीय उत्सव है इसमें कोई सन्देह नहीं, और इस दृष्टिसे यह एक अद्वितीय अनुष्ठान है। और (अपने देशके सन्दर्भको स्मरण रखते हुए) कदाचित् यह भी कहना चाहिए कि इस उत्सवको कोई सरकारी सहयोग या संरक्षण या प्रोत्साहन नहीं मिलता, न उसका सरकारी प्रचार-संस्थाओं द्वारा विज्ञापन होता है, और न उसीके द्वारा सरकारका अनुमोदन या अभ्यर्थन होता है। स्थानीय शासनाधिकारी ('अधीश !') उसकी स्वागत-समितिका अध्यक्ष नहीं होता, न मन्त्री उसका उद्‌घाटन करता है, न दोनोंमेंसे किसीकी पत्नी पुरस्कार-वितरण करती है। उत्सव वास्तवमें वेल्श जातिका उत्सव है और सांस्कृतिक उत्सव है। और उसकी प्रातिनिधिकतामें प्रवासी वेल्श लोगोंका कितना योग रहता है, यह उसके अन्तर्गत 'वेल्श प्रवासियोंके अभिनन्दन' के समारोहसे प्रत्यक्ष हो जाता है : एक-एक विदेशके वेल्श प्रवासियोंको जुलूसमें मंचपर लाया जाता है और स्वागतके उपरान्त विशिष्ट स्थानपर बिठा दिया जाता है।

आइस्तेड्वदमें कई भिन्न-भिन्न प्रतियोगिताएँ सम्मिलित हैं। दो काव्य-रचनाकी—अर्थात् एक प्राचीन रीतिकी कविता और एक मुक्त, यद्यपि वेल्शमें 'मुक्त' का अर्थ है वह कविता जिसमें केवल छन्द और तुकका बन्धन है; प्राचीन पद्धतिमें तो इनके अतिरिक्त और कई प्रकारके नियमोंका निर्वाह होता है। एक प्रतियोगिता गद्यकी, एक काव्य-गायनकी, दो-तीन समवेत-गानकी, जिसमें पुरुष-वृन्द और स्त्री-वृन्द अलग-अलग गाते हैं; फिर विशिष्ट वेल्श वाद्योंके वादनकी, संगीत-निर्देशनकी, नाटक-रचना और अभिनयकी, इत्यादि। इधर उत्सवने जो अधिक व्यापक रूप ले लिया है, उसमें इन सांस्कृतिक कार्योंके आस-पास और भी कई प्रतियोगिताओंका वृत्त बन गया है जिनमें विद्यार्थी-समुदाय भाग लेता है।

उत्सवका सबसे महत्त्वपूर्ण अंग होता है विजेता कवियोंका अभिषेक; प्राचीन पद्धतिके कविको आसन दिया जाता है, और नयी अथवा 'मुक्त' शैलीके कविको मुकुट। निर्णायक-समिति पिछले पुरस्कार-विजेताओं और सम्मानित कवि-समुदायमेंसे चुनी जाती है : समितिका प्रमुख निर्णय सुनाता है जिसमें कविताकी विशद समीक्षा भी रहती है। जिस स्तब्ध एकाग्रताके साथ पुल्लेलीमें बीस हज़ार व्यक्ति इस समीक्षाको सुन रहे थे, और जिस दिलचस्पीके साथ बादमें उन्होंने स्वयं कविताओंकी विवेचना की और निर्णायकोंके निर्णयपर टीका-टिप्पणी की, वह मेरे लिए अपूर्व अनुभव था : और कभी कहीं साहित्य-विवेचनमें वर्ग-निर्विशिष्ट जनका ऐसा एकोन्मुख लगाव मैंने नहीं देखा। वर्ग-निर्विशिष्ट मैं जान-बूझकर कह रहा हूँ, क्योंकि उस जमावमें खेतिहर-किसानसे लेकर विश्वविद्यालयके आचार्यों और कोयला-खदानके कमकरसे लेकर उच्च सरकारी अधिकारीतक सभी तरह-के, और स्कूलके छात्र-छात्रीसे लेकर चौथेपनको आधा पार कर चुकनेवाले सभी उम्रके लोग थे।

आइस्तेद्वदके इस रूपका ऐतिहासिक विकास बड़ा रोचक है। यह नहीं है कि उसमें शासन या अधिकारी वर्गका हस्तक्षेप कभी न रहा हो। बल्कि एक समय तो इसने लगभग सरकारी परीक्षाका ही रूप ले लिया था; गा-बजाकर जीवन-वृत्ति पानेका यत्न करनेवालोंमें पात्रोंकी छाँट करके उन्हें लाइसेंस देना ही इसका उद्देश्य हो चला था! यही गति रहती, तो कवि एक प्रकारका सम्मानित, लाइसेंसधारी मँगता ही रह जाता— 'सम्मानित' इस अर्थमें कि वह बड़े आदमियोंसे बड़ी रकमकी माँग करनेका प्रमाण-युक्त अधिकारी होता!

आइस्तेद्वदका ज्ञात इतिहास हज़ार वर्षसे अधिक लम्बा है : 'प्रमुख कवि'को कुर्सी देनेकी प्रथा तबसे चली आती है। यद्यपि तब 'कुर्सी देने'-का अर्थ था दरबारमें एक विशिष्ट आसन देना, और अब कवि विशिष्ट कुर्सीको अपने साथ घर ले जाता है; और बीचमें कुर्सी केवल एक चाँदीका

छोटा-सा प्रतीक होती थी जिसे वह घर ले आता—और मुकुट भी ऐसा ही प्रतीक मुकुट होता था। बारहवीं शतीमें पहले-पहल शासककी ओरसे एक वर्षकी पूर्व-घोषणाके बाद काव्य-प्रतियोगिताका प्रमाण मिलता है—और यह पूर्व-घोषणा अब अनिवार्य है। 'आइस्तेढ्वद' नामका प्रथम उत्सव पन्द्रहवीं शतीमें हुआ; यह भी स्थानिक शासक द्वारा आयोजित था और इसमें प्रमुख कवि, प्रमुख वादक, तथा प्रमुख गायकको अलग-अलग पुरस्कार दिये गये। काव्य-छन्दोंके विषयमें नये नियम भी इस समय बनाये गये। सोलहवीं शतीमें दो मुख्य आइस्तेढ्वदोंका ऐतिहासिक उल्लेख है। इनमें विजयी कविको एक प्रतीक-रूप कुर्सी, हार्प नामक तार-वाद्यके वादकको चाँदीका छोटा-सा हार्प, 'क्रूथ' नामक गजसे बजाये जानेवाले तार-वाद्यके वादकको वैसा ही चाँदीका क्रूथ, और सर्वश्रेष्ठ गायकको एक चाँदीकी जिह्वा भेंट की गयी थी। यह चाँदीका हार्प अभी तक सुरक्षित है।

सरकारी हस्तक्षेपका प्रमाण इनमेंसे दूसरे आइस्तेढ्वदमें मिलता है। रानी एलिजाबेथने उत्तर वेल्सके बीस अभिजात व्यक्तियोंको राज्यादेश दिया कि गायक अथवा कवि-यशःप्रार्थी सभी व्यक्तियोंकी परीक्षा लेकर उन्हें लाइसेंस दें; और अनधिकारी व्यक्तियोंका जहाँ-तहाँ जाना बन्द कर दें। इस प्रकारके लाइसेंसका कोई नमूना कहीं नहीं मिला है, पर इससे कुछ पहले दिया गया एक लाइसेंस अभी सुरक्षित है जिससे पता चलता है कि उसे पानेवालेको 'कवि-कर्मकी परीक्षामें उत्तीर्ण' और 'अभिजात समाज तथा जन-साधारणसे पुरस्कार चाहने और पानेका अधिकारी' प्रमाणित किया गया था। इस प्रमाण-पत्रपर दो अभिजात व्यक्तियोंके और एक कविके हस्ताक्षर हैं।

अठारहवीं शतीके ऐसे समारोहोंका उल्लेख तत्कालीन पंचांगोंमें मिलता है। वहींसे यह भी पता चलता है कि इनमें पठित काव्यका स्तर सर्वदा बहुत ऊँचा नहीं होता था। एकमें तो यहाँ तक लिखा है कि "पिछले वर्ष हमने जिस कवि-सम्मेलनकी सूचना दी थी उसमें केवल एक योग्य कवि

आया था; ऐसी कोई कविता नहीं पढ़ी गयी जो तृप्तिकर या गम्भीर या मनोरंजक भी हो। फिर भी जिज्ञासु वेल्श लोगोंकी सूचनाके लिए जो भी कचरा काव्य वहाँ पढ़ा गया उसके नमूने हम यहाँ दे रहे हैं।"

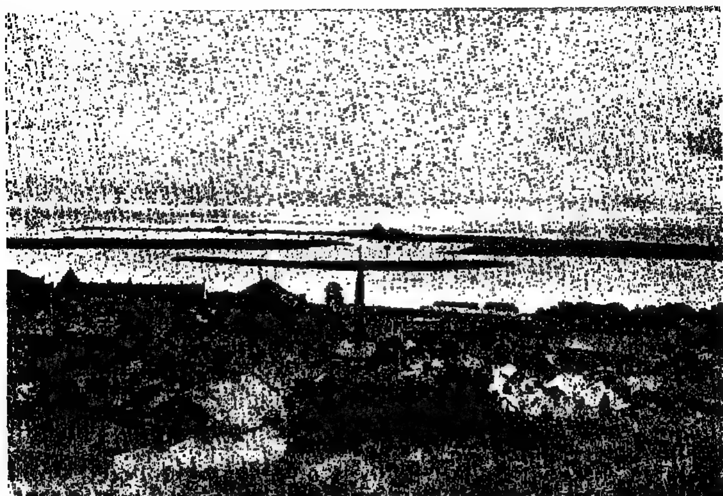
एक जातीय अनुष्ठानका गौरव आइस्तेद्वदको उन्नीसवीं शतीके उत्तरार्द्धसे ही मिला, जबसे उसका संचालन करनेवाली एक स्वतन्त्र 'राष्ट्रीय समिति' बनी। इस राष्ट्रीय समितिकी समवर्ती उल्लेख्य संस्था है 'गोर्सेद' अथवा कवि-परिषद्। परिषद् द्वारा घोषणाके बिना कोई राष्ट्रीय समारोह नहीं हो सकता, और प्रतिवर्ष यह परिषद् आगामी वर्षके उत्सवके स्थान और नियमोंकी घोषणा करती है। इस कवि-सम्प्रदायकी सविस्तार चर्चा यहाँ नहीं हो सकती, पर यहाँ स्वस्ति-वचनके रूपमें इसके मंगलाचरणका ही अनुवाद दिया जा सकता है :

> प्रभु हमें अपना संरक्षण दे,
> और संरक्षणमें शक्ति,
> और शक्तिमें सहानुभूति,
> और सहानुभूतिमें विवेक,
> और विवेकमें सत्‌का विवेक,
> और सत्‌के विवेकमें सत्‌का प्रेम,
> और सत्‌के प्रेममें समूचे जीवनका प्रेम
> और जीवनमें प्रभुका प्रेम—
> प्रभुका, और शिवताका।

कविताके प्रति वेल्श-जनका यह लगाव इतना आश्चर्यजनक इसलिए है कि साधारण समकालीन प्रवृत्तिसे वह इतना भिन्न है। काव्य-प्रेम और संगीत-प्रेम वेल्श अथवा केल्टिक जातिकी स्वभावगत विशेषता है। उनकी भाषाकी नादमयता भी इसके सर्वथा अनुकूल है। भारतमें ब्रज-भाषाके

सहज माधुर्यके बारेमें जैसी किंवदन्तियाँ प्रचलित हैं, कुछ वैसी ही बात वेल्श भाषाकी सहज संगीतमयताके बारेमें कही जा सकती है। और संगीतका यह संस्कार वेल्श भाषाका इतना गहरा अंग है, कि उसकी गहरी छाप वेल्श लोगों द्वारा बोली और लिखी गयी अंग्रेजीपर भी पड़ती है। पिछली शतीमें जेराल्ड मैनली हॉपकिंसकी कविताका जो प्रभाव अंग्रेजी काव्य-रचना और छन्दपर पड़ा, उसका श्रेय वास्तवमें वेल्श भाषाको ही मिलना चाहिए—हॉपकिंसका वेल्श संस्कार ही उसकी अंग्रेजी कवितामें प्रकट हुआ और उसीने हॉपकिंसको छन्द-सम्बन्धी एक नयी दृष्टि दी। हमारी पीढ़ीके डायलन टॉमसका प्रभाव भी उतना ही स्थायी होगा या नहीं, अभी यह कहना भवितव्य-दर्शिताका दावा करना होगा, किन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि वह प्रभाव गहरा और व्यापक हुआ है। अपने समकालीन दूसरे कवियोंसे टॉमसकी कविता सुननेमें कितनी भिन्न है; यह अनुभवसे ही जाना जा सकता है; नहीं तो इसका अनुमान भी कठिन है कि एक ही भाषाके प्रकार, सुननेमें एक-दूसरेसे इतने भिन्न हो सकते हैं।

किन्तु वेल्सकी यह काव्य-चेतना वास्तवमें एक व्यापकतर चेतनाका अंग है। उसे राष्ट्रीय कहा जा सकता, यदि एक ओर यह प्रश्न न उठता कि क्या वेल्सको राष्ट्र कहना संगत है? और दूसरी ओर यह भी कठिनाई न होती कि राष्ट्र कहनेसे एक राजनैतिक इकाई ही सामने आती है जबकि हम एक सांस्कृतिक इकाईकी बात सोच रहे हैं—इतना ही नहीं, एक ऐसी सांस्कृतिक इकाईकी, जिसकी मूल शक्ति उसके नागर रूपमें नहीं बल्कि उसके लोक-रूपमें वास करती है, और जो इस बातको जानती भी है! वेल्सके विभिन्न खण्डोंमें लोक-संस्कृतिकी परम्पराओंकी रक्षाके जो प्रयत्न हुए हैं—निस्सन्देह सरकारी सहायतासे—वे उल्लेखनीय हैं। कार्डिफ़का लोक-संस्कृति संग्रहालय अपने ढंगका एक ही है। स्कैंडिनेवियाके युवा देश भी, जिनकी सांस्कृतिक परम्पराएँ उतनी लम्बी नहीं हैं और जिनकी नागर सभ्यताएँ बड़ी तेज़ीसे लोक-संस्कृतिको अपनेमें मिलाये ले



पुश्‌हेली (वेल्स) का विहंगम दृश्य



सेंट-फैगंस उद्यानमें सीसेका हौज़



आयरलैंडका सागर-तट

रही हैं, लोक-जीवनको यथासम्भव संरक्षण देनेका प्रयत्न करती हैं और उनके लोक-संग्रहालय भी दर्शनीय होते हैं; लेकिन कार्डिफ़का संग्रहालय और संग्रहोद्यान विशेष उल्लेख्य हैं। हम लोग पाँच-छः हज़ार वर्ष पहलेकी संस्कृतिकी चर्चा करते हैं और उपन्यासोंमें तत्कालीन जीवनका कल्पित वर्णन करते हैं; और निस्सन्देह इतनी लम्बी सांस्कृतिक परम्परा गौरवका विषय है। लेकिन दो-तीन सौ वर्ष पहलेका किसान ठीक किस ढंगके झोंपड़ेमें किस ढंगसे रहता था, आजके शहरी भारतवासीको इसका चाक्षुष उदाहरण पानेमें कठिनाई हो सकती है—इसके बावजूद कि हमारे देहातोंमें परिवर्त्तन बहुत कम और धीमी गतिसे हुआ है। और विभिन्न कालोंके स्थापत्य-शिल्पमें क्या परिवर्त्तन होते रहे, इसकी तरफ़ तो मानो हमारा ध्यान ही नहीं गया है—मन्दिरों, महलों और दुर्गोंकी बात मैं नहीं कह रहा हूँ, सिर्फ़ मध्य-वित्त या अल्प-वित्त गृहस्थके घरकी बात कह रहा हूँ। कार्डिफ़के संग्रहालयके उद्यानमें अलग-अलग शतियोंके खेती-घर देखकर बड़ा सन्तोष हुआ। ये खेती-घर 'मॉडेल' या प्रतिरूप नहीं थे; बल्कि भीतरी प्रदेशोंसे उठाकर लाये गये वास्तविक पुराने घर थे। घरोंको ठीक ज्योंका त्यों नये परिवेशमें प्रतिष्ठित करके, उनके भीतर उसी समयके चौकी-खाट, बर्तन-भाँड़े और औज़ार रखे गये थे। हालैंडमें आर्नहेमके उद्यान-संग्रहालय-में भी ऐसा ही प्रयत्न देखा; अन्यत्र इस पैमानेपर तो नहीं।

नागर-जीवनकी ओर लौटना न वांछित है न सम्भव। लोक-जीवनको संग्रहालयकी वस्तु मान लेना, या उसके संरक्षणका दम्भ भरना, उसकी जीवनदायिनी शक्तिका अपमान करना है। इन संग्रहालयोंपर बल देनेका आशय यही है कि इस मूल-स्रोतसे नागर-सभ्यताका सम्बन्ध नहीं टूटना चाहिए। नागर-सभ्यता सब आत्म-चेतन अथवा प्रबुद्ध होती है; लोक-संस्कृतिमें ऐसी आत्म-चेतना या आत्म-बोध नहीं होता। यह अपने आपमें दोष नहीं है; ठीक वैसे ही जैसे कि सुन्दरीको अपने रूपका बोध न होना दोष नहीं है। आवश्यकता इसी बातकी है कि लोक-जनको ग़लत ढंगका

बोध देनेको प्रयत्न न किया जाय; उसे शहरका नक़लची या नक़ली शहरी होनेकी ओर प्रवृत्त न किया जाय बल्कि इसकी सुविधा दी जाय कि वह भीतरी प्रेरणासे ही सहज विकास कर सके। रूपसी रूप-गर्विता न हो, इसमें कुछ भी बे-ठीक नहीं है, लेकिन वह व्यर्थ ही कृत्रिम प्रसाधनोंके आकर्षणमें न खो जाय या उनकी अनुपस्थितिमें अपनेको अधूरा या हीन न समझने लगे, इसके अनुकूल परिवेश उसे देनेकी ओर उन्हें प्रवृत्त होना चाहिए जिनको सभ्यताने उसे उस कृत्रिमतासे इतना परिचित करा दिया है कि अब वह उससे उबर नहीं सकती। लेकिन उससे किसी जोखममें भी नहीं पड़ती।

वेल्सकी भाषा तो मैं नहीं जानता, और उसकी भाषाकी कविता भी नहीं समझता; लेकिन वहाँके बीस हज़ार राष्ट्र-कवियोंके सन्देशका यही अभिप्राय मुझे उपलब्ध हुआ।

नीलमका सागर, पन्नेका द्वीप

ग्रेट ब्रिटेनके संयुक्त राज्यके तीसरे देश, और दूसरे मुख्य द्वीप, आयरलैंडके विषयमें कौतूहल बचपनसे ही था। वहाँकी लोक-कथाएँ पहलेसे पढ़ रखी थीं और अंग्रेजी काव्यसे परिचयके साथ-साथ आयरी काव्यसे जो परिचय हुआ था उसकी विशेषताओंकी अलग छाप मनपर थी। येट्सका प्रभाव अलग था, टेलामेयरका अलग; यह बात अकारण नहीं जान पड़ती थी कि 'अंग्रेजी' कवियोंमें जो दो सबसे अधिक 'कवि' थे दोनों आयरी थे!

क्रान्तिकारी-जीवनमें आयरी विद्रोहियोंकी जो जीवनियाँ पढ़ी थीं वे भी अपनी छाप छोड़ गयी थीं। स्वयं मेरे ऊपर उनका प्रभाव उतना गहरा नहीं था जितना मेरे कुछ साथियोंपर; और मैं डैन ब्रीनकी आत्मकथाको केवल एक रोचक वृत्तान्त मानता था, एक प्रेरणा-स्रोत नहीं। लेकिन मेरे साथियोंमें भी कुछ ऐसे थे जो उस पुस्तकको बाइबलका समकक्ष प्रमाण-ग्रन्थ मानते थे, और यह तो मैं जानता ही था कि हमसे पहले खेवेके षड्-यन्त्रकारियोंमें—भगतसिंह और उनके साथियोंमें—उसका स्थान और भी ऊँचा था। स्वयं मुझे रूसी आतंकवादियोंके वृत्तान्त अधिक उपादेय जान पड़ते थे, और उनको अनुप्राणित करनेवाली नैतिक भावनाएँ अधिक मूल्यवान्। इतना स्वीकार कर सकता हूँ, और जहाँ तक मुझे स्मरण है उस समय भी अनुभव करता था, कि रूसी निहिलिस्ट सम्प्रदायमें हास्यकी बहुत कमी थी और उनके जीवन-प्रेमकी बौद्धिक अतिशयता ही उसे मानो अमानुषिक बना देती थी। दूसरी ओर आयरी स्वभावकी सहज हास्य प्रवृत्ति और विनोदशीलता आयरी क्रान्तिकारी आन्दोलनमें भी प्रति-

बिम्बित थी, और उसमें भाग लेने वालोंके जीवन-प्रेममें एक आकर्षक सहज साहसिकता दीखती थी।

यूरोप गया तो आयरलैंड अवश्य जाऊँगा, यह तो भारतमें भी जानता था। किन्तु ब्रिटेन पहुँचकर वहाँकी राष्ट्रीयताके भीतर विभिन्न जातीयताओंका अनुभव करके आयरलैंडके विषयमें कौतूहल और भी बढ़ गया। पुल्लेलीके राष्ट्रीय काव्योत्सवके बाद वेल्ससे ही आयरलैंड जानेका निश्चय किया। बैंगोरसे लिवरपूल जाकर वहाँके घाटसे रातका स्टीमर पकड़ा और दूसरे दिन सवेरे बेलफ़ास्ट पहुँच गया।

यों तो सबेरे बेलफ़ास्टकी बन्दरगाहमें प्रवेश करनेके बाद ही आयरलैंड पहुँचा; लेकिन वास्तवमें उसकी पकड़में तभी आ गया जब लिवरपूलसे जहाज छूटा! डेकपर जाकर दूर हटती हुई लिवरपूलकी बन्दरगाहको देखनेके लिए खड़ा ही हुआ था कि एक सज्जन पास आकर खड़े हो गये और बातें करने लगे। मैं वार्त्तालापके 'मूड'में नहीं था, लेकिन उन्हें टालना कठिन था। और यह भी नहीं कह सकता कि मैं केवल सहता ही रहा; उन सज्जनकी बातचीत रोचक भी थी और उत्तेजक भी, और थोड़ी ही देरमें उसने बहसका रूप ले लिया! फिर हम लोग रात एक बजे तक विभिन्न विषयोंको लेकर जूझते रहे, साहित्यिक, राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक और कला-सम्बन्धी अनेक क्षेत्रोंकी हमने सैरकी और प्रत्येकमें अलग-अलग तरहके पैंतरे करते रहे। बीच-बीचमें वह सज्जन कहते, "हम आयरी लोग बड़े बातूनी होते हैं," "हम आयरियोंके लिए तो वाद-विवाद ही वह वायुमण्डल है जिसमें हम साँस लेते हैं," "आप सोचते होंगे कि मैं ब्लार्नी*का नमूना पेश कर रहा हूँ, लेकिन असली नमूना तो आपको

* ब्लार्नी : एक आयरी दुर्ग, और उसके भीतर स्थित एक शिला, जिसे चूमनेसे व्यक्ति बातूनी हो जाता है। ऐसे व्यक्तिकी लल्लो-चप्पो भरी बातोंको भी ब्लार्नी कहते हैं।

डब्लिनमें मिलेगा !" इस प्रकार मानो नानूनीगनके लिए क्षमा-याचनाका उनका कर्त्तव्य पूरा हो जाता और वह फिर और बातें करने लगते ! जो हो, उनके कारण यात्रा भी अच्छी कट गयी और कुछ शिक्षा भी मिली।

उत्तरी आयरलैंडको आयरलैंड न मानना कठिन है। पर अल्स्टर और आयरी स्वतन्त्र राज्यको एक ही आयरलैंड मानना और भी कठिन है! वास्तवमें उत्तरके प्रोटेस्टेंट संस्कार उसे स्वतन्त्र राज्यसे कहीं इतने गहरेसे अलग कर देते हैं कि ब्रिटेनसे उत्तरी आयरलैंडकी दूरी गौण जान पड़ने लगती है। वैसे उत्तरी आयरलैंड प्राकृतिक और आर्थिक दोनों दृष्टियोंसे सम्पन्नतर है और उसकी समस्याएँ इतनी विकट नहीं हैं जितनी स्वतन्त्र राज्यकी; फिर (चाहे इस सम्पन्नताके कारण ही) इंग्लैंडसे उसका सम्पर्क अधिक रहा है। उत्तरी आयरलैंडके लोग अपनी वर्तमान स्थितिसे सन्तुष्ट हैं; इस सम्बन्धमें कोई द्विधा उन्हें नहीं है कि एक छोटेसे द्वीपका अंग होकर वे उस द्वीपके स्वतन्त्र राज्यसे सम्बद्ध न होकर दूर ब्रिटेनके पार्लमेंटके अधीन हैं। वास्तवमें यह अधीनता ऐसी है भी नहीं; उत्तरी आयरलैंड अथवा अल्स्टरका अपना अलग पार्लमेंट है, और अल्स्टर-वासी दो पार्लमेंट होनेमें असमंजसका कोई कारण नहीं देखता। वह ऐसा नहीं मानता कि इसके कारण उसकी अधीनता कुछ अधिक हो जाती है बल्कि, जैसा कि विदेशी यात्रियोंको पार्लमेंट दिखानेवाले एक गाइडने मेरे सामने ही लन्दन और मांचेस्टरसे आये हुए कार्पोरेशनके सदस्योंके दलसे कहा था, "आप लोग यह न समझें कि हम आपसे किसी बातमें पीछे हैं, या कि हमारे अधिकार किसी तरह कम हैं। बल्कि एक मामलेमें हम आपसे आगे हैं—हम दो सरकारोंपर अपना गुस्सा निकाल सकते हैं !"

अल्स्टरके लेखक संगठन पी० ई० एन० के कुछ सदस्योंसे वियेनामें भेंट हो चुकी थी; उनके आमन्त्रणपर उनकी समितिके सदस्योंके साथ भोजन किया; स्थानीय पत्रके प्रतिनिधिसे भेंट की और पार्लमेंट भवनका चक्कर लगा लिया; इसके बाद मैंने अपनेको मुक्त समझा कि अल्स्टरके

खुले प्रदेशकी सैर करूँ और आयरलैंडके परम्परागत नाम 'मरकत-द्वीप'की सार्थकताकी पड़ताल करूँ। केवल हरियाली ही इसका कारण नहीं हो सकता क्योंकि हरियाली तो ब्रिटेनके द्वीप-समूहमें सर्वत्र है।

लेकिन यहाँ शायद उस आयरी 'बारह्-मासे' का उल्लेख आवश्यक है जो भारत छोड़नेसे पहले एक आयरी मित्रने इस प्रश्नके उत्तरमें सुनाया था कि कौनसे मौसममें आयरलैंड जाना ठीक होगा। पूरा ब्यौरा तो मुझे याद नहीं है, पर सालके ग्यारह महीने उन्होंने इसलिए अनुपयुक्त ठहरा दिये थे कि उनमें वर्षा बहुत होती है—कभी निरी वर्षा, कभी ओलेके साथ वर्षा, कभी आँधीके साथ वर्षा, कभी बर्फ़के साथ वर्षा, कभी पिघली हुई बर्फ़पर ओले और आँधीके साथ वर्षा और कभी घने कोहरेके साथ थोड़ी-थोड़ी वर्षा जिसके कारण कुछ दीख ही नहीं सकता! इस प्रकार अगस्तका महीना बच गया था—बल्कि उसका भी एक पखवाड़ा; फिर अन्तमें उन सज्जनने हँसकर कहा था कि अगस्तमें जानेपर भी वर्षासे विस्मय नहीं होना चाहिए; केवल यह आशा करनी चाहिए कि दो-एक दिनमें कभी-न-कभी धूप निकलेगी ही!

इसके लिए विशेष आयोजन नहीं करना पड़ा था, किन्तु आयरलैंड पहुँचकर मैंने यह स्मरण अवश्य किया कि मैं ठीक उसी पखवाड़ेमें वहाँ पहुँचा हूँ जो कि आयरलैंडके लिए सर्वोत्तम बताया गया था। इसलिए मेरी जल्दीसे जल्दी अधिकसे अधिक देखनेकी उत्सुकता स्वाभाविक ही थी। उत्तरी आयरलैंडकी साढ़े तेरह लाख प्रजाका तीसरा हिस्सा बेलफ़ास्ट शहर में रहता है और बाकी दो-तिहाई सारे देशमें बिखरा हुआ है, यह देहातको मेरे लिए अधिक आकर्षक बना रहा था।

शामको सरकारी बसके अड्डेपर जाकर मैंने अनेक सम्भाव्य यात्राओं के विवरण-पत्र इकट्ठे किये और रातको उनका अध्ययन करके अगले दिनका कार्यक्रम निश्चित कर लिया। बेलफ़ास्टसे सबेरे ही निकलकर नगरके कुछ मुख्य स्थलोंको देखकर, भीतरी प्रदेशकी झीलें और नदियाँ

देखते हुए उत्तरी सागर-तटतक जाकर, सागरके किनारे-किनारे लौटनेकी योजना थी। इस सागर-तटकी सैरके बाद मैंने आयरलैंडका नाम 'मरकत-द्वीप' न केवल स्वीकार कर लिया बल्कि अपनी ओरसे उसमें इतना और जोड़ दिया कि वह पन्ना नीलमके एक बड़े थालमें जड़ा हुआ है, क्योंकि आयरलैंडके उत्तरी और उत्तर-पूर्वी सागर-तटका सौन्दर्य अद्वितीय है और उत्तरी प्रदेशोंका विशिष्ट प्रकाश उसे और भी रहस्यमय बना देता है।*

यह उत्तर-पूर्वी तट-प्रदेश, अर्थात् एंट्रिमका जिला अपने सौन्दर्यके लिए जितना महत्त्वपूर्ण है, उतना ही अपने पौराणिक सन्दर्भके कारण और प्राग्मानवीय अवशेषोंके कारण। आयरी और स्काटी लोक-साहित्यमें उसका उल्लेख बार-बार आता है; अनेक करुण कथाएँ उससे सम्बद्ध हैं। और इसी प्रदेशके सर्वोच्च शिखर ट्रोस्टानकी छायामें पौराणिक आयरी (गेलिक) कविश्रेष्ठ ओसियनकी क़ब्र है....

उत्तरी सागर-तटका स्पर्श पोर्ट स्टुअर्टपर किया और वहाँसे पोर्ट रश जाकर रुका। ये दोनों स्थान मुख्यतया स्नान करनेवालोंके आकर्षणके हैं। पोर्ट स्टुअर्ट आयरी हास्य-लेखक चार्ल्स लीवरका स्थान रहा। कुछ आगे

---

* 'आयरलैंडके समुद्र-तटपर' शीर्षक कवितामें 'बच्चन' ने लिखा है :

सिन्धुका छिछला-छिछला तीर
अकम्पित नील मुकुर-सा नीर
यहाँ लगता है कोई छोड़
गया है उरकी गहरी पीर!

सागरका 'नील-मुकुर' मैंने देखा, साक्षी हूँ। तीर अधिकतर चट्टानी है, कहीं-कहीं बालुकामय; 'छिछला' तो सागर कहीं-कहींपर है। यों अपने उरकी गहरी पीरको एकाएक छिछले तीरपर छोड़ जानेवालेके हस्त-लाघवका कायल हूँ। पीर नीली भी जरूर होती होगी; तभी छायावादी कविको सारा आकाश उससे भरा दीखता था—'शून्य' होनेके बावजूद!

बढ़कर 'व्हाइट राक्स' नामक स्थान आता है, जहाँसे तट पथरीला और चट्टानी हो जाता है और कई मीलतक ऐसा ही रहता है। थोड़ी देर बाद चट्टानपर बने हुए डनलूस दुर्गपर पहुँच गये। इस दुर्गके अब खंडहर ही रह गये हैं, लेकिन वे भी एक दूसरे युगमें ले जानेके लिए पर्याप्त हैं। सागरके किनारे-किनारे पूर्वकी ओर बढ़ते हुए कुछ मील जाकर हम लोग उत्तर-पूर्व मुड़े। 'जायंट्स काज़वे' नामका स्थान संसारके बड़े अचरजोंमेंसे एक है। किसी सुदूर प्रागैतिहासिक युगमें ज्वालामुखीके तापसे पिघला हुआ पत्थर फिर जमा तो स्फटिक मणिवत् नियमित आकारोंमें; और ऐसे ही नियमित रूप और आकार-प्रकारके हज़ारों प्राकृतिक षट्कोण स्तम्भ यहाँ देखनेमें आते हैं। जान पड़ता है मानो किसी प्राचीन कालमें अतिमानवी आकारकी किसी जातिके श्रमिकोंने यहाँसे सागरके सेतबन्धका आयोजन आरम्भ किया हो, लेकिन काम अधूरा छोड़कर चले गये हों; तभीसे ये असंख्य खम्भे यहाँ पड़े रह गये हों।

जायंट्स काज़वेके पास ही डनसेवेरिक नामक स्थान है, जहाँके दुर्गका उल्लेख मिस्रके यात्री प्टालेमीके ईसवी दूसरी शतीमें किया था।

चट्टानी तटसे टकराते हुए महासागरका एक आकर्षण था। किन्तु यहाँपर तटका अपना आकर्षण भी अद्भुत था, और दर्शक सोच नहीं पाता था कि सागरकी ओर देखे अथवा तटकी ओर!

कई घण्टे यहाँ बिताकर आगे बढ़े। व्हाइट पार्ककी छोटी-सी सुन्दर खाड़ी, जो कि सौन्दर्यके कारण राष्ट्र द्वारा सुरक्षित है, कैरिक-आ-रीड जहाँ एक छोटे-से द्वीपतक झूलना पुल डाला गया है; और दूर हटकर राथलिन द्वीप—जहाँ स्काटलैंडके राबर्ट ब्रूसको निर्वासित किया गया था—(मकड़ीको जाल बुनते देखकर नया उत्साह पानेकी काव्य-प्रसिद्ध घटना यहीं इसी निर्वासनमें घटी थी)—और कुछ आगे बढ़कर बालीकासलका छोटा क़स्बा। यहाँसे राथलिन द्वीप तो दीखता ही था, लेकिन सुदूर क्षितिजपर स्काटलैंडके तटकी धुँधली-सी रेखा भी दीखती थी। बाली-

कासलसे फिर पहाड़ी प्रदेश आरम्भ होता था। यहाँतक पहाड़ दाहिनेको थे और सागर बायेंको, लेकिन यहाँसे बढ़कर दाहिनेको भी पहाड़ आ गये और सागर उनकी ओट हो गया। 'लुप्त हो जानेवाली झील' के पाससे गुजरते हुए कर्गेनडलमें हम लोग फिर सागर-तटपर आ गये और यहाँसे घूमती बलखाती हुई क्रमशः दक्षिण-पूर्वको बढ़ती हुई सड़क बराबर सागर-तटके साथ ही चलती रही। यहाँसे लेकर लॉर्नतक, जहाँ आइलैंडमाजी प्रायद्वीपकी नोक तटवर्ती सड़क और खुले सागरके बीच आ जाती है, प्रायः तीस मीलकी यह सड़क केवल सुन्दर ही नहीं है बल्कि आयरलैंडके जीवनमें ऐतिहासिक महत्त्व भी रखती है। प्रायः सवा सौ वर्ष पहले, विकट दुर्भिक्ष-के कालमें सहायता-कार्यके रूपमें इस सड़कका निर्माण आरम्भ किया गया था। खड़िया पत्थरका यह सागर-तट कई स्थलोंपर अद्भुत रूप ले लेता है और कहीं-कहीं छोटे-छोटे द्वीप भी बना देता है।

लार्नसे व्हाइटहेड तक सड़क माजी प्रायद्वीपकी ओट रहती है और व्हाइटहेडसे निकलकर दक्षिण-पश्चिमको मुड़ जाती है क्योंकि यहींसे वह तंग खाड़ी आरम्भ हो जाती है जिसे बेलफ़ास्ट झील कहा जाता है। व्हाइटहेड पहुँचते-पहुँचते रात हो गयी थी, लेकिन उससे हम दर्शकोंकी विशेष क्षति नहीं हुई क्योंकि इसके बाद दिनके प्रकाशमें देखनेको कम रह गया था बल्कि रातका प्रकाश ही अधिक दर्शनीय था। बेलफ़ास्ट झीलमें खड़े सैकड़ों छोटे-छोटे जहाजों और खाड़ीके दोनों किनारोंके प्रकाश, अनेक ज्योति-बिन्दु और रेखाएँ बनाते झलमला रहे थे। दिनके परुष प्रकाशमें बन्दरगाहोंके दृश्य बहुत भद्दे दीखते हैं; सन्ध्याका रंगीन आकाश ही उन्हें सुन्दर बनाता है क्योंकि वह क्षिति-रेखाके नीचेकी कुरूपताओंको रहस्यमय धुँधलकेमें डुबा देता है और ऊपर आकाशको चित्रमय कर देता है। फिर रातमें, जब क्षिति-रेखाके ऊपरका चित्र भी धुँधला पड़ जाता है, तब ऊपर तारक-नक्षत्रोंके और नीचे विद्युत्के नानाविध प्रकाश-पुंज एक नया चित्र आँक देते हैं। इसी क्षण-क्षण परिवर्तित चित्रको देखते हुए रात दस

बजे हम लोग बेलफ़ास्टके अड्डेपर पहुँचे; यहाँसे सभी घरके बुद्धू अपने-अपने घरोंको गये, और मैं अपने रैन-बसेरेमें जा टिका।

लौटकर अल्स्टरके विषयमें तरह-तरहकी सूचनाओंका संग्रह करता रहा। शिकायतके लिए दो सरकारोंकी सुविधाका उल्लेख तो कर ही चुका हूँ—शिकायत करनेकी आज़ादी लोकतन्त्रकी बुनियादी आज़ादियोंमेंसे एक है! लेकिन यह भी मालूम हुआ कि पश्चिमी लोकतन्त्रवादके विकासमें अल्स्टरका और भी महत्त्वपूर्ण योग रहा है। अमेरिकाको उसने तेरह राष्ट्रपति दिये! राष्ट्रपतियोंके अलावा ऐसे भी बहुतसे व्यक्ति, जिनके नामका उल्लेख इतिहासोंमें नहीं होता लेकिन जो जीवनको प्रभावित करते हैं, अमेरिका-प्रवासी अल्स्टरवासी ही हैं। अमेरिकाका पहला दैनिक समाचार-पत्र जान डनलपने निकाला था, जो सन् १७६६ में स्ट्राबेनके क़स्बे में अपना छोटा-सा प्रेस छोड़कर अमेरिका चला गया था। उसका मुद्रण-यन्त्र अब भी स्ट्राबेनके प्रेसमें सुरक्षित है। अमेरिकी 'स्वाधीनताकी घोषणा' भी जान डनलपने ही छापी थी।

आयरलैंडकी देनका प्रतिदान अमेरिका अपने ढंगसे करता रहा है। 'अपने ढंगसे' इसलिए कि वह अल्स्टरको नहीं मिलता है बल्कि आयरीय स्वतन्त्र राज्यकी प्रेरणाओंका मूल रहा है। आयरी क्रान्तिकारी बहुधा अमेरिकामें शिक्षा पाये हुए व्यक्ति रहे, या अमेरिकी आदर्शोंसे प्रेरित रहे। डी वैलेरापर भी अमेरिकी प्रभाव बहुत गहरा रहा, और चुनाव आन्दोलनोंके समय विरोधी-दलके लोग बहुधा उन्हें 'प्रवासी अमेरिकी' कह देते थे।

दूसरे दिन सबेरे 'एंटरप्राइज़' एक्सप्रेससे चलकर बेलफ़ास्टसे डब्लिन पहुँच गये। पश्चिमके कम ही शहरोंके अन्तिक प्रदेश इतने कुरूप और गन्दे हो सकते हैं जितना डब्लिनका अन्तिक जो स्टेशन पहुँचनेसे दो-तीन मील

पहलेसे आरम्भ हो जाता है। हावड़ा जाते हुए जैसी बस्ती देखनेको मिलती है वह किसी हद तक तुलनीय हो सकती है। स्टेशनसे होटल जाकर सामान से छुट्टी पाकर मैं तत्काल बाहर निकल पड़ा। पहले ही दिन होटलके आस-पासके कुछ रास्ते चुनकर प्रत्येकको दो-दो मील पैदल चलकर देख आना—पैरिससे ही नगर-परिचयका यह मार्ग मैंने अपनाया है और बराबर पाता रहा हूँ कि यह सर्वोत्तम तरीक़ा है। यों पैरिसका ढाँचा कुछ जटिल है; डब्लिनका केन्द्र नदीके किनारे ही बसा है और नदी तथा उसके पुल उसकी मुख्य शोभा हैं। शोभाको देखना चाहिए, सूँघना नहीं चाहिए! डब्लिन की नदी लिफ़ीको आयरी लोग 'स्निफ़ी लिफ़ी' कहकर मानो उसकी तीव्र गन्धसे तटस्थ हो जाते हैं—न उससे कष्ट पाते हैं न उसके लिए अपनेको उत्तरदायी मानते हैं—लेकिन प्रवासी अजनबी इस नामपर हँसकर भी वैसा नहीं कर सकता। यों यह गन्ध सब गन्दगीकी ही हो, ऐसा भी नहीं है। इसके किनारे गिन्नेसका जो शराबका कारखाना है, कुछ उसकी भी देन है। लेकिन दुर्गन्ध तो दुर्गन्ध है।....

बाज़ार घूमकर, दो-एक कहवाघरोंमें झांककर और एकमें संक्षिप्त भोजन करके, पुस्तकोंकी कुछ दुकानोंकी पड़ताल करके क्रमशः राष्ट्रीय संग्रहालयमें पहुँच गया। डाइरेक्टर टाम मैकग्रीवी इतिहासविद् तो हैं ही; आयरलैंडके बौद्धिकोंमें उनकी गिनती होती है और उनके नाम एक बन्धु का परिचय-पत्र भी था। उनसे मिला तो बातचीत कला या साहित्य तक ही सीमित नहीं रही। नेहरू परिवारसे भी उनका परिचय रहा है। नेहरू और डी वैलेराके सम्बन्धमें चर्चा हुई तो उन्होंने कहा, "नेहरू और डी वैलेरा दोनों एक-दूसरेको पसन्द करते हैं। बल्कि दोनोंका स्वभाव एक-दूसरेसे मिलता है।" फिर थोड़ा हँसकर उन्होंने जोड़ दिया, "लेकिन डी वैलेरामें धीरज कुछ अधिक है, है न?"

संग्रहालयके 'राष्ट्रीय चित्र' देखकर बाहर चला आया—ये राष्ट्रीय चित्र आयरलैंडके राष्ट्रीय आन्दोलनके ऐतिहासिक चरित्रों और ऐतिहासिक

घटनाओंके चित्र हैं, या दूसरे शब्दोंमें राष्ट्रका चित्रमय इतिहास हैं। फिर चित्र-गन्धा लिफ़ीका किनारा और शहरकी बड़ी सड़क ओडॉनेल रोड पेरिसमें सेन नदीके किनारे भी कुछ-कुछ ऐसे ही हैं, लेकिन डब्लिनके वातावरणमें कुछ अधिक आत्मीयता और हार्दिकता है।

दिन छिपते होटलको लौटा तो एक आश्चर्य मेरी प्रतीक्षा कर रहा था। कर्नल फ़िलराय, जो युद्ध-कालके सैनिक जीवनमें मेरे कर्नल थे और अवकाश लेनेके बाद अब आयरलैंडमें अपनी छोटी-सी ज़मींदारी देखते थे, वहाँ मेरी प्रतीक्षा कर रहे थे। मैंने उन्हें अपने डब्लिन पहुँचनेकी सूचना देते हुए लिखा था कि उनके गाँव भी आऊँगा; लेकिन वह डब्लिन यह निश्चय करके आये थे कि मुझे रात वहाँ नहीं रहना है और उनके साथ ही मोटरमें उनके गाँव ओल्डकासल जाना होगा। "होटलके मैनेजरसे मैंने बात कर ली है और तुम्हें रात ठहरनेके पैसे नहीं देने पड़ेंगे।" इसके बाद मुझे और कुछ कहनेको नहीं था। उनकी व्यवहार-बुद्धिसे मैं भारतसे ही परिचित था।

पचास मीलसे कुछ अधिककी यात्रा कोई डेढ़ घण्टेमें समाप्त करके हमलोग रातको उनके घर पहुँच गये। अन्धकारमें रास्तेके आस-पासका दृश्य बहुत अधिक नहीं दीखता था यद्यपि ऊँची-नीची हरी भूमिका धुँधला आभास मिलता रहा और कहीं-कहीं दूरपर पानी भी चमक गया। किन्तु दूसरे दिन सबेरे उठकर पाया कि आयरलैंडका रूप कुछ बदल गया है—अबसे परिदृश्य नहीं बल्कि उसमें बसनेवाले व्यक्ति ही प्रधान हो गये हैं। अगले तीन दिनोंमें यद्यपि आस-पास घूमा काफ़ी, तथापि यह घूमना किसी-न-किसीसे मिलने जानेका ही आनुषंगिक था; और प्रत्येक यात्राका परिणाम कुछ दृश्योंका नहीं बल्कि कुछ व्यक्ति-चित्रोंका ही संग्रह होता था। अपनी डायरीमें उन दिनोंकी नोंधसे आज स्मृतिके सम्मुख किसी स्थल अथवा प्रदेशके सैरे नहीं आते बल्कि एक छोटी-सी पोर्ट्रेट गैलरी ही आती है····

किलरायकी जमींदारी बड़ी नहीं है; बल्कि इतनी छोटी है कि उन्हे जमींदार न कहकर किसान ही कहना चाहिए। मकई, आलू और कुछ सब्जियोंकी खेतीके अलावा गोशाला-मुर्गीघर ही आयके मुख्य साधन हैं। गोशाला अत्यन्त साफ़-सुथरी और वैज्ञानिक ढंगसे बनी हुई है और उसे 'ए ग्रेड' का लाइसेंस प्राप्त है। किलरायके साथ उनकी जमीनें देखता हुआ उनके कर्मचारियों और खेतिहर मज़दूरोंसे मिला।

जॉन चारेके गट्ठे गाड़ीमें लाद रहा था। परिचयके समय मेरे साथ हाथ मिलानेके बाद वह धीरेसे किलरायसे बोला—"आप ठीक जानते हैं कि आपका मेहमान मार्शल बुल्गानिन नहीं है?" (यह संकेत मेरी दाढ़ीकी तरफ था।)

निक गायोंकी देखभाल करता है। जॉन जहाँ मार्शल बुल्गानिनकी छवि पहचानता था वहाँ निक अपने डाकके टिकटपर छपे हुए एयरे (आयरी स्वतन्त्र राज्य) के नक़्शे तकको नहीं पहचानता था—उसके लिए किसी नक़्शेका कोई अर्थ नहीं था, भूमि वही वास्तविक है जिसे छूआ जा सके, मुट्ठीमें भरकर उठाया और सूँघा जा सके और पैरोंसे रौंदा या फावड़ेसे चीरा जा सके....

बुढ़ऊ बाल्फ़के दाँत नहीं थे, लेकिन उससे खुली हँसीको कोई बाधा नहीं पहुँचती थी। वह खेत जोतता था और मछली पकड़ता था। क्रान्तिकारी आन्दोलनोंमें वह भाग ले चुका था और कोस्टेलोके दलके साथ जेल काट चुका था। इकहरी पर सुगठित देह; सीधा तनकर खड़ा होनेपर भी वह नाटा दीखता था क्योंकि उसकी ऊँचाई पाँच फ़ुटसे दो-एक इंच ही अधिक होगी। हाथ मिलानेके बाद किलरायसे बोला, "आपके बन्धुसे मिलकर मुझे बड़ा गर्व है। मैं नहीं जानता था कि हिन्दुस्तानमें ऐसे बाँके डील-डौलके लोग होते हैं!" (यह मेरी शरीर-सम्पत्तिकी साक्षी नहीं, केवल बुढ़ऊ बाल्फ़के भारत-ज्ञानका परिचय है!) बाल्फ़के पास अपनी भी थोड़ी-सी

भूमि है, किन्तु उसपर काम इतना अधिक नहीं रहता; इसीलिए वह किलरायकी जमीनोंकी चौकीदारी करता है।

आयरियोंकी वाचालताकी बात तो बहुत सुन रखी थी लेकिन उनकी चतुराई या व्यवहार-कुशलताकी बातें इतनी नहीं सुनी थीं। परिचितोंमें केवल कर्नल किलरायमें ही मोलतोल करनेमें वैसी व्यवहारिक पटुता देखी थी जो किसान चरित्रमें पायी जाती है। कलकत्तेमें एक बार एक अंग्रेज़ी प्रेससे छपाईका वार्षिक ठेका पक्का करते समय प्रचलित भारतीय दरके अपने ज्ञानके आधारपर ठेकेकी रकमको काफ़ी कम कर चुका था; तब किलरायने, जो प्रेस या छपाईके बारेमें लगभग कुछ नहीं जानते थे, कहा था, "इससे आगे मैं हाल करता हूँ"—प्रेसकी ओरसे बात करनेवाले डाइरेक्टर उत्तरी इंग्लैंडके थे जहाँके लोग सौदा करनेमें उतने ही पटु माने जाते हैं जितने आयरलैंडके किसान! किलरायने जब आयरी ढंगसे बड़ी-बड़ी बातें आरम्भ कीं तब प्रेसका डाइरेक्टर उन्हें यह कहकर चिढ़ाने लगा "आप यह आयरी ब्लार्नी मेरे ऊपर आजमाना चाहते हैं, लेकिन मैं भी नार्दर्नर हूँ!" किलराय रेट कुछ और कम करना चाहते थे; पर घटानेके लिए कोई समुचित युक्ति तो दे नहीं सकते थे। सहसा उन्होंने बड़ी फुर्तीसे अपने हाथपर थूककर डाइरेक्टरका हाथ पकड़कर हिलाते हुए कहा, "यह लो, अब तो सौदा पक्का हो गया और मुहर भी लग गयी," और एक रक़म बता दी जो डाइरेक्टरकी बतायी हुई दरसे काफ़ी कम थी। आगे डाइरेक्टरको कुछ बोलनेका उन्होंने मौक़ा ही नहीं दिया। थूकसे प्रतिज्ञापर मोहर लगानेकी प्रथा पश्चिमके कई प्रदेशोंके किसान-समाजोंमें प्रचलित है—थूक ज़बानका प्रतीक बन जाता है और इस प्रकार यह क्रिया 'ज़बान देने'का पर्याय हो जाती है!

डाइरेक्टर अचकचा कर किलरायकी ओर देखता रहा और वह जल्दी से यह कहकर बाहर निकल आये कि "बस, रेट तो पक्का हो गया; बाक़ी बात मेरे यह सहकारी आपसे कर लेंगे।"

मेरे लिए भी यह घटना कुछ कम विस्मयकारी नहीं थी; मैं चुपचाप साथ बाहर चला आया। बाहर आकर किलरायने हँसकर कहा; "क्यों, कैसी रही! मेरे छपाईके बारेमें कुछ न जाननेसे फ़ायदा हुआ न?"

तो स्वयं किलरायकी किसान-बुद्धिसे तो मैं परिचित था। लेकिन नहीं जानता था यह बुद्धि केवल किसानकी नहीं, आयरी प्रतिभाकी देन है। आयरी प्रतिभाकी विशेषता मैं एक विशेष प्रकारका मनोरंजक गावदीपन ही जानता था, जिसके कारण आयरी आँखें मूँदकर शीशेके सामने खड़े होकर यह देखना चाहता है कि वह नींदमें कैसा दीखता होगा; या रातको चौंककर दियासलाई जलाकर देखता है कि उसने सोनेसे पहले बत्ती बुझा दी थी या नहीं।....

लेकिन मेरे चित्र-संग्रहके आयरी बिल्कुल दूसरे प्रकारके हैं।

'क' ने गाय चरानेके लिए एक खेत किरायेपर लिया है। यह तय हुआ है कि प्रति गाय वह पाँच शिलिंग प्रति मास देगा। 'क' ठीक एक-सी दो काली गायें ख़रीदकर लाता है। एकको वह उस खेतमें दिनमें चराता है, दूसरीको रातमें; लेकिन खेतके मालिकको वह केवल एक गायकी चराई देता है क्योंकि दिनमें भी और रातमें भी एक ही काली गाय तो वहाँ चरती देखी जाती है!

'ख' ने दो खेत लिये, एक एक गाँवमें और दूसरा आठ मील दूर दूसरे गाँवमें। अपनी भेड़ोंके छोटेसे झुण्डको वह एक दिन एक खेतसे हाँककर दूसरे खेत तक ले जाता और दूसरे दिन वापिस ले आता। रास्तेमें कभी कोई टोकता तो वह उत्तर देता, "वह जो मेरी दूसरी जमीन है न, वहीं अपनी भेड़ें चराने ले जा रहा हूँ।" लेकिन वास्तवमें आठ मीलकी यात्रामें भेड़ें जहाँ-तहाँ दूसरोंकी बाड़ोंमें मुँह मारती हुई जातीं और इसी प्रकार लौटतीं। भेड़ोंका पेट इस लूट-पाटसे भरता; दोनों ओर खेतोंको अच्छी खाद मुफ़्तमें मिल जाती! इस प्रकार आरम्भ करके अपनी बचतसे 'ख' ने अभी हाल २५० एकड़ जमीन खरीद ली है!

श्रीमती 'हे' विधवा हैं। अब डब्लिनमें रहती हैं, लेकिन पहले देहात-में उनकी जमींदारी थी, तब उसीके बीच एक बँगलेमें वह रहती थीं। दंगे और अशान्तिके समय एक बार रातको उनके घरमें डाकू आये और पिस्तौलें दिखाकर उनसे एक काग़ज़पर हस्ताक्षर करवा ले गये जिसके अनुसार उन्होंने ज़मीनपर अपना सब अधिकार छोड़ दिया था। वह डब्लिन जाकर रहने लगीं जहाँ उनका कोस्टेलोसे परिचय हुआ जो अनन्तर राष्ट्रीय नेता और प्रधान मन्त्री भी हुए। डब्लिनमें प्रतिष्ठा और धाक जम जानेके बाद श्रीमती 'हे'ने एक दिन अपनी ज़मीनकी खबर लेनेका निश्चय किया। देहाती मेलेका दिन था; बड़े तड़के दो ट्रकभर सिपाही उनकी ज़मीनोंपर पहुँचे और जो पशु-धन उन्हें उनकी ज़मीनपर कहीं भी मिला—गायें, बछड़े, घोड़े आदि—सबको लादकर सिपाही अपने साथ मेलेमें ले गये जहाँ उन्हें नीलाम कर दिया गया। नीलामसे होनेवाली आय डब्लिनमें मालकिनके नाम जमा करा दी गयी। अनन्तर भूमि भी आस-पासके अच्छे समर्थ और दबंग किसानोंमें बाँट दी गयी। बुड़ऊ वाल्फ़को भी इसी प्रकार ज़मीन मिली थी।

लोख़ शीलन नामकी छोटी झीलके किनारे मेजर 'ई'का सुन्दर बँगला है। फाटकसे प्रवेश करते ही उनके बाग़बानीके शौक़के प्रमाण मिलने लगते हैं। मेजर साहब भी ज़मींदार अर्थात् किसान हैं; फ़ौजसे अवकाश ले चुके हैं और अपने पड़ोसियोंकी तरह कुछ सनकी हैं, यद्यपि बड़े मिलनसार और हँसमुख। उनके माता-पिता दोनों जेल काट चुके थे। उनके जेल जानेका कारण रोचक है और सूचित करता है कि मेजर साहबका सनकी स्वभाव वंश-परम्परागत है।

पिता आयरी स्वातन्त्र्यके समर्थक थे और उसके आन्दोलनोंमें भाग लेते थे। उसके लिए जो उत्तेजक प्रदर्शन होते थे उन्हींके प्रसंगमें इन्होंने लन्दनमें हाउस आफ़ कामन्सकी दर्शक गैलरीसे भाषण देना आरम्भ कर दिया था और रोके जानेपर भी बोलते ही रहे थे; और इस प्रकार

गिरफ़्तार हो गये थे। अद्‌भुत संयोग था कि उन्हें गिरफ़्तार करनेवाला पुलिसमैन उनका भूतपूर्व सहपाठी था !

माता स्त्रियोंके मताधिकार आन्दोलनमें भाग लेती थीं। श्रीमती पैंकहर्स्टके फ़ेमिनिस्ट आन्दोलनकी वह कार्यकर्त्री थीं। पतिके साथ हाउस आफ़ कामन्समें वह भी मौजूद थीं। पतिके भाषणका उद्देश्य तो एक सनसनीदार प्रदर्शन करना था ही; यह तो जानी हुई बात थी कि वह गिरफ़्तार हो जावेंगे। उनके गिरफ़्तार होनेका कोई गुस्सा पत्नीको नहीं था। लेकिन सहसा यह पहचानकर कि गिरफ़्तार करनेवाला स्वयं आयरी है, और पतिका स्कूलका सहपाठी रहा, उन्हें बहुत क्रोध आया और उन्होंने पुलिसमैनको थप्पड़ मार दिया ! इस प्रकार दम्पति जितने प्रदर्शनके लिए गये थे उससे अधिक सनसनीदार प्रदर्शन करके हाउससे निकले !

पहाड़ियोंके पार, चाँदनीके कारण रहस्य-मण्डित प्रदेशको देखते हुए मिस्टर 'एम'के घर पहुँचे। उनसे शामको मिलनेकी बात थी। घर पहुँचने पर मालूम हुआ कि वह घरमें नहीं हैं; अपनी ज़मींदारीके दूसरे हिस्सेमें जानवरोंको देखने गये हैं। हम भी गाड़ी मोड़कर वहीं पहुँच गये—घरपर ही प्रतीक्षा करनेकी अतिशय औपचारिकता अनावश्यक समझी गयी। मिस्टर 'एम' मिले तो बड़े तपाकसे; लेकिन स्पष्ट ही कुछ उद्विग्न भी थे। मेरे साथीके पूछनेपर मालूम हुआ कि उद्विग्नताका कारण यह है कि उन्होंने अपने फ़ार्मके पचास सूअर बेचे हैं और रातमें माल गाहकको देना होगा।

पशु-धनकी बिक्री साधारणतया दिनमें होती है। और माल तो अनिवार्यतया दिनमें लिया-दिया जाता है क्योंकि उसमें कई तरहका धोखा हो सकता है और पशु-धनका व्यापार करनेवालोंमें ऐसे धोखेको धोखा नहीं, केवल चतुराई समझा जाता है। यह प्रवृत्ति तो सारी दुनियामें है और आयरलैंडकी परम्परा साधारण किसान-परम्परासे अलग नहीं होती बल्कि उसका निचोड़ होती है। हम लोगोंने इस बातपर आश्चर्य प्रकट किया कि गाहक माल लेने रातको आ रहा है। 'एम' थोड़ा-सा सकुचाये। फिर एक

झेंपती-सी मुसकराहटके साथ बोले, "तुम तो पड़ोसी हो—तुमसे क्या छिपाना। डब्लिनके अमुकको जानते हो न ? वही सौदा करने आया था। उसके साथ एक और आदमी भी था; मेरे ख्यालमें असल गाहक वही था। दोनोंने जानवर देख लिये और दाम पूछे; मैंने बता दिये। उन्होंने मोल-तोल नहीं किया; बोले, ठीक है, हम इससे ड्योढ़ा दाम देंगे लेकिन मालकी डेलिवरी रातको दो बजे लेंगे। अब मैं इसीकी तैयारीमें हूँ—रातको डेढ़-दो बजे उनके ट्रक आवेंगे।"

मेरे साथीने रहस्यमय ढंगसे हंसकर कहा, "तब तो अच्छा सौदा है, और गाहक स्थायी हो जाय तब तो क्या कहना है!"

हम लोग 'एम'की जमीनें और पशु-शालाएँ देखते हुए इधर-उधरकी बातें करते रहे और रातमें लौट आये। लौटते हुए इस अद्भुत व्यापारका भेद मुझे बताया गया। 'डब्लिनके अमुक' एक ट्रांसपोर्ट कम्पनीके मालिक हैं; उनके ठेले देशभरमें चलते हैं। ठेलोंके अलावा यों भी उनकी बहुत चलती है क्योंकि राजनीतिकोंमें उनके बड़े-बड़े दोस्त हैं। और पुलिसके तथा दूसरे अधिकारियोंमें भी उनकी धाक है। स्पष्ट ही इस आधी रातके सौदेका मतलब यह था कि माल रातों-रात आयरी स्वतन्त्र राज्यकी उत्तरी सीमाके पार पहुँचाया जायगा और उत्तरी आयरलैंडमें उसकी खपत होगी। कृषिकी पैदावार और पशु-धनके निर्यातपर आयरी स्वतन्त्र राज्य और उत्तरी आयरलैंड दोनोंकी ओरसे रोक है। इसलिए ऐसा व्यापार बहुत लाभदायक हो सकता है, क्योंकि आयरी स्वतन्त्र राज्यमें पशु बहुत सस्ते मिल सकते हैं। मुझे याद आया कि अल्स्टरमें इस सीमा-प्रदेशीय चोर-बाजारीकी और उसपर कड़ी निगरानीकी चर्चा सुनी थी। अब समस्याके प्रति दोनों सरकारोंके रवैयेमें भेद स्पष्ट हो गया। आयरी स्वतन्त्र राज्यमें कानूनी स्थिति और वास्तविक स्थितिका यह अन्तर केवल सीमा-प्रदेशीय आयात-निर्यात तक ही सीमित नहीं है बल्कि बहुतसे क्षेत्रोंमें देखा जाता है। कानून कुछ और है; व्यवहार कुछ और; इसके लिए कोई विशेष

निश्चित नहीं जान पड़ता कि इस दूरीको मिटाया जाय या नियन्त्रित किया जाय। वास्तवमें प्रजाकी साधारण राजनीतिक चेतना इस दूरीको न केवल सहनेको तैयार है बल्कि सहज भावसे स्वीकार करती है; उसे साधारण लोक-व्यवहार या दस्तूरका अंग मानती है। बल्कि कह सकते हैं कि उसने इसकी भी कुछ मर्यादाएँ बना रखी है कि सिद्धान्त और व्यवहारमें कितना और कैसा अन्तर होना है और होना चाहिए! शायद इसके न होनेपर ही उनकी स्थिति कुछ असामंजस्य-भरी जान पड़ेगी! सरकार, सुना है, इसे बदलनेका उत्कट प्रयत्न कर रही है, पर स्पष्ट है कि जनताकी उदासीनता—बल्कि प्रतिकूलता—के रहते वह अधिक सफल नहीं हो सकती।

तरु-विहीन किन्तु हरी पहाड़ियाँ····मीलों तक पहाड़ियोंका ऊँचा-नीचा प्रदेश, जिसमें मानव नहीं दीखता, जीव-जन्तु भी नहीं दीखते और प्रायः रातको प्रकाश भी नहीं दीखता; लेकिन बहुधा हवाकी आवाजें सुनाई देती हैं, कभी कनबतियों जैसी दबी हुई और कोमल, कभी चीत्कारों-सी तीखी···· या वर्षाके स्वर सुनाई देते हैं—ऊपर मेघोंका गर्जन, और नीचे कभी पानीपर पानीकी चोट तो कभी घास-फूलोंकी पंखुड़ियोंसे छूकर सहसा चुप-सा हो जानेवाला बौछारका स्वर····यही प्रदेश वास्तवमें आयरलैंडका वह प्रदेश है जिसमें वहाँकी दर्द-भरी लोक-कथाएँ जन्म लेती हैं, उसका लोक-संगीत अपनी करुणा-भरी तानें आविष्कृत करता है; और जिसमें आयरी लोक-जीवनके गहरे अन्ध-विश्वास पनपते हैं। क्योंकि इन्हीं निर्जनोंमें प्रेतिनियाँ रोती हुई घूम सकती हैं, परियाँ असावधान अकेले यात्रीपर जादू कर सकती हैं; वनदेवियाँ भेड़ चरानेवाले युवक-युवतियोंको भटका सकती हैं····वास्तवमें इन प्रदेशोंमे पहाड़ियोंपर छायी हुई हरियाली भी सच्ची हरियाली न होकर एक छलना है। एक तो वह निरन्तर रंग बदलती रहती है; दूसरे वह वास्तवमें घासकी हरियाली भी नहीं है। एक दिनमें भी

भोर, दिन, दोपहर और शामके प्रकाशके साथ उसका रंग बदलता है, और ऋतुओंके साथ भी उसमें आश्चर्यजनक परिवर्तन होते हैं। गहरे और हल्के हरेसे लेकर पीले, भूरे, सफ़ेद, नीले, काशनी, ऊदे, बैंगनी, प्याज़ी, गुलाबी, तरबूज़ी, लाल और उनाबी तक सभी तरहके रंग वह लेती है; इन्हीं रंगोंकी कभी स्पष्ट और कभी धुँधली, कभी ठोस और कभी पारदर्शी झाइंयाँ और रंगतें वह दिखाती है····उसकी हरियाली घासकी हरियाली नहीं है; कहीं घास है तो कहीं काही; कहीं सूखे पत्थरोंके ऊपर छायी हुई हेदर नामकी पुष्पित झाड़ी तो कहीं काहीके नीचे छिपी हुई सड़न और दलदल····इसी हरियालीमें कहीं कोई ठोकर खाकर गिर सकता है तो कहीं सहसा धँसकर असहाय हो सकता है; कहीं सुन्दर गन्ध-पुष्प पा सकता है तो कहीं भीतर-ही-भीतर जीर्ण होकर कोयला हो गये वनस्पति-तत्त्व जिनके टुकड़े काट-काटकर ईंधनकी तरह जलाये जा सकते हैं। हम जानते हैं कि खनिज कोयला वास्तवमें प्राचीन कालकी वनस्पतियाँ हैं जो धरतीके नीचे दबकर जीर्ण होती रही हैं और फिर शिलित हो गयी हैं; लेकिन इन पहाड़ोंकी हरियाली बिना दबे ही जीर्ण होती रहती है और उससे जलाने लायक तत्त्व पानेके लिए गहरे खोदना ज़रूरी नहीं है, उसीके टुकड़े काटकर जलाये जा सकते हैं।* 'कोयला भई न राख' वाली बात मनुष्योंके अन्तस्तलके बारेमें कही जाती है, लेकिन यहाँ उसका स्थूल रूप देखा जा सकता है।

मैं अपनेको अन्ध-विश्वासी नहीं मानता हूँ। घरकी याद किसी भी प्रवासीको सता सकती है, फिर वह घर शहरमें हो या देहातमें; पहाड़ीपर हो या तलहटीमें; नदीके किनारे हो या जंगलके छोरपर। लेकिन इस विशेष प्रकारके प्रदेशकी याद जिन्हें सताती है वे फिर उससे निस्तार नहीं पा सकते; उनके लिए या तो यहीं लौट आना आवश्यक होता है, या फिर

---

* दलदल प्रदेशके इस 'कोयले'को 'पीट' कहते हैं।

वे भीतर-ही-भीतर घुलते ही जाते हैं जैसे यहाँकी हरियाली भीतर-ही-भीतर जल जाती है। मैंने इस प्रकार अकारण और अविरोध घुलते जानेवाले लोगोंको देखा है। लौटनेके सिवा दूसरा इलाज इस रोगका मैं नहीं जानता; जिनके लिए लौटनेका रास्ता खुला नहीं है उनका रोग असाध्य ही मानता हूँ। जो रोग अकारण होकर भी असाध्य है, उसे रोग कहना वैज्ञानिक या बुद्धि-संगत है और जादू कहना निरा अन्ध-विश्वास, यह दावा कैसे किया जाय? हम अगर तर्कके लिए ऐसा कहते भी हैं तो शायद भीतर-ही-भीतर कहीं स्वयं इस बातको पूरी तरह नहीं मानते। इसीलिए आयरलैंडकी लोक-कथाएँ इतने गहरे और हृदय-द्रावक प्रभाव रखती हैं।....*

ओल्डकासलसे तीसरे पहर चलकर डनसैनी पहुँचा, जो प्लंकेट परिवारकी परम्परागत जागीर है। सुप्रसिद्ध वृद्ध लेखक और नाटककार लार्ड डनसैनी यहींके हैं; बल्कि यह जागीर उन्हींकी है। किन्तु इधर अति-वृद्ध हो जानेके कारण उन्होंने जागीर अपने पुत्रको सौंप दी है और लन्दनमें रहते हैं। उनके कुछ काव्यमय नाटक तो कालेज-जीवनमें ही पढ़े थे; लेख और आत्मकथा पीछे पढ़ीं। उनके पुत्र रैंडल, जो अब उत्तराधिकारी हैं, सेनामें मेरे साथ थे—घुड़सवार सेनासे टैंक कोरमें आकर वह उत्तरी अफ्रीकामें रहे थे और वहाँसे बदलकर असममें आये थे जहाँ उनसे मेरा परिचय हुआ था। शामको उनके साथ उनकी जागीरकी सैर की, रातको भोजन किया और देर रातमें डब्लिन लौट आया। दूसरे दिन स्वतन्त्र राज्यकी

* ऐसा ही अकारण घुलना दूसरे देशोंमें भी देखा जाता है जहाँ ऐसे प्रदेश होते हैं; भारतके घुमन्तू गूजरों और अन्य पहाड़ी जातियोंमें इसके उदाहरण मिलेंगे, और उनकी लोक-कथाओंमें इसके अनेक करुण उल्लेख भी।

हवाई सर्विस एयर लिंगसके विमानसे लन्दन पहुँच गया। आकाशसे एक बार फिर नीलमके सागरसे घिरे हुए इस बहुत बड़े पन्नेका एक छोर देखा और उसके नामका अनुमोदन किया; फिर बलात् ध्यान उधरसे हटाकर आगेकी ओर मोड़ लिया, जहाँ अभी और यात्रा है, और देश हैं; दूसरे लोक-जीवन और संगीत है और दूसरे पर्वत, दूसरी झीलें, दूसरा निर्जन सन्नाटा····



धर्म-विश्वासोंकी गोधूली

रामलोटनको जब दिन छिपेके बाद भुतहे पीपलके तलेसे जाते हुए डर लगता है और झुटपुटेमें भयावनी छायाकृतियाँ दीखती हैं, तो वह लोहेको छूता है और निर्भय हो जाता है। यह कहना कठिन है कि उसका डर अधिक निर्मूल है या कि डर काटनेका उपाय। लेकिन इसमें सन्देह नहीं कि लोहे और भूत-प्रेत या परियोंका वैर, मानव जातिके बहुत पुराने और बहुत फैले हुए विश्वासोंमें-से एक है। इस अन्ध-विश्वासका मूल उद्भव एक ही रहा, या कि समूची मानव-जाति किसी एक प्राक्कालीन वनौकस यूथसे ही उत्पन्न होकर संसार-भरमें फैल गयी, ऐसी कोई अटकल प्रस्तुत करना मेरा काम नहीं है। बुद्धिवादी यह भी कह सकते हैं कि जब-से मानवने लोहेके अस्त्र बनाना सीखा और उसके सहारे वन-जन्तुओंसे सुरक्षा प्राप्त की, तभीसे लोहेकी शक्तियोंमें यह विश्वास भी रूढ़ हो गया। किन्तु लोहेसे पहले ताँबेके अस्त्र भी कई जगह हुए, उससे पहले पत्थरके शस्त्र और अस्त्र काम आते रहे—किन्तु ताँबे या पत्थरकी चमत्कारी शक्तिमें ऐसा विश्वास कहीं नहीं पाया जाता।

जो हो। आयरी उपकथाओंमें परियोंके जादूसे बचनेके लिए लोहे-का उपयोग लोक-विश्वासका एक अभिन्न अंग है। परियों द्वारा उड़ाकर किसी मानवेतर लोकमें ले जाया जाना परियोंकी कहानियोंका एक साधारण अंग होता है। यूरोपके अन्य देशोंकी परियोंकी भाँति आयरी परियाँ भी भूतलसे नीचे किसी पाताल-लोककी गुफाओंमें बसती हैं, और जिन्हें ले जाती हैं वहीं ले जाती हैं। यहाँ प्रचलित कहानियोंमें अक्सर ऐसे चतुर कथानायकोंका वर्णन मिलता है जिन्हें जब परी-लोकमें ले जाया गया तब

उन्होंने परी-महलके सिंहद्वारके नीचे कहीं लोहेकी एक कील या आलपिन गाड़ दी, जिसके प्रभावसे सिंहद्वार बन्द नहीं हो सका और लौटनेका रास्ता खुला रह गया।

घरोंके द्वारपर घोड़ेकी नाल टाँगनेका कारण उसका नाल होना ही नहीं है, बल्कि लोहेकी होना भी है। घरके भीतर गर्भवती स्त्रियाँ सिरहाने लोहेकी छुरी या अन्य वस्तु रखती हैं, और माना जाता है कि इससे माता और शिशु दोनों सुरक्षित रहते हैं।

प्राचीन अन्ध-विश्वासोंमें, जिन्हें धर्म-विश्वासोंकी गोधूली-बेलाकी अर्द्धनिरूपित श्रद्धाके प्रारम्भिक संकेत माना जा सकता है, किसी भी चमत्कारी तत्त्वके दो पहलू होते हैं। जिससे सुरक्षा मिलती है, उसीसे डरना भी होता है; जो वांछित होता है उसीको दूर भी रखना होता है, जिसका आकर्षण जितना ही सहज होता है उसका उतना ही कड़ा निषेध किया जाता है। देवता ही परम अदृश्य और अस्पृश्य होते हैं। वास्तवमें विश्वासकी यह उभयमुखता प्राचीन मानवकी भोली होते हुए भी स्वस्थ दृष्टिका लक्षण है। चमत्कारका आधार शक्ति है; शक्ति नैतिक भावनासे परे है, अर्थात् अच्छे काममें भी लग सकती है और बुरेमें भी। इसलिए उसके सभी पक्षोंको नियन्त्रित रखना ही श्रेयस्कर है। आचार और अभिचारकी सीमा-रेखा बहुत सूक्ष्म है। अभिचारी कब स्वयं अपने तन्त्रका शिकार हो जाये, कब उसकी भेजी हुई कृत्या स्वयं उसीको ग्रसने न लौट आये, क्या ठिकाना!

लोहेकी शक्तिके विषयमें भी यह उभयमुखी विश्वास सर्वत्र पाया जाता है। बाइबलके प्राचीन अंशमें जब मूसाको आदेश मिलता है कि "यदि तू मेरे लिए पत्थरकी वेदी बनाता है तो तू उसे पत्थर काटकर नहीं बनायेगा, क्योंकि जिस पत्थरको तूने औजारसे छुआ वह भ्रष्ट हो गया है," तब लोहेका निषेध ही इंगित है—यद्यपि ग्रन्थमें लोहेका नाम नहीं लिया गया है। भारतमें भी प्राचीनकालमें राजाका वस्त्र काटकर सिया

नहीं जाता था बल्कि (काठ के) करघेपर ही बुना जाता था। इसमें एक ओर यह भाव भी है कि राज-वस्त्र कर्तरीसे छिन्न अथवा सूचीसे भिन्न नहीं होना चाहिए क्योंकि अखण्डित वस्त्र ही राजाकी अखण्डित शक्तिके अनुरूप हो सकता है; दूसरी ओर यह भी कारण था कि लोहेके स्पर्शसे ही वस्त्र दूषित हो जाता है। विकलांग व्यक्ति राजा नहीं हो सकता था, इसका भी ऐसा ही दोहरा कारण था। लोहेकी शक्तिका (या छूतका) एक रूप यह भी था कि किसीको लोहेकी बनी हुई कोई चीज दे देनेपर, पानेवालेको दातापर कोई जादुई अधिकार मिल जाता था।* आयरलैंडकी परियोंकी कहानियोंमें बहुधा ऐसा उल्लेख मिलता है कि परियाँ, या टोना करनेवाली स्त्रियाँ, अपने शिकारसे लोहेकी कोई चीज उधार माँगती हैं—जैसे हाँड़ी या चिमटा इत्यादि।

आयरलैंडका कोई भी ज़िला ऐसा न होगा जिसका परियोंसे सम्बद्ध लोक-साहित्यका अपना भंडार न हो। चट्टानी सागर-तट और क्षुपविहीन हरी पहाड़ियोंके प्रदेश विशेष रूपसे परियोंकी लीला-भूमि रहे हैं। सागर-तटकी कन्दराएँ सभी उनसे आवासित हैं और उनके पास आना-जाना जोखिमसे ख़ाली नहीं है। और हरी पहाड़ियोंमें तूफ़ानी रातोंमें परियोंके अभागे बन्दियोंको चीख़ते-कराहते किसने न सुना होगा!

ऐसे बन्दियों या बन्दिनी स्त्रियोंकी अनेक कहानियोंमें, स्थानीय अलंकरणमें बहुत अन्तर पाया जाता है। किन्तु अलंकृतियोंको अलग करके एक सामान्य रूप अथवा अभिप्रायकी खोज करें तो वह रूप कुछ इस प्रकार होता है : कोई युवती सागर-तटपर घूमती हुई अथवा पहाड़ी पगडण्डीसे जाती हुई अचानक लापता हो गयी। लम्बे अरसे तक कहीं उसका कोई चिह्न नहीं मिला। फिर एक बार उतना ही अकस्मात् उसके पति अथवा

---

* वन-धान्य पवित्र हैं, और हलसे जोती हुई भूमिका अन्न व्रतमें ग्राह्य नहीं है, इस धारणाका सम्बन्ध भी क्या लोहेकी छूतसे नहीं है?

प्रेमीने उसे एक झुरमुटके पास अकेली बैठे हुए देखा। पूछनेपर स्त्रीने बताया कि वह टोनेसे बँधी है, और परियोंको छोड़कर नहीं जा सकती : किन्तु मुक्तिका एक उपाय है। उसे मालूम हुआ है कि एक रातमें—जो प्रायः अगली पूर्णिमाकी रात होती है—परियाँ उसे लेकर कहीं अन्यत्र जाने वाली हैं। जिस मार्गसे परियोंका लश्कर जायेगा वह उसे मालूम हो गया है। यदि उसका पति (अथवा प्रेमी) ठीक समयपर निर्दिष्ट स्थान-पर खड़ा रहे, और उसके जाते समय एक विशेष वृक्षकी छड़ीसे उसके घोड़े को छू दे, तो टोना कट जायेगा और वह मुक्त हो जायेगी। (परियोंके घोड़ेकी नाल नहीं होती यह बताना तो अनावश्यक है। कहानीके जिन रूपोंमें परियोंका शिकार स्त्री न होकर पुरुष होता है, उनमें प्रायः ऐसा भी संकेत मिलता है कि वह बिना नालके घोड़ेपर सवार होकर परियोंके प्रदेशसे जा रहा था और इसीलिए उनका जादू उसपर चल गया।)

पति निर्दिष्ट स्थान और समयपर पहुँचता है, किन्तु लश्करको देखकर घबरा जाता है और छड़ी उसके हाथसे छूट जाती है। लश्कर बन्दिनीको लेकर आगे बढ़ जाता है। अनन्तर रातमें उसका चीत्कार सुनाई पड़ता है। दूसरे दिन खेतमें जहाँ-तहाँ रक्तके छींटे या ऐसे दूसरे चिह्न देखे जाते हैं जिनसे अनुमान हो जाता है कि परियोंने अपने बन्दीके प्राण ले लिये। और कभी चिह्न कोई नहीं मिलता, लेकिन चाँदनी रातोंमें (या जैसी भी वह रात थी वैसी रातोंमें) चीखें प्रायः सुनाई पड़ती हैं।

यह विश्वास कहाँसे आया ? कोई कहते हैं, यह उस समयका अव-शेष है जब एक बलिष्ठ आक्रमणकारी जाति दूसरी जातिकी स्त्रियोंका हरण करके ले जाती थी। कोई यह भी अटकल लगाते हैं कि आक्रमणकारी जातिमें स्त्रियोंकी संख्या बहुत कम होनेके कारण स्त्री-अपहरण उनके लिए अस्तित्वका प्रश्न बन गया था।

वह होगा। चोरीसे शराब लाने और ले जानेवाले लोगोंको जो अति-रिक्त संख्यामें जिन्न-भूत और परियाँ दीखती थीं, उसका कारण भी बुद्धि-

संगत हो सकता है—कि वे शराबकी ढुलाई केवल लादकर न करते रहे हों ! ऐसे चोर-व्यापारियोंको छकानेके लिए जो घुड़सवार जिन्न उनका पीछा किया करते थे, उन्हें भी चोरोंकी भय-स्फीत कल्पनाकी सृष्टि मान लिया जा सकता है। जिन्न लोग रातको किसानोंके घोड़े चुरा ले जाते थे और उन्हें रात-भर सरपट दौड़ानेके बाद थकी-हारी और मुँहसे झाग गिरती हुई अवस्थामें वापस रख जाते थे। अचम्भा नहीं कि ये जिन्न भी वास्तवमें चोर-व्यापारी रहे हों जिन्होंने इस अन्ध-विश्वासको बहुत सुविधा-जनक पाया हो !

किन्तु उस शक्की तबीयतके किसानकी कहानीका हम क्या करें, जिसने रातको तबेलेमें ताला डालकर पहरेपर कुत्ते बिठा दिये थे ! क्योंकि रातको खिड़कीके नीचे शोर सुनकर वह जागा तो नीचे खड़े जिन्न सरदारने उससे कहा, "तुमने हमारी चौपाया सवारीपर रोक लगा दी है, तो हम देखना चाहते हैं कि दुपाया सवारीसे काम चल सकता है या नहीं ?"

यह कहकर उसने शक्की किसानकी पीठपर काठी कस ली, और उसे हाँकता हुआ रातभर जिले-भरमें दौड़ाता रहा और सवेरे उसीकी देहरीपर छोड़ गया। बुद्धि-वादियोंसे पूछिए, शायद इसका निष्कर्ष वे यह निकालेंगे कि अगर जिन्न आपके घोड़े सैरके लिए ले जाना चाहें तो उन्हें ले जाने दीजिए !

नियाघ झीलके मछुओंमें एक और कहानी भी प्रचलित है। झीलके किनारेके नरसलोंमें परियाँ विहार कर रही थीं, और नरसलोंके अँखुए तोड़कर उनसे छोटे-छोटे घोड़े बना रही थीं। एक मछुएने उन्हें देख लिया, और ललकारकर कहा, "एक घोड़ा मेरे लिए भी बना दो !" परियोंकी अगुआने उसे बताया कि घोड़े तो और नहीं हैं किन्तु एक साँड़ है जिसकी वह चाहे तो सवारी कर सकता है। मछुएने मान लिया और साँड़पर सवार होकर परियोंके साथ हो लिया।

परियोंकी अगुआने उसे चेतावनी दी कि वह चाहे जो कुछ देखे-सुने, अपना मुँह न खोले।

रात-भर घुड़सवार परियाँ और साँड़-सवार मछुआ झीलके किनारोंपर विचरते रहे। भोरसे पहले क़ाफ़िला वालिनडेरी नदीके किनारे पहुँचा तो परियोंके घोड़े अबाबीलोंके झुण्डकी तरह नदीके पार फाँद गये। मछुएने भी साँड़को एड़ दी; साँड़ भी पार कूद गया। तब मछुएसे न रहा गया और साँड़का गला थपकते हुए उसने कहा "शाबाश! साँड़की ऐसी कूद कभी नहीं देखी थी!"

उसका यह कहना था कि परियाँ, घोड़े और साँड़ सब लापता हो गये, केवल मछुए-राम नदी पार कीचमें औंधे-मुँह पड़े रह गये! नदीका यह भाग अब भी 'साँड़-कूद' कहलाता है।

क्या यह भी मेंढककी कूदको देखकर पगहा तुड़ाकर भाग निकलने वाली कल्पनाकी सृष्टि है? अँग्रेजीमें नर मेंढकको 'बुल-फ़ाग'—साँड़ मेंढक कहते भी हैं!

उत्सव-सम्बन्धी आयरी अन्ध-विश्वास अपना अलग स्थान रखते हैं। अन्ध-विश्वासोंकी परम्पराका अनुसन्धान करने हम नहीं निकले हैं, केवल आयरी लोक-परम्परामें उनके अद्यतन स्थानके कुछ नमूने-भर दे रहे हैं। नहीं तो ब्रितानी द्वीप-समूहके विश्वासोंकी तुलना ही लम्बे अनुसन्धानका विषय हो सकती है।

ईसाई 'बड़ा दिन', क्रिस्मस, ईसाइयतसे कहीं पुराना है। (होली भी पौराणिक हिन्दू धर्मसे कहीं अधिक पुरानी है।) रोमिक आक्रमणसे पहले ब्रिटेनमें जो सूर्योपासक ड्रूइड बसते थे, उनके अयनोत्सवका ही ईसाई रूप क्रिस्मस हुआ। इस रूपान्तरमें ड्रूइड उत्सवके साथ रोमिक जातियोंका अयनोत्सव ('शनि-उत्सव') भी मिल चुका था जब उसपर ईसाई मतने यीशूके जन्मकी कथाका आरोप कर दिया। आयरलैंडमें क्रिस्मसके ईसाई उत्सवका महत्त्व बहुत पुराना नहीं है। उसका परम्परागत अनुष्ठान 'कमान' नामक एक खेलसे होता था, जिसे गुल्ली-डण्डेका एक रूप माना जा सकता है। इस लचकदार डण्डेका नाम ही 'कमान' था—न मालूम

इस शब्दकी व्युत्पत्ति कहाँसे है, और फ़ारसी शब्द 'कमान' से इसका कोई सम्बन्ध है या नहीं।

'कमान' के खेलमें प्रतियोगी दलोंमें कितने खिलाड़ी हों, इसकी कोई सीमा नहीं थी, न यही आवश्यक था कि दोनों दल लगभग समान हों!

इसी शीतकालीन ऋतु-उत्सव अथवा अयनोत्सवका दूसरा अंग और भी रोचक था। दूसरे दिन लोग टोली बाँधकर रेन पक्षीके शिकारको निकलते थे। रेन खंजनसे मिलता-जुलता छोटा-सा पक्षी होता है और यहाँकी किंवदन्तीके अनुसार वह 'भगवान्‌की मुर्ग़ी' होता है। शिकार करनेवाली टोलियोंमें कुछ लोग विदूषककी पोशाकें पहनते थे, कुछ पुआल और वल्कल, और कुछ स्त्री-वेश धारण करते थे। अधिकतर लोगोंके हाथमें लकड़ीकी तलवारें होती थीं। पूरी टोलीका रूप कुछ-कुछ वैसा ही अनुमान किया जा सकता है जैसा कि उत्तर भारतके देहातोंमें होलीके अव-सरपर देखी जानेवाली टोलियोंका होता है। और कदाचित् दोनोंका मूल विश्वास भी मिलता-जुलता ही रहा। क्योंकि इसमें सन्देह नहीं कि टोलियों में पुरुष और स्त्री वेश-धारी लोगोंका भाग लेना, काठकी तलवारों या छड़ियोंका प्रयोग, और 'भगवान्‌की मुर्ग़ी' के शिकारका प्रतीक, सभी उर्व-रता-सम्बन्धी आदिम विश्वासोंके प्रतिबिम्ब हैं—उर्वरता भूमिकी भी और भूमि-सुता नारीकी भी।

ऐसा माननेका कारण है कि सभी धार्मिक पर्व मूल रूपमें ऋतूत्सव रहे—प्राकृतिक शक्तियों और परिवर्तनों, अथवा कृषि-जीवनके कर्म और उपकर्मोंका शोक और उल्लास उनमें प्रतिबिम्बित होता रहा। जहाँ प्रकृति का विलास मानवके अनुकूल रहा, वहाँ उसने आनन्द मनाया; जहाँ वैसा न रहा, वहाँ उसने अपनेको सान्त्वना दी, या प्राकृतिक-तत्त्वोंको अपने अनु-कूल बनानेके लिए उपचार या अभिचार किये—तन्त्र-मन्त्र और जादू-टोने का आसरा लिया।

आयरलैंडमें विशेष रूपसे ऐसा हुआ हो, यह बात नहीं। श्रद्धाके विकासका सर्वत्र यही क्रम रहा, क्योंकि यही संस्कृतिके विकासका क्रम है। इतना ही है कि वहाँ अब भी ऐसे अवशेष मिलते हैं जिनके सहारे विकासकी यह क्रिया देखी और समझी जा सके, जैसे कि भारतके बहुतसे प्रदेशोंमें भी ऐसे अवशेष मिलते हैं। प्रजातन्त्रके साथ समाजका ही नहीं, विश्वासों और श्रद्धाओंका भी जो समानीकरण हो रहा है उसके कारण शीघ्र ही ऐसी परिस्थिति आ जायेगी कि अध्ययनके लिए ऐसी सामग्री दुर्लभ हो जावे या उसपर ऐतिहासिक पूर्वग्रहोंका आरोप हो जावे। इसका भी एक उदाहरण आयरलैंडसे दिया जा सकता है। वहाँका परम्परागत नव-वर्ष पहली नवम्बरको होता था। कटनीके बाद हर्षपूर्वक नये कृषि-कर्मका उपक्रम किया जावे, यह स्वाभाविक है। इसीलिए कृषि-वर्षका आरम्भ, उत्तर शरत्कालमें होना संगत है—कमसे कम उत्तरी देशोंमें—और क्योंकि यह हर्षोत्सव कटनीके बादका है, इसलिए इसके साथ पुआलके अलावका सम्बन्ध भी स्वाभाविक है। भारतमें कृषि-वर्षका आरम्भ होलिकोत्सवसे और कहीं दीपोत्सवसे होता है। वैसे ही आयरलैंडमें 'सौएन' अथवा पहली नवम्बरका नव-वर्षोत्सव पहाड़ियोंपर अलाव जला कर मनाया जाता है। किन्तु कैथोलिक मतावलम्बी आयरलैंडमें लड़कोंसे यह प्रश्न पूछनेपर, कि अलाव क्यों जलाये जाते हैं, इस उत्तरपर आश्चर्य नहीं करना चाहिए कि 'प्रोटैस्टेंट धर्म-भ्रष्टोंकी हड्डियाँ जलाई जा रही हैं!' यह प्राचीन अन्ध-विश्वासपर नये ऐतिहासिक पूर्वग्रहका आरोप है।

हमने धर्म-विश्वासोंकी गोधूलीकी बात कही थी—आधुनिक सन्दर्भमें जब गौएँ शहरसे दूर, बिजलीसे जगमग डेरियोंमें दुही जाती हैं, और आँगनमें गायकी बजाय मोटर रँभाती है, तब गोधूलीका कोई अर्थ नहीं गिना जाता है। फिर भी जैसे आदिम विश्वास नये पूर्वग्रह ओढ़ लेते हैं, वैसे ही पुरानी शब्दावली भी नये अभिप्राय ओढ़ती चलती है!

बीसवीं शतीका गोलोक

बाईस घण्टेमें मुझे प्रायः आठ सौ मीलकी यात्रा करनी है। बिजलीके इंजिनसे चालित रेलगाड़ीके लिए ३७ मील प्रति घंटेकी औसत रफ़्तार बहुत अधिक नहीं है, लेकिन इन आँकड़ोंका उल्लेख यही बतानेके लिए कर रहा हूँ कि आरामसे रेलगाड़ीमें बैठ जानेके बाद, इतनी लम्बी यात्राकी बात सोचकर समय काटनेके उपायोंके बारेमें सोचना स्वाभाविक हो जाता है। यह तो ठीक है कि नया देश है—मैं बहुत-सा समय खिड़कीसे बाहर झाँकनेमें बिताऊँगा ही—और यहाँ सब रेलें बिजलीसे चलती हैं इसलिए धुएँकी भी चिन्ता नहीं है। लेकिन बाईस घंटे बाहर ताकते रहना तो असम्भव है। इस यात्रामें प्रायः बाईसों घंटे दिनका प्रकाश रहेगा, फिर भी! मैं स्टाकहोमसे उत्तर, ध्रुवप्रदेशकी ओर दौड़ा जा रहा हूँ, मध्य जूनका मौसम है जब ध्रुव-मण्डलमें चौबीसों घण्टे दिन रहता है। स्टाकहोममें प्रायः दो घण्टेकी रात रहती है। लेकिन वहाँसे पाँच बजे चलकर 'रात' होते न होते तो मैं उस सीमाके और निकट पहुँच जाऊँगा जहाँ रात होती ही नहीं।

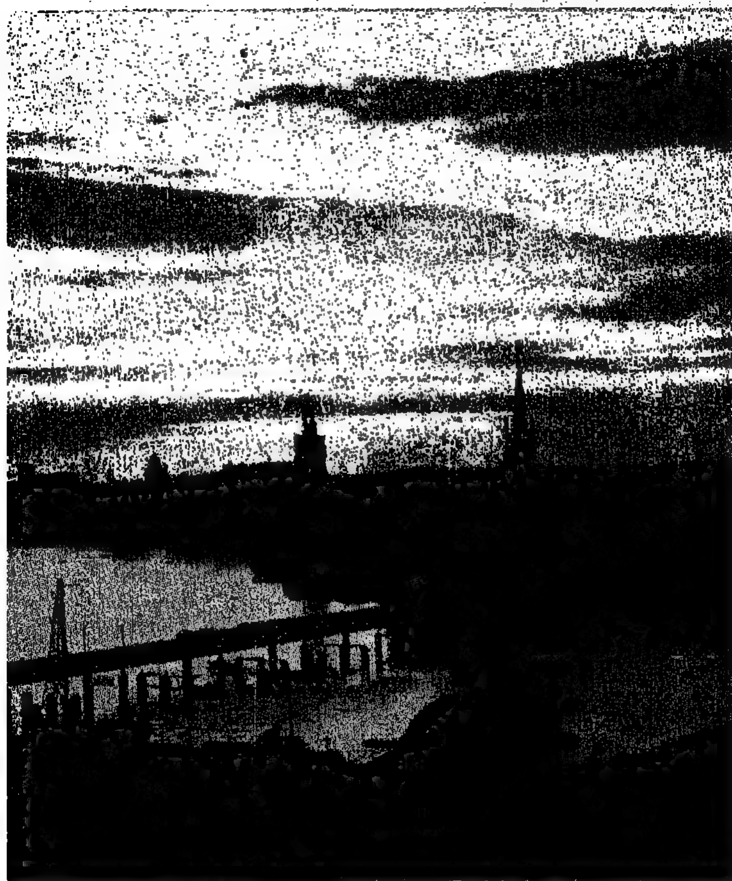
अपने साथ स्वीडनके सम्बन्धमें जो परिचय-पुस्तकें रख ली थीं, उन्हें उठाकर उलटने-पलटने लगा। आरम्भमें ही जो आँकड़े दिये गये थे उनसे ज्ञात हुआ कि स्वीडनकी कुल भूमिका आधेसे अधिक (५४.५ प्रतिशत) वन-भूमि है और प्रायः १२ प्रतिशत गोचर-भूमि या चरागाह। देशकी आबादीका घनत्व प्रति वर्गमील ४३ जन है। दूध और मक्खनकी खपत प्रति व्यक्ति क्रमशः २१० सेर और ११ सेर वार्षिक है, अर्थात् औसतसे प्रत्येक व्यक्ति प्रतिदिन ९ छटाँक दूध और १/२ छटाँक मक्खनका सेवन करता है। क्रीम और पनीर आदि इससे अलग हैं।

स्वाभाविक था कि इन आँकड़ोंके आधारपर मैं एक आधुनिक गोलोककी कल्पना करने लगूँ जिसमें असंख्य काम-धेनुएँ मुक्त भावसे वन-प्रदेशों और हरियालियोंमें विचरण करती फिरती हैं, और जहाँ-जहाँ उनके पैर पड़ते हैं वहाँ समृद्धियाँ पनप उठती हैं। सुना था कि सात आकाशोंके पार जो गोलोक है उसमें कभी अँधेरा नहीं होता, इससे उत्तरी स्वीडनमें भी उत्तरायणके दिनों गोलोककी कल्पना करना और भी स्वाभाविक था।

मैं कभी पुस्तकोंके पृष्ठ उलटता हुआ और कभी बाहरके बदलते हुए दृश्य देखता हुआ अगले दिन तीसरे पहर अपने लक्ष्यपर पहुँच गया। आबिस्कोका 'टूरिस्ट केन्द्र' यद्यपि था यथानाम ही, तथापि उसकी सब व्यवस्था विद्यार्थियोंके हाथमें थी जो उन दिनों ग्रीष्मावकाशके कारण इधर-उधर घूम रहे थे और अपने भरण-पोषणके लिए ऐसे स्थानोंकी व्यवस्थामें आवश्यकतानुसार परिश्रमका दान देते थे। बड़े डाइनिंग-रूममें, जिसमें बेटर नहीं थे और स्वयं-सेवाका ही विधान था, जहाँ-तहाँ दूध और दहीके भरे हुए जग रखे थे। होटलमें रहनेवाले इच्छानुसार पानी, दूध अथवा दही पी सकते थे—जब, जितनी बार, जितना चाहें।

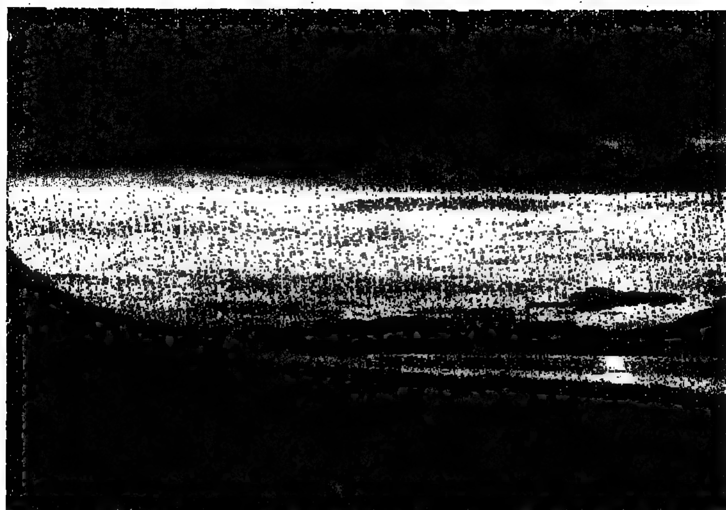
आधुनिक गोलोककी कल्पना इससे और पुष्ट हो आयी। लेकिन जगमे दूध ढालते समय सहसा ध्यान आया कि इतनी लम्बी यात्रामें, जिसका कमसे कम आरम्भिक अंश हरियालीके प्रदेशमेंसे गुज़रा था, मैंने कहीं भी गाय या बैल नहीं देखा। यह कैसा गोलोक है जिसमें गाय अदृश्य रहती है?

आबिस्कोमें तो नहीं, पर वहाँसे स्टाकहोम लौट जानेके बाद दक्षिणी स्वीडनकी यात्रामें मैंने इस विषयमें जिज्ञासा प्रकट की थी। यह विशेष रूपसे इसलिए कि गोचर प्रदेश मुख्यतया दक्षिणी स्वीडनमें ही है। जिज्ञासा शान्त करने लायक उत्तर तो वहाँ भी नहीं मिला। उलटे मुझसे ही भारत-



स्टाकहोममें सूर्यास्त

[मालार झीलके पार नये नगर-भवन और पुराने नगरके गिरजाघरकी मीनारें दीख रही हैं]



मध्यरात्रिका सूर्य, आबिस्को



तोर्नें त्रास्क झील, लापोनिया

की परिस्थितिके विषयमें अप्रत्याशित प्रश्न पूछे गये । एकने पूछा : "सुना है आपके देशके शहरोंमें साँड़ छुट्टे फिरते हैं । मुझे एक मित्रने बताया था कि बनारसमें शहरके एक चौकमें उन्होंने साँड़ोंकी लड़ाई देखी थी । तो क्या यह सच है ?" मुझे याद आया कि स्वीडनमें तो नहीं, इंग्लैंडमें कहीं-कहीं मैंने देखा था कि जहाँ साँड़ रखा जाता है वहाँ आस-पास लम्बी-चौड़ी चरागाह छोड़कर उसके बाहर मजबूत दीवार या बाड़ लगा दी जाती है, और जहाँ-तहाँ चेतावनीके नोटिस टाँग दिये जाते हैं....एक दूसरे व्यक्तिने पूछा : "आपके यहाँ, सुना है, गायें शहरोंमें, बल्कि लोगोंके घरोंमें रहती हैं और चरानेके लिए सड़कोंपर छोड़ दी जाती हैं—बल्कि खूँद-खूँदकर कचरा खाती हैं । क्या यह बात ठीक है ?" और एक दूसरेने इस प्रश्नके साथ जोड़ दिया : "लेकिन यह कैसे हो सकता है—भारतमें तो गाय पूज्य मानी जाती है । है न ?"

जिज्ञासाका उत्तर इन प्रश्नोंसे नहीं मिला, लेकिन उत्तर कहाँसे मिलेगा इसका कुछ संकेत तो मिल ही गया । देशकी १२ प्रतिशत भूमि गोचर-भूमि है और वह शहरोंसे अलग ही रखी जाती है । वहाँ गायें स्वच्छता और स्वच्छन्दतासे रहती हैं; और वहीं दुहा जाकर दूध शहरोंमें पहुँचता है । यह तभी सम्भव हो सकता है जब कि वितरणका संगठन बहुत अच्छा हो; वितरक संस्थाके मुख्य कार्यालयमें और दो एक संग्रह और वितरण केन्द्रोंमें जाकर समझ लिया कि यह संगठन वास्तवमें बहुत विस्तृत और कुशल है । अन्य प्रकारके सहकार-संगठनोंकी बात अनन्तर करूँगा, लेकिन दूधकी सहकारी संस्थाका उल्लेख यहाँ कर देना अप्रासंगिक न होगा । पूर्वीय मध्य स्वीडनकी जिस दुग्ध सहकार संस्थाका केन्द्र स्टाकहोममें है, उसके ३०,००० गोपालक सदस्य हैं । इसकी विभिन्न डेरियाँ प्रतिदिन २० लाख किलोग्राम दूधका संग्रह करती हैं । इन्हीं डेरियोंमें कृमि-नाशनके बाद दूध बोतलोंमें अथवा मोम-लगे कागजके पात्रोंमें बन्द करके बिक्रीके लिए भेजा जाता है, अथवा क्रीम और पनीर निकालनेके लिए प्रयुक्त होता है । इन

डेरियोंसे प्रतिवर्ष १ करोड़ २० लाख किलोग्राम (प्रायः सवा तीन लाख मन) मक्खन और १ करोड़ किलोग्राम पनीर तैयार होता है।

वहाँपर अपने देशकी गोधन-सम्बन्धी चर्चा कुछ प्रीतिकर नहीं थी। गोधन-सम्बन्धी सुधार और उन्नतिका उल्लेख भी कुछ विशेष अर्थ न रखता जबकि उस उन्नतिके बादकी स्थिति भी स्वीडनकी दृष्टिसे शोचनीय होती। मन ही मन सोचता रहा कि इन प्रश्नोंमें कितना अचिन्तित और अज्ञात व्यंग्य है : "आपके देशमें साँड़ छुट्टे फिरते हैं?" "आपके देशमें गाय कचरा खाती हैं ?" "किन्तु आपके यहाँ तो गाय पूज्य मानी जाती है।"....

ठीक ही तो है। जहाँ मनुष्य गायको नहीं खाता वहाँ गाय मनुष्यको खाती है—और मनुष्य अच्छा भोजन नहीं है इसलिए उसको खाकर भी भूखी रह जाती है। गाय क्योंकि पूज्य है इसलिए उसको पालनेवाला निर्धन व्यक्ति उसको भी भूखों मारता है और उसके साथ स्वयं भी भूखों मरता है; और अपनेको यही सोचकर सान्त्वना दे लेता है कि गायको भूखों रखनेके कारण वह पाप-भागी नहीं है क्योंकि वह स्वयं भी तो भूखा है। वास्तवमें जब तक हमारी गो-सम्बन्धी भावनामें परिवर्तन नहीं होता तब तक स्थितिमें कोई सुधार भी नहीं हो सकता और उस दिशामें किया जानेवाला सब प्रयत्न बालूकी दीवार है। गोधनका संवर्द्धन तो तभी हो सकता है जब हम उसे धन मानें; अर्थात् भावनाको एक ओर रखकर उसे आर्थिक नियमोंके अधीन मान लें। वृद्धि धनकी हो सकती है, सुधार सम्पत्ति अथवा पूँजीका हो सकता है। माताओंकी वृद्धि नहीं की जाती, न सुधार होता है, और माताओंकी नस्लके बारेमें कुछ कहना तो निरा दुर्विनय है!

स्टाकहोम अत्यन्त साफ़-सुथरा शहर है। इतना साफ़ कि उसकी सफ़ाई आँखोंमें चुभे। लेकिन यह कहनेमें मुझे थोड़ा संकोच होता है कि

स्थापत्यकी दृष्टिसे वह सुन्दर भी है। वास्तवमें स्टाकहोमका स्थापत्य नवीन प्रवृत्तियोंके अध्ययनके लिए उपयोगी भले ही हो, कुछ-एक विशिष्ट इमारतोंको छोड़कर सुन्दर प्रायः नहीं है। आरामदेह वह हो सकता है, क्योंकि वह जिस सिद्धान्तपर आधारित है वह सुविधा-प्रधान ही है, सौन्दर्य-प्रधान नहीं। बल्कि वह सौन्दर्यको सुविधाकी उपज मानता है। जो वस्तु या उपकरण जिस कामके लिए हो, उस कामके अधिकसे अधिक अनुरूप होना ही उसका सौन्दर्य है,—उपकरणवाद (फ़ंक्शनलिज़्म) का यह सिद्धान्त सन् १९३० के लगभग जर्मनी और फ़्रांससे स्वीडन आया और फिर यहाँ स्वतन्त्र रूपसे विकसित होता रहा। नगर-निर्माण और स्थापत्यमें इस सिद्धान्तका खण्डन तो कठिन है, लेकिन अपनी ओरसे यह स्वीकार करनेमें मुझे कोई संकोच नहीं कि अपनी संवेदन-पद्धतिको अभीतक उसके अनुरूप नहीं ढाल सका हूँ। उपकरणको सुविधाजनक उपकरण अवश्य होना चाहिए, लेकिन उपकरण होने मात्रसे वह सुन्दर हो जाता है, यह अभीतक नहीं मान पाया हूँ और समझता हूँ कि लोक-शिल्पके इतिहाससे जो उदाहरण उपकरणवादी देते हैं, वे उनकी युक्तियोंका पूरा समर्थन नहीं करते। कोई भी उपकरण और सुन्दर बनाया जा सकता है, बिना उसकी उपयोगिता कम किये हुए। किसी भी उपकरणको अधिक उपयोगी बनाया जा सकता है, बिना उसकी सुन्दरता बढ़ाये हुए। मैं नहीं जानता कि उपयोगिताकी दृष्टिसे स्टाकहोमका पुराना नगर अपने समयकी आवश्यकताओंकी पूर्ति अधिक अच्छी तरह करता था, लेकिन फिर भी मानता हूँ कि वह नये नगरसे कहीं अधिक सुन्दर है। मैं ही नहीं, स्वयं स्वीडो लोग भी इसे मानते हैं, और विदेशीको सगर्व वह दिखाते हैं। नवीनताके पोषक भी, जो नये नगर-भवनपर गर्व करते हैं, कमसे कम उतना ही गर्व पुरानी नगरीपर भी करते हैं।

स्थापत्यके विशेष सुन्दर न होनेपर भी स्टाकहोमके अनेक भाग बहुत सुन्दर हैं, जिसका मुख्य कारण मालार झील है। यह सर्पिल और घुमाव-

दार झील नगरके विभिन्न खण्डोंमें विभिन्न आकार लेती है—कहीं नहर-सी सँकरी, कहीं सरोवर-सी गोल और कहीं उपसागर-सी फैली हुई। बीच-बीचमें चट्टानी टीले अथवा वन-खण्ड उसके सौन्दर्यको और बढ़ा देते हैं। बन्दरगाहसे एक ओरका तटवर्ती प्रदेश तो सुरक्षित राष्ट्रीय उद्यान बना दिया गया है, और इसमें सड़कोंके आस-पास हरियालियोंमें बिखरे हुए कहवाघर और भोजनालय बहुत ही आकर्षक हैं। प्रवासके पहले दिन अपने आतिथेयके साथ इस प्रदेशमें घूमकर ऐसे ही एक रेस्तराँमें भोजन किया था। आतिथेयको अपनी नयी जर्मन गाड़ी दिखानेका भी चाव था, लेकिन मैं तो उसी तन्मय भावसे बाहरके दृश्य देख रहा था जिसके लिए अंग्रेजी मुहावरा 'रबरकी गर्दन घुमाना' बहुत ही उपयुक्त है। रेस्तराँका नाम लिंडगार्डन (नीबूका बाग़) तो सार्थक था ही, बरामदोंके बाहर और अनेक मालंचोंपर सजे हुए विलायती फूलोंका रूप और सौरभ भी रमणीय था। पैंज़ी और नैस्तर्शम, कार्नेशन और हाइड्रेंजिया—ये फूल भारतमें भी होते हैं, लेकिन यहाँ उनका रंग-रूप और आकार सभी और थे—हाइड्रें-जियाके गुच्छ तो फूल-गोभियोंसे भी बड़े! और आस-पास पाँगुर और लीलाकके पेड़ फूल रहे थे—लीलाकके फूल कुछ-कुछ महानिम्ब (बकायन) के फूलसे मिलते हैं, लेकिन उससे अधिक सुगन्धित होते हैं; और ऊदेके अलावा गुलाबी और सफ़ेद रंगके भी होते हैं।

अपने आतिथेयका उल्लेख कर ही दिया है तो दो-एक बातें उनके विषयमें और कह दूँ। आतिथ्यके लिए वह व्यस्त तो थे ही, मैंने उनके लिए एक समस्या और उपस्थित कर दी थी जिसे उन्होंने बड़े आकर्षक सहज भावसे स्वीकार कर लिया। स्वीडिश इंस्टीट्यूट नामक संस्थाके एक मन्त्री होनेके नाते विदेशोंसे आनेवाले सभी प्रकारके अध्येताओंके स्वागत और उनके लिए आवश्यक प्रबन्धका काम वह करते रहते थे। यूनेस्कोसे सम्बद्ध होनेके कारण मेरे स्वीडन-प्रवासका प्रबन्ध भी उनकी संस्थाको सौंपा गया था। ऐसी संस्थाओंके लिए प्रबन्धकी एक स्वयं-चालित रूढ़ि-सी बन जाती

है। लेकिन मेरे बारेमें कठिनाई यह थी कि मैं उस संस्थाका पहला लेखक-अतिथि था! मुझसे पहले जो अध्येता आते रहे, उन सबकी रुचि दूसरी दिशाओंमें थी : कोई इस्पातका कारखाना देखना चाहता था तो कोई जलविद्युत्की व्यवस्था, कोई पूर्वनिर्मित (प्री-फ़ैब्रिकेटेड) घरोंका अध्ययन करने आया था तो कोई समाज-कल्याणके क़ानूनोंका, कोई कागज़ बनानेके कारखाने देखना चाहता था तो कोई सहकार संघका केन्द्रीय कार्यालय। लेकिन मैं—मैं लेखकोंसे मिलना चाह रहा था! और वह अभी तक सोच नहीं पाये थे कि मेरे लिए क्या व्यवस्था उन्हें करनी चाहिए। केवल इतना उन्होंने किया था (स्वयं-चालित रूढ़िका प्रताप!) कि मेरे समवयस्क कुछ लेखकोंसे भेंटकी व्यवस्था कर दी थी। मैंने उन्हें बताया कि यूनेस्को के केन्द्र पैरिसमें भी ऐसी ही समस्या उठी थी, और इसलिए मुझे वहाँ १५ दिन अधिक रुकना पड़ा था कि उनके विशेषज्ञोंसे पूछकर अपना कार्य-क्रम स्वयं निश्चित कर सकूँ। इस सूचनासे उन्हें बड़ी सान्त्वना मिली और उनका बोझ प्रत्यक्ष ही कुछ हल्का होता जान पड़ा। दबे स्वरसे मैंने यह भी सुझा दिया कि मिलनेके लिए समान वयका ध्यान रखना उतना आवश्यक नहीं है जितना समान रुचि अथवा जिज्ञासाओंका—'समानशील-व्यसनेषु सख्यम्'। पहले ही दिन यह स्पष्टीकरण हो जानेसे अनन्तर बहुत लाभ हुआ, क्योंकि इस प्रकार मैं युवेतर लेखकोंसे भी मिल सका। बल्कि कई दृष्टियोंसे उनसे मिलना अधिक शिक्षाप्रद हुआ।

पहले दिन मैं विद्यार्थियोंके एक होटलमें ठहरा था—एक छात्रावासमें जो कि ग्रीष्मावकाशमें विद्यार्थियों द्वारा होटलके रूपमें चलाया जा रहा था। किन्तु दूसरे दिन मेरे लिए दूसरी जगह व्यवस्था कर दी गयी। यह दूसरा होटल प्राइवेट होटल था—कुल आठ कमरे—और पहाड़ीकी ढाल पर बनी हुई पाँच मंजिलोंकी इमारतमें पाँचवीं मंजिलपर था। (निचली

मंज़िलोंमें एक क्लब और एक रेस्तराँ भी था।) यह होटल 'लेखकोंका होटल' प्रसिद्ध था। कुछ ऐसी परम्परा थी कि स्टाकहोम आनेवाले विदेशी लेखक यहीं ठहरते या ठहराये जाते थे। होटलका खाता देखनेपर अनेक प्रसिद्ध नाम मुझे मिले, यह भी ज्ञात हुआ कि स्ट्रिंडबर्ग भी कभी वहाँ रहे थे।

होटलसे स्टाकहोमका और मालार झीलके विभिन्न जलाशयोंका विहंगम दृश्य दीखता है। बल्कि अपने छज्जेसे ही मैं सूर्योदयसे सूर्यास्त तकका पूरा आकाश देख सकता था। क्योंकि यह छज्जा इमारतके कोनेपर बना हुआ था। पश्चिमकी ओर मालारके एक पुलके आगे नगर-भवन सान्ध्य आकाशकी पृष्ठिकाके कारण बहुत अच्छा लगता था।

होटल पहाड़की ढालपर था, पाँच मंज़िलें उतर करके समतल भूमि पर नहीं पहुँचते थे बल्कि वहाँसे और बहुत नीचे उतरकर सड़क अथवा ट्रामकी लाइन मिलती थी। पटरीसे उतरनेमें इसमें प्रायः दस मिनटका समय लगता, और आती बार कड़ी चढ़ाई चढ़नी पड़ती। इसलिए नगरके इस खण्डमें आनेके लिए बाहर एक सार्वजनिक लिफ़्ट लगा हुआ था जिससे प्रायः २०० फुट सीधे चढ़-उतर सकते थे। यह लिफ़्ट उपयोगी तो था ही, नगरके लिए एक विशेष आकर्षण इसलिए भी था कि ऊपरी खण्डसे पहाड़ी तक बना हुआ पुल, स्टाकहोमका विहंगम दृश्य देखनेके लिए उत्तम स्थान था। सूर्योदय और सूर्यास्त, नया और पुराना नगर, बन्दरगाह और आने-जानेवाले जहाज, नीचे दौड़ती और बल खाती हुई ट्राम और मोटरें, सभी यहाँसे देखी जा सकती थीं। मैं आते-जाते सदैव इस पुलकी मुँडेर पर झुके हुए लोगोंको देखा करता था। इतना ही नहीं, आने-जानेवालों की सुविधाके लिए पुलपर ही एक कहवाघर था जो वहीं खड़े-खड़े या छोटी कुर्सीपर बिठाकर चाय-काफ़ी और उपाहार दे सकता था।

इस पुल और इस लिफ़्टकी एक और भी उपयोगिता थी जिसका

पता लिफ़्टकी एक चालिकासे लगा। (अधिकतर स्त्रियाँ ही लिफ़्ट चलाती थीं; केवल रातके तीसरे पहरकी ड्यूटी पुरुष करते थे।)

चालिकाएँ लिफ़्टपर आने-जानेवाले प्रत्येक व्यक्तिका चेहरा बड़े ध्यानसे देखा करती थीं, यह मैं लक्ष्य कर चुका था। स्वीडन जैसे विनयशील देश में ऐसे देखे जाना कुछ असमंजसकर भी था। एक दिन साँझको लिफ़्टके ऊपर जानेपर पाया कि लिफ़्टका तत्काल प्रयोग चाहनेवाले व्यक्ति वहाँ नहीं हैं, तो चालिकासे थोड़ी देर बातचीत करता रहा। यह पहले भी सुना था कि आत्महत्या करना चाहनेवाले प्रायः वहाँ आते हैं—२०० फ़ुटकी यह कूद आत्महत्याका अमोघ उपाय है! चालिकाने बताया कि वह हर चेहरेको इसीलिए ध्यानसे देखती है—कि कहीं यह आत्म-जिघांसुका चेहरा तो नहीं है? "कभी-कभी यह भी सोचती हूँ कि अगर कोई आत्महत्या करना ही चाहेगा, तो अब क्या उसे मैं रोकूँगी?"

इस 'अब' पर मेरा ध्यान टिक गया। मैंने पूछा : "क्या पहले भी आपने कभी किसीको रोका है?"

चालिकाने बताया कि एक बार एक व्यक्ति उसके सामने ही, कूदनेके लिए मुँडेरपर चढ़ रहा था तो उसने पीछेसे उसकी कमर पकड़ ली; किन्तु भर-सक बाधा देनेपर भी वह उसे कूदनेसे रोक न सकी—जकड़ छुड़ाकर वह गिर ही गया। बाधाका केवल इतना ही असर हुआ कि जहाँ कूदनेसे वह लिफ़्टसे दूर खुले स्थानमें गिरता, वहाँ कूदनेकी बजाय गिरनेके कारण वह अधबीच बिजलीके तारोंके एक जालपर गिरा, और फिर तारोंके टूट जानेसे नीचे—किन्तु कम वेगसे। फलतः वह तत्काल मरा नहीं—उसे अस्पताल ले जाया गया, जहाँ टूटी हुई हड्डियों और बिजलीसे जल जानेके घावोंके कारण आठ दिनके मर्मान्तिक कष्टके बाद उसकी मृत्यु हुई।

"तबसे मैं हर चेहरेको बड़े ध्यानसे देखती हूँ। इसलिए नहीं कि जान लूँ कि यह आदमी मरना चाहता है या नहीं; केवल इसलिए भी कि मैं समझ सकूँ कि इसके मरना चाहनेपर मुझे बाधा देनी चाहिए या नहीं।"

थोड़ी देर हम दोनों चुप रहे। फिर उसने मानो स्वगत कहा : "कोई कैसे जान सकता है कि दूसरेका दुःख कितना गहरा है ? और जानकर कैसे उसमें दखल दे सकता है ?"

लिफ़्टका प्रयोग तो मैं इसके बाद भी बहुत दिनों तक करता रहा। लेकिन चालिकाकी कही अन्तिम बात मेरे मनमें बार-बार उदित होती रही—विशेषकर उसका उत्तरार्द्ध—"और जानकर कैसे उसमें दखल दे सकता है ?"

क्योंकि यह 'दखल न देना' स्वीडी जीवन दर्शनमें एक महत्त्वका स्थान रखता है—उनके स्वातन्त्र्य-पूजनका एक अंग है। दखल न देनेका दर्शन पैरिसमें भी पाया जाता है। अपवाद-रूपी किसी-किसी व्यक्तिमें वह मानवीय सहानुभूतिका रूप भी हो सकता है और मैं जानता हूँ कि पैरिसमें ऐसे भी लोग हैं जो बिना एक-दूसरेके जीवनमें दखल दिये एक-दूसरेकी सहायता करते हैं। लेकिन पैरिसका दखल न देनेका दर्शन मुख्यतः समवेदनाकी अनुपस्थितिका दर्शन है—मानवके प्रति मानवकी उदासीनताका। स्वीडनमें यह दोनोंसे अलग आधारपर खड़ा है—मानवके प्रति मानवके सम्मानपर, व्यक्तिकी अखण्ड सार्वभौम सत्तापर। इस विशेष दृष्टिकोणके अनेक उदाहरण सुने भी और देखे भी। लेकिन इस सम्बन्धके अपने कुछ अनुभवोंका वर्णन अलगसे करना ही अच्छा होगा।

एक छोटे कस्बेके बाहरी मुहल्लेकी एक सड़क; सड़कके किनारे दीवार पर टँगा हुआ लेटरबक्स। सहसा आँख लेटरबक्सपर नहीं, उसके नीचे कुट्टिम भूमिपर टिक जाती है। वहाँ एक चिट्ठी और उसके ऊपर कुछ पैसे रखे हैं। स्थिति समझमें आ जाती है : बिना टिकटकी चिट्ठी और पैसे इस विश्वासके साथ रखे गये हैं कि डाकिया स्वयं टिकट लगाकर चिट्ठी ले जावेगा।

राजधानीकी ट्रामगाड़ी। पिछले द्वारसे सवारियाँ चढ़ती हैं, अगले दो द्वारोंसे उतरती हैं। क्रमशः आगे बढ़ती हुई वे बीचमें बैठे कंडक्टरसे टिकट लेती जाती हैं। भीड़ बहुत है, प्रगति धीरे हो रही है, कुछ लोगोंको जल्दी उतर जाना है—वे टिकट कैसे लेंगे ? अचानक दीखता है, उतरनेके द्वारोंके पास छोटी-छोटी पेटियाँ लगी हुई हैं—लोग उतरते हुए उनमें पैसे डालते जाते हैं। पेटियोंपर लिखा है—"आपको टिकट लेनेकी सुविधा न हुई हो तो किराया यहाँ डालते जाइये।"

एक मामूली स्टेशन। आप गाड़ीसे उतरे हैं। मध्यवित्त भारतवासी हैं, इसलिए प्रायः आवश्यकतासे अधिक असबाब लेकर यात्रा करनेके आदी हैं, यद्यपि इतना सीख गये हैं कि बिस्तर ले जाना आवश्यक नहीं है। कुली कहीं दीखते नहीं। आप बगलमें एक बंडल और दोनों हाथोंमें एक-एक सूटकेस तौलते हैं कि एक मधुर स्वर कहता है—"एक मुझे दीजिए—" और आपके कुछ कहनेसे पहले एक सुरूप, सुवेश व्यक्ति आपके हाथसे एक सूटकेस ले लेता है—"बस तक जावेंगे ?" बसपर पहुँचकर वह आपको धन्यवाद देनेका अवसर न देकर कहता है—"हमारे देशमें आपका प्रवास सुखद हो यह मेरी हार्दिक कामना है"—और चल देता है।

एक और स्टेशन। रातके ग्यारह बजेका समय; थोड़ी देर बाद आपकी गाड़ी आनेवाली है। आप सूने प्लेटफ़ार्मपर टहल रहे हैं कि अचानक देखते हैं, जिस होटलमें आप दो दिन ठहरे थे उसीमें टिके हुए आठ-दस स्वीडी व्यक्ति आपकी ओर आ रहे हैं। क्या ये भी उसी गाड़ीसे जानेवाले हैं, या किसीको लेने आये हैं ? नहीं; ये सब आपको विदा करने आये हैं। "आप बाहरसे आये हुए हमारे अतिथि हैं; पराये देशमें जाकर यह अनुभव करना कि हम अजनबी या पराये हैं अच्छा नहीं लगता। हम चाहते हैं कि आप इस देशको अपना घर समझें और आपको गाड़ीपर पहुँचाने आये हैं—इस कामनाके साथ कि आपका हमारे मध्यमें आना फिर हो।" रातके ग्यारह बजे और बिना किसी संस्थाकी प्रेरणाके, निजी सौजन्यवश, यह

शिष्टाचार ! अतिथि-सत्कारकी उज्ज्वल परम्पराएँ कई देशोंमें हैं और आतिथ्यकी अतिरंजित परिभाषाएँ भी कई जगह मिलती हैं। सभ्यताकी अनेक परिभाषाएँ हैं, और संस्कृतिकी तो और भी अधिक। किन्तु सभ्यता यदि व्यक्तिकी स्वतन्त्रताका निर्वाह करते हुए एक सुगठित और सुव्यवस्थित समाजके रूपमें रहनेकी कलाका नाम है, तो जिस देशमें ये छोटे-छोटे किन्तु स्मरणीय अनुभव मुझे हुए वह संसारका कदाचित् सबसे अधिक सभ्य देश है। और अगर मानवका वह शील-संस्कार जिससे वह सहज और निरायास भावसे वैसा आचरण करता है जो दूसरे मानवके लिए सुखकर, प्रीतिकर या कल्याणकर है, और इसे दूसरेपर बोझ भी नहीं बनने देता—अगर ऐसा शील-संस्कार संस्कृतिमें कुछ भी महत्त्व रखता है तो निस्सन्देह स्वीडन एक अत्यन्त पुष्ट संस्कृति-सम्पन्न देश है।

ये घटनाएँ यों असाधारण नहीं हैं, किन्तु उनका किसी देशके साधारण दैनन्दिन जीवनका अंग होना ही उन्हें असाधारण बनाता है। नहीं तो इक्के-दुक्के नीतिवान् या शालीन व्यक्ति किस देशमें नहीं मिलते ? स्वीडन-में और भी मार्केकी बात यह है कि नैतिक मूल्यका निर्वाह आधुनिकतम वैज्ञानिक प्रगतिके साथ-साथ होता है। औद्योगिक उन्नति, आर्थिक सम्पत्ति, विस्तृत व्यापार, व्यापक शिक्षा—इनके साथ-साथ विनयका विकास होता है और समाजके हर स्तरपर होता है। यों स्तर वहाँ इतने नहीं हैं जितने भारतमें या दूसरे अनेक पूर्वी अथवा मध्यपूर्वी देशोंमें, क्योंकि स्वीडन साथ ही सबसे अधिक समाजवादी देश भी है। वहाँ वादपर उतना मुखर आग्रह भले ही न हो, व्यवहार पूरा है। यह अत्यन्त विकसित व्यक्ति-स्वातन्त्र्य और उसके साथ-साथ इतना व्यापक सामाजिक सहयोग—यही स्वीडनका अचरज है और यही मानव-जातिके भविष्यके लिए आशाका संकेत।

किसी देश अथवा समाजके साधारण अथवा जातिगत चरित्रको उसकी भौगोलिक स्थितिका परिणाम मान लेना एक प्रकारके नियतिवादको जन्म

देता है। ऐसा भौगोलिक नियतिवाद मुझे अमान्य है। किन्तु स्वीडी चरित्र-की विशेषताओंको उसकी देशगत स्थितियोंके सन्दर्भमें अवश्य देखा जा सकता है। विरल आबादीवाले ऐसे प्रदेशमें, जहाँ वनों, सरोवरों और पर्वतोंका बाहुल्य है, जहाँ गर्मी-जाड़ोंमें दिन और रातका अन्तर इतना अधिक होता है कि कुछ महीने दिन काटे नहीं कटता और कुछ महीने रात मानो अन्तहीन हो जाती है, जिसमें बहुधा गाँव या अकेले घर महीनों-तक बर्फ़से घिर अथवा दबकर बाकी संसारसे अलग हो जाते हैं, बसने वाले लोगोंका ऐसा स्वभाव पाना कुछ अद्भुत नहीं है। अलग अकेले रहनेका अभ्यासी अगर चिन्तनशील, अल्पभाषी या मृदुभाषी, एकान्तप्रेमी और दूसरेके काममें हस्तक्षेप न करनेवाला हो जाता है, तो क्या आश्चर्य है ? स्वीडनमें एक ही झीलके एक ही घाटपर सैलानियों द्वारा मछलीके शिकार-के लिए या दो-एक दिनकी छुट्टी बितानेके लिए कोई मालिक-मकान दो-चार बँगले बनवाता है तो इसका ध्यान रखता है कि वे एक-दूसरेको न दीखें, एक-दूसरेके परिदृश्यमें, एकान्तमें अथवा मनोवांछित ढंगसे समय-यापनमें बाधक न बनें। यह नहीं है कि (लारेंसके शब्दोंमें) 'सभ्य मानवको मानवकी बू असह्य हो गयी है।' बल्कि यह इस बातका प्रमाण है कि ऐसा नहीं हुआ है, और न साधारण स्वीडी चाहता है कि कभी हो। इंग्लैंडमें एक बार देखा था, गर्मियोंमें अपने अलग ढंगसे और होटलोंके वातावरणसे मुक्त रहकर छुट्टियोंके कुछ दिन 'निजी पारिवारिक वातावरण-में' बितानेके लिए लोग अपनी-अपनी मोटरोंके पीछे कारवाँ-ठेले जोतकर निकले, तो एक ही सागर-तटपर एक ही विशाल 'कैरावान-पार्क' में ६,००० ठेले पंक्तियाँ बाँधकर खड़े हो गये ! पार्कमें मोटर और ठेले खड़े करनेकी जगह थी; प्रत्येकके लिए बिजलीका कनेक्शन मिल सकता था और पानी आदिकी व्यवस्था थी। अपने अद्वितीय ढंगसे, निर्बाध रूपसे, छुट्टी बितानेके लिए एक ही मैदानमें जुटे हुए ६,००० पंक्तिबद्ध परिवार ! मानो छुट्टी बितानेके युद्धके लिए महाप्रांगणमें सेनाएँ जुटी हों !

यह कहना इंग्लैंडके साथ दोहरा अन्याय होगा कि प्रांगणमें जुटे हुए सब लोग वास्तवमें ऐसा 'अवकाश संग्राम' चाहते हैं। इंग्लैंडकी आबादी कहीं घनी है, और वहाँ वैसे एकान्त विश्रामके लिए स्थान भी नहीं है जैसा स्वीडनमें सम्भव है। किन्तु जो कुछ सम्भव है उसका पूरा उपयोग वहाँ नहीं होता, जब कि स्वीडनमें जो व्यक्ति अवकाश या विश्रामके लिए दौड़ता है वह केवल अपने कार्यस्थल या परिचित परिवेशसे दूर नहीं जाता बल्कि जन-मात्रसे दूर जाता है।

शिक्षित और सम्पन्न देशमें ऐसे एकान्त-प्रेमसे, विशेषतया जब उस सम्पन्नताके साथ-साथ स्वतन्त्र वैज्ञानिक चिन्तन कई विश्वासोंको दुर्बल कर देता है, इसकी सम्भावना रहती है कि व्यक्ति एक आध्यात्मिक शून्यका अनुभव करे। इसके दुष्परिणाम स्वीडनमें देखे जा सकते हैं। एकान्तमें और अति मात्रामें मद्य-सेवन वहाँकी एक सामाजिक समस्या है। मद्यके कारण ही नहीं, अन्य कारणोंसे भी एकान्तसे घिरे हुए कुछ व्यक्तित्व वहाँ विकृत हो जाते हैं। यह शायद भौतिक समृद्धिका अनिवार्य दण्ड है। किन्तु इन विकृत परिणामोंको छोड़ भी दें तो भी लक्षित होता है कि स्वीडी लोगोंमें कहीं गहरेमें एक उदासी अथवा चिन्तनशील निरानन्दका भाव होता है। कदाचित् इसी अति-गम्भीरता अथवा अन्तरोन्मुख उदासीके कारण दक्षिणी जातियोंके लोग उन्हें मनहूस या बुद्धू मानते हैं। उदाहरणतः फ़्रांसमें प्रायः ही स्वीडियोंमें विनोदकी कमीकी चर्चा होती है। फ़्रांसका साहित्यकार जहाँ बात-चीतमें सदैव दूसरेको चमत्कृत करने, प्रभाव डालने, वाचिक और आंगिक अभिनय द्वारा मुग्ध और अभिभूत करनेमें यत्नशील रहता है, स्वीडनका लेखक वहाँ ग्रहण करने, चुपचाप बैठकर या सागर-तट अथवा वन-खण्डीमें घूमते हुए चिन्तन करनेका अभ्यासी है। फ़्रांसीसी कलाकार एक कुशल नट है, अविराम अपने करतब दिखाता है और आपकी ओरसे प्रशंसा चाहता है। वह सतर्क है कि आप उसके अभिनय-कौशलके कायल हों। उसके लिए यह मानो बड़ी पराजय होगी

कि वह जो पार्ट अदा कर रहा है उसे आप उसका सच्चा रूप समझ लें! यह दूसरी बात है कि जो अभिनेता सोते-जागते कभी भी रंगमंच छोड़ता ही नहीं, उसका सच्चा रूप आप क्या मानें! किन्तु यही तो फ्रांसीसी कलाकार आपको बताना चाहता है : वह आपके सामने बैठकर अपना रूप —अपने अनेक रूप देखता है, आपको सम्बोधन करके अपनी बात—अपनी अनेक बातें सुनता है। इसके विरुद्ध स्वीडी लेखक कम बोलता है; अपने गम्भीरतम विश्वासों और मान्यताओंकी चर्चा प्रायः नहीं करता, किन्तु जब करता है तो शिशुवत् निश्छल भावसे। आपके सामने आकर वह आपकी बात सुनता है, गुनता है, यदि सहमत नहीं होता तो आपकी बात गाँठ बाँध कर रख लेता है कि फिर एकान्तमें किसी झील-झरनेके किनारे बैठकर सोचेगा।

और मजेकी बात यह है कि फ्रांसका बौद्धिक व्यक्ति तो उत्तरके साहित्यकारको बुद्धू और मनहूस समझता ही है, उत्तरी साहित्यकार भी सहज ही इस मूल्यांकनको स्वीकार लेता है! मुझसे एकाधिक बार स्वीडी लेखकोंने ऐसा कहा। 'फ्रांसका लेखक प्रतिभाशाली है, हम लोगोंमें तो कोई प्रतिभा नहीं है।' "वी आर नॉट ब्रिलिएंट लाइक द फ्रेंच, वी आर डल पीप्ल।"

किन्तु आभ्यन्तर विवेचनको छोड़कर सतहको ही देखें। स्वीडनमें शिक्षाका प्रसार आश्चर्यजनक है। शिक्षा सभी स्तरोंपर निःशुल्क या लगभग निःशुल्क है। कई जिलोंमें प्रारम्भिक और उच्च विद्यालयोंमें भी विद्यार्थियोंको दोपहरका भोजन स्कूलकी ओरसे बिना मूल्य दिया जाता है—बिना इसका विचार किये कि किस विद्यार्थीकी आर्थिक स्थिति कैसी है। सन् १९५५ में सात लाख विद्यार्थियोंको ऐसा बिना मूल्य भोजन मिलता रहा। (स्वीडनकी कुल जन-संख्या सात करोड़ है)

विश्वविद्यालयोंमें शिक्षा राज्यकी ओरसे निःशुल्क दी जाती है किन्तु राज्य विश्वविद्यालयोंका नियन्त्रण नहीं करता और वे अपनी स्वतन्त्रताकी रक्षाके बारेमें अत्यन्त सतर्क हैं। बल्कि विश्वविद्यालयोंकी स्वतन्त्रता अध्ययन-स्वातन्त्र्य और विचार-स्वातन्त्र्यके आन्दोलनका ही एक पहलू है। स्वीडनके प्राचीन विश्वविद्यालय सत्रहवीं शतीमें स्थापित हुए और उस समय धर्म-शिक्षा उनके पाठ्य-क्रमका अंग थी ही। अनन्तर धर्म-विश्वास सम्बन्धी आन्दोलनके साथ-साथ अध्ययन और अनुशीलनकी स्वतन्त्रताका प्रश्न जुड़ गया। विश्वविद्यालयोंकी स्वतन्त्रताका आन्दोलन इसका एक पहलू था। आचार्योंकी नियुक्तिके सन्दर्भमें राज्य और विश्वविद्यालयोंका एक ऐतिहासिक संघर्ष भी हुआ, जिसमें वैज्ञानिक अनुशीलनकी स्वतन्त्रताका सिद्धान्त जयी हुआ। स्वीडी समाचार-पत्रोंकी स्वतन्त्रता भी यहाँ कानून द्वारा सुरक्षित है। स्वीडियोंका दावा है कि इस स्वतन्त्रताको सुरक्षित रखनेका सबसे प्राचीन विधान स्वीडनका है। वर्तमान कानूनमें भी किसी प्रकारके नियन्त्रणका निषेध है, और युद्ध-कालमें भी समाचार-पत्रोंपर सेंसर नहीं नियुक्त किया जा सकता।

विश्वविद्यालयोंमें शिक्षा निःशुल्क होती है, इसका अर्थ यही है कि विश्वविद्यालय विद्यार्थियोंसे कुछ नहीं लेते। किन्तु प्रत्येक विद्यार्थीके लिए किसी विद्यार्थी संगठनका सदस्य होना आवश्यक होता है, और ये संगठन चन्दा लेते हैं। ऐसे संगठनोंके नाम अधिकतर प्रादेशिक होते हैं और वे 'राष्ट्र' कहलाते हैं। विद्यार्थी-जीवनके अनेक पहलू इन संघों अथवा राष्ट्रोंके सहकारी अनुशासनमें रहते हैं। संघ ही छात्रावास चलाते हैं और विद्यार्थियोंके रहनेकी व्यवस्था करते हैं, सहकारी आधारपर विद्यार्थियोंके काम की चीज़ोंकी दुकानें चलाते हैं, विद्यार्थियोंके लिए चिकित्सालय चलाते हैं, नौकरी दिलानेके लिए उद्योग करते हैं; और यहाँ तक कि सदस्योंके बेकार रहनेपर उन्हें वृत्तियाँ भी देते हैं अर्थात् बेकारी-बीमाकी व्यवस्था करते हैं। और ये छात्र-संगठन स्वयंसेवी और स्वायत्त होते हैं। विश्व-

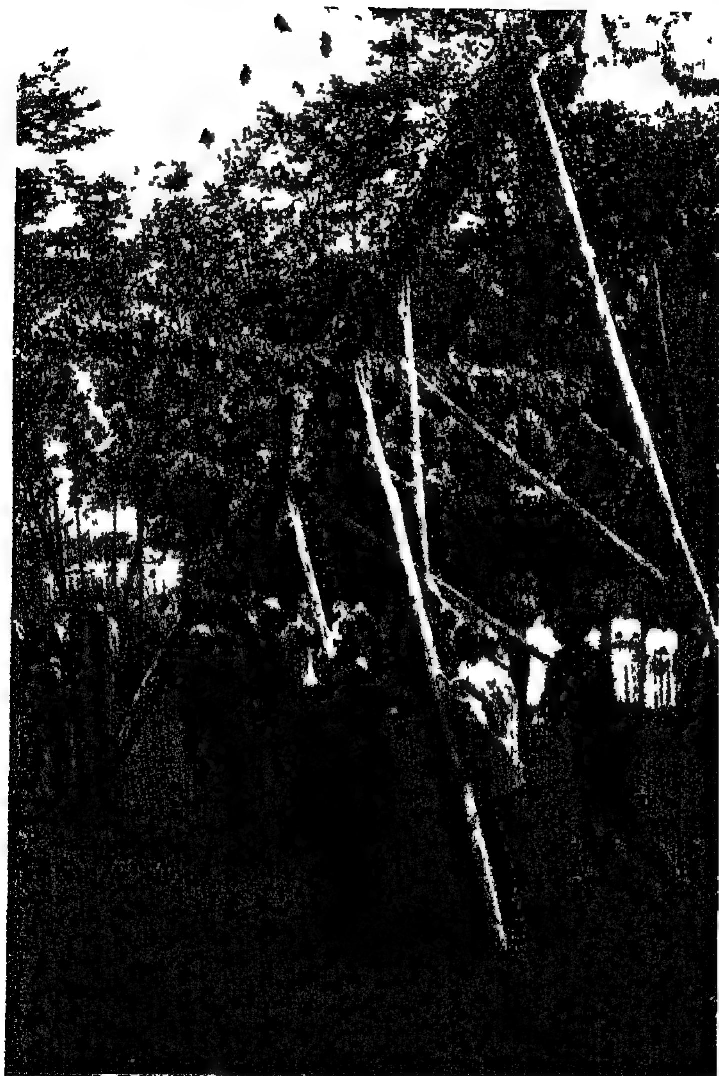
विद्यालय उनमें कोई हस्तक्षेप नहीं करता; केवल माँगे जानेपर परामर्श देनेकी व्यवस्था कर दे सकता है। उदाहरणतया सहकारी संस्थाको चलाने के लिए किसी अर्थ-शास्त्रज्ञकी आवश्यकता होनेपर विश्वविद्यालयसे इस सम्बन्धमें सहयोग माँगा जा सकता है।

विश्वविद्यालय सभी ग्रीष्मावकाशके लिए बन्द थे; केवल उपसालाके प्राचीन विश्वविद्यालयमें जाना हुआ—वह भी इसलिए कि कुछ लेखकोंसे मिलना था जो स्थायी रूपसे वहीं रहते थे।

किन्तु सिगतुनाका लोक-संस्कृत महाविद्यालय खुला था। बल्कि ग्रीष्मावकाशमें तो वहाँ विशेष हलचल होती है, क्योंकि अवकाशमें बाहरके लोग भी वहाँकी अतिथिशालामें आकर रहते हैं। उपसालासे मैं सिगतुना जाकर उसी अतिथिशालामें ठहरा। यह संस्था लोक-संस्कृतिके अध्ययनके लिए और लोक-कला तथा लोक-शिल्पकी रीतियोंके पोषण और प्रचारके लिए कार्य करती है। यहाँकी गायक-मण्डलीसे मैंने अनेक स्वीडी लोकगीत सुने; और कुछ फ़ीतेपर रेकार्ड करके साथ ले आया। उन दिनों अयनोत्सव (मिड-समर फ़ैस्टिवल) भी था, इसलिए स्वीडी लोक-नृत्य भी देखनेको मिले जिसमें न केवल विद्यालयके छात्र और छात्राएँ सम्मिलित होती थीं बल्कि आसपासकी बस्तियोंके अनेक कृषक और नागरिक भी। प्रतिदिन विधिवत् इन्द्र-ध्वज (मे-पोल) की प्रतिष्ठा होती थी और उसके आसपास पिण्डीबद्ध नृत्य होता था। नृत्योंके विभिन्न प्रकार थे। मण्डलाकार नृत्य होनेपर भी कुछको नटन (डांस) कहा जाता था और कुछको अटन (वॉक)। सारे यूरोपमें ऐसे अनेक लोक-नृत्य प्रचलित हैं जिनको वॉक कहा जाता है—उन्हें विशिष्ट करनेके लिए उनके साथ विदेशका नाम जुड़ा हुआ हो सकता है। मेरा अनुमान है कि भारतमें भी ऐसा ही परम्परागत अन्तर रहा—'नट्' अथवा 'अट्' धातुसे बने हुए विभिन्न नाम कदाचित् इस भेदको सूचित करते हैं कि कुछ नृत्य अभिनयप्रधान थे और वाचिक तथा आंगिक अभिनयके द्वारा किसी पदकी व्याख्या

करते थे; जबकि कुछ दूसरे नृत्य, गीतके साथ होनेपर भी, सहज आनन्दाभिव्यक्तिके नृत्य होते थे। मैं नहीं जानता कि यह अनुमान कहाँ तक तथ्य-संगत है, न यही कि भाषा-तत्त्वके विद्वान् इसके बारेमें क्या कहेंगे; किन्तु इतना अवश्य है कि इस प्रकारका भेद लोक-नर्तकके मनमें भी रहा और शास्त्रीय परिभाषा करनेवाले नाट्य-शास्त्र-विशारदोंके मनमें भी।

दूर-देशीय अतिथि होनेके नाते मुझे संस्था देखनेकी पूरी सुविधा तो दी ही गयी, प्रतिदिन भोजनके समय अध्यक्षकी मेजका साझा करनेका सम्मान भी मिला। पश्चिममें भोजनका समय ही वार्तालापका उत्तम समय माना जाता है, इसलिए यह अवसर मेरे लिए विशेष उपयोगी हुआ क्योंकि प्रतिवार अध्यक्षके साथ दो-एक और लेखक-अतिथियोंसे भी बात-चीत हो जाती और पश्चिमकी साहित्यिक और सांस्कृतिक परम्परा अथवा उनकी विशेष समस्याओंपर कुछ नया प्रकाश मिलता या किसी नये दृष्टिकोणसे परिचय होता। मध्य-कालमें धर्म और कलाका जो सम्बन्ध-विच्छेद हुआ, ईसाई चर्चने कलाकारका जो बहिष्कार कर दिया उसके परिणामोंपर बहुत चर्चा होती रही। अध्यक्ष महोदयका दृढ़ विश्वास था कि कलाकारको अविश्वास्य मानकर कलाके प्रति उदासीन हो जानेमें चर्चने जो भूल की थी उसके कुप्रभाव दोनोंपर पड़े और अब धर्म-संस्थाओंको फिरसे यह उद्योग करना चाहिए कि उनमें और कलाकारोंमें सामीप्य हो—धर्म-संस्थाओंको रचनाशीलताका योग मिले और कृतिकार फिरसे श्रद्धासे अनुप्राणित हो। निरी श्रद्धाहीनताको मैं भी कोई रचनात्मक शक्ति नहीं मानता हूँ, यद्यपि वैज्ञानिक जिज्ञासु-बुद्धिका कायल हूँ। फिर भी अध्यक्ष महोदयकी भावनाका सम्मान करते हुए भी मैं उनकी योजनाको व्यावहारिक नहीं मानता था—भारत जैसे देशमें भी नहीं, स्वीडन जैसे देशकी तो बात ही क्या! किन्तु ऐसे वार्तालापका उद्देश्य सहमति नहीं होता, विचारोत्तेजन ही होता है।



अयनोत्सवकी तैयारी—सिगतुना



स्टाकहोममें एक काव्य-गोष्ठी
[पढ़ते हुए नीर्ये, फिर क्रमश: लेखक, जेन लुंडक्लाड, पाल शर्नस्टेट और लार्स फ़ोर्शेल]



ग्रीष्म-कालीन विद्यालयमें
[मार्टिन आलत्वुड द्वारा संचालित विद्यालयमें भारतके विषयमें लेखकका व्याख्यान]

लेखक, चिन्तक, अध्यापक, सभी तो ग्रीष्मावकाशके लिए शहरसे या अपने साधारण निवासोंसे दूर भागे हुए थे—कोई जंगलमें, कोई सागरके किनारे, कोई मछेरोंके झोंपड़ोंमें तो कोई गडरियोंके काठ-बँगलोंमें। 'चार दिनोंकी चाँदनी' में ही धूपके आकर्षणसे सब लोग ऐसे स्थानोंको चले गये थे जहाँ दिन-भर (और कितना लम्बा दिन !) कछुए अथवा मगरमच्छकी तरह धूपमें पड़े-पड़े दिन काटे जा सकें। क्योंकि फिर लम्बी अँधेरी रातमें सभीको अपने-अपने शहर लौटकर काममें लग जाना होगा।.... योजना बनाकर किसीसे मिलना सम्भव नहीं था, क्योंकि किसीका पता पाना ही कठिन था। कोई अचानक ही मिल जाय तो मिल जाय। ऐसे ही केन्द्रोंमें जाना उपयोगी हो सकता था जहाँ उस समयमें लोगोंके होनेकी ही सम्भावना हो। सिगतुनाके बाद दक्षिण स्वीडनके मुल्स्वे नामक स्थानमें हाकिनसास ('गरुड़-नासा') की संस्थामें जा पहुँचा, जहाँ मेरे पुराने परिचित मार्टिन आलवुड समाज-विज्ञानके एक शोध-केन्द्रका संचालन करते हैं और एक ग्रीष्म-कालीन विद्यालय भी चलाते हैं। मार्टिनसे मेरा परिचय प्रायः बीस वर्ष पहलेसे था जब वह भारत आये थे और कलकत्तेमें मेरे साथ रहे थे। वह मूलतः उत्तरी इंग्लैंडके निवासी थे किन्तु उनके पिता यहाँ अँग्रेजी शिक्षक होकर आये थे और यहीं बस गये थे। इसी केन्द्रमें उनकी नार्वेयी पत्नी श्रीमती इंगा आल्वुडसे परिचय हुआ और प्रवासी चीनी लेखक और शिक्षक ह्वाङ्ग त्सु-यू तथा उनकी जर्मन पत्नीसे भी—और अनेक हँसमुख विद्यार्थी युवकों और युवतियोंसे भी और एक सर्वथा अनौपचारिक शिक्षा-पद्धतिसे भी। मार्टिन तथा विद्यार्थियोंके अनुरोधपर विद्यालयमें दो-एक भाषण भी दिये और कहानियाँ भी सुनायीं, फिर मार्टिनके अध्ययन-कक्षमें बैठकर उनके भारतके तथा अपने स्वीडनके अनुभवोंका विनिमय करता रहा।

लौटकर फिर स्टाकहोमके अपने परिचित होटलमें स्थान पाया। लिफ़्टसे अब भी उसी प्रकार लोग आते-जाते थे और लिफ़्टकी चालिका

अब भी उतने ही ध्यानसे उनके चेहरे देखा करती थी। किन्तु होटलमें टिक जानेके बाद एक नया अनुभव हुआ।

सबेरे नाश्तेके बाद परिचारिकाने पूछा : "क्या आपको कुछ कष्ट दे सकती हूँ ?"

मैंने कहा—"बताइये ?"

"आप मेरी हस्ताक्षर-पुस्तकमें हस्ताक्षर कर देंगे ?"

मैंने हँसकर कहा : "सहर्ष।"

"और साथ कुछ लिख भी देंगे ?"

मैंने कहा : "अच्छी बात है, आप कापी मुझे दे दीजिए; मैं लिख रखूँगा।"

वह कापी ले आयी। कापी नहीं थी, मेरी अभ्यस्त छोटी-बड़ी 'आटोग्राफ़ बुक' भी नहीं थी। एक बड़ा-सा एलबम था। उस होटलमें इस परिचारिकाके रहते जो-जो देशी-विदेशी साहित्यकार वहाँ टिके थे (और यह मैं कह चुका हूँ कि यह होटल साहित्यकारोंका अड्डा था)—उन सभीके उसमें न केवल हस्ताक्षर और सन्देश थे, बल्कि स्टाकहोममें रहते हुए उनके भाषणों या भेंटके जो भी संवाद समाचार-पत्रोंमें छपते रहे उनके कटिंग भी। पन्ने उलटते हुए मुझे आश्चर्य हुआ जब मैंने देखा कि मुल्कवेके समाचार-पत्रोंमें मेरे वहाँ जानेके सम्बन्धमें जो संवाद और (निश्चय ही मार्टिनका दिया हुआ) जीवन-वृत्त छपा था उसके भी कटिंग उस एल-बममें लगे हुए थे। मैंने यथास्थान कुछ लिखकर हस्ताक्षर तो कर ही दिया, तीसरे पहर कापी लौटाते समय चिढ़ाते हुए स्वरमें पूछा : "लेकिन मेरा फ़ोटो तो समाचार-पत्रोंमें नहीं छपा, उसका आप क्या करेंगी ?"

उसने हँसकर कहा : "अभी तो आप स्टाकहोममें हैं।" अर्थात् अभी तो इसकी सम्भावना है कि आपका फ़ोटो अखबारमें छप जाय ! यों समा-चार-पत्रोंमें ऐरे-ग़ैरे अनेकोंके फ़ोटो छपते रहते हैं और मेरा फ़ोटो छप जाना भी नितान्त असम्भव तो नहीं था, लेकिन स्वीडनकी विनयशीलता-

का आभारी हूँ कि यहाँ वैसा नहीं हुआ। स्टाकहोमसे विदा होनेसे पहले मैंने स्वयं ही अपना एक फ़ोटो एल्बमके लिए उसे दे दिया। भविष्यमें जो भारतीय लेखक वहाँ जावें और उस होटलमें ठहरें वे चाहें तो इस संकेतसे लाभ उठा सकते हैं!

मैंने ऊपर कहा कि स्वीडन संसारका सबसे अधिक समाजवादी देश है—कि समाजवादके आदर्शोंका व्यावहारिक रूप वहीं सबसे अधिक देखा जाता है। निस्सन्देह ऐसे समाजवादी व्यवहारके लिए देशका समृद्ध होना आवश्यक है, और वहाँकी वन-सम्पत्ति, खनिज सम्पत्ति और जल-विद्युत् शक्तिकी दृढ़ भित्तिके कारण स्वीडनकी समृद्धि बढ़ती ही जाती है; किन्तु वास्तवमें समाजवादी व्यवस्थाका विकास वहाँके सहकारिता-आन्दोलनके कारण ही होता रहा है। सहकारिता सिद्धान्तपर अमल वहाँ उन्नीसवीं शतीसे ही होता रहा, पर सन् १९३० से यह आन्दोलन देश-व्यापी हो गया और अब तो इसके विभिन्न पहलुओंके आँकड़े चकित कर देनेवाले हैं। डेरी संघ की सदस्य-संख्या अढ़ाई लाखसे अधिक है; मांस-विक्रय संघकी प्रायः तीन लाख और कृषि संघकी प्रायः डेढ़ लाख। कृषि संघ क्रय और विक्रय दोनोंका काम सँभालता है; खेतीकी पैदावार बेचता है और कृषकके लिए बीज, खाद, चारा, औषधि आदि प्राप्त करता है। इतना ही नहीं, सदस्यों की शिक्षा-प्रशिक्षामें भी वह योग देता है, सूचना-पत्रिकाएँ और साहित्य भी प्रकाशित करता है—यहाँ तक कि कुछ भारतीय कृति-साहित्य भी उसने प्रकाशित किया है। (यदि वह भारतका उत्तम साहित्य नहीं है तो इसका उत्तरदायित्व उसे परामर्श देनेवाले भारतीयोंपर ही है : उसने तो सुन्दर प्रकाशन किया है····)

यह सहकार सिद्धान्त अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्रमें भी लागू होता है : स्कैंडिने-वियाके चारों देश आपसमें ऐसा सहयोग करते हैं। एक देशके संघके

सदस्यको दूसरे देशोंके संघ भी वही सुविधा देते हैं जो स्वदेशीय संघ देता; इसके अलावा अन्तर्देशीय क्रय-विक्रय भी इनके द्वारा होता है। यह आपसी सहयोग देशोंके सहजीवनका उत्तम और प्रेरणाप्रद उदाहरण है। स्वेच्छा-पूर्वक सहयोगपर आधारित यह समाजवादी समाज कैसे इतनी व्यवस्था-पूर्वक चलता है, लोकतन्त्रमूलक यह रथ कैसे बिना चरमराहटके, सहज गतिसे बढ़ता जाता है, कहीं रगड़ या अटक उसमें क्यों नहीं पैदा होती, इसकी पड़ताल करने चलें तो लौटकर फिर एक जानी हुई बातपर आ जाना पड़ेगा : कि समता उसी समाजमें होती है जो स्वतन्त्र हो, और समाज वही स्वतन्त्र होता है जिसका अंग व्यक्ति स्वतन्त्र हो और अपने स्वातन्त्र्यके उपभोगके लिए ही सामाजिकताका वरण करता हो। सब सामाजिक सम्पर्कों और सम्बन्धोंकी मूल प्रेरणा है व्यक्तिकी आध्यात्मिक स्वतन्त्रताकी खोज।

किन्तु आधुनिक गोलोकमें गो-दर्शन ? हाँ, गोलोककी यात्राका मेरा वृत्तान्त अधूरा ही रह जायगा यदि अन्तमें यह न कहूँ कि वहाँसे लौटनेसे पहले गायें मैंने देखीं—खुली हरियालीमें खड़ी वैसी वात्सल्य-भरी आँखों वाली गायें, जिन्होंने गोपद-परिक्रमा द्वारा पृथ्वी-प्रदक्षिणाका फल पानेकी कल्पनाको जन्म दिया होगा—जैसी गायोंके लिए कालिदासने 'पयोधरी-भूतचतुःसमुद्रां गोरूपधरा इवोर्वी'की उत्प्रेक्षा की थी। अगर मुझसे किसी गायने यह नहीं कहा कि

'न केवलानां पयसां प्रसूतिमवेहि मां कामदुघां प्रसन्नाम्'

और न यह अनुग्रह ही प्रकट किया कि

'प्रीतास्मि ते, पुत्र ! वरं वृणीष्व'

तो इसका कारण यह भी हो सकता है कि बीसवीं शतीकी सुरभी अथवा नन्दिनी मानव भाषा नहीं बोलती, और यह भी कि मैं ही गुरु-गो-भक्ति-

विहीन होनेके कारण अपात्र समझा गया। जो हो, इस गोलोक-यात्रासे लौटकर यह मान लेनेको तैयार हूँ कि कालिदासने अगर ताम्र-लोहिता 'प्रभा पतंगस्य'को पल्लववर्णा 'मुनेश्च धेनुः'के समकक्ष ही ठहराया तो कोई अनर्थ नहीं किया :

'सञ्चारपूतानि दिगन्तराणि कृत्वा दिनान्ते निलयाय गन्तुम् ।
प्रचक्रमे पल्लवरागताम्रा प्रभा पतङ्गस्य मुनेश्च धेनुः ॥'

एक अनमना कवि

यह लेख या निबन्ध नहीं है, संस्मरण इसे कहा जा सकता है। किन्तु यदि संस्मरण नाटकीय भी हो सकता है, अर्थात् नाटकीय घटनाओंका हो सकता है, और उनकी नाटकीयताको लक्षित करनेवाला इस प्रकार एक तटस्थ दर्शक भी हो सकता है, तो मैं इसे एक नाटकीय झाँकी कहना ही अधिक उपयुक्त समझूँगा।

नाटकीय मंचकी स्थितिके लिए सबसे पहले देश-काल-निर्देश होना चाहिए। इस झाँकीका देश है स्वीडनका राजनगर स्टाकहोम, और काल है कुछ वर्ष पहलेका ग्रीष्म। प्रधान पात्र है स्वीडी कवि एरिक लिंडग्रेन। वही चरित-नायक 'अनमना कवि' है। यों उसे प्रधान पात्र कहनेका अभिप्राय यह कदापि नहीं है कि दूसरे पात्रोंका महत्त्व कम किया जाय, क्योंकि वास्तवमें दूसरे पात्रोंके बिना न केवल प्रधान पात्र तक पहुँचना न होता बल्कि पूरी घटना ही घटित न हो पाती।

लिंडग्रेन प्रबल व्यक्तित्वके प्रतिभाशाली पुरुष हैं। उनका स्वभाव, जैसा कि नाटकके घटनाचक्रके प्रवर्तनमें प्रकट होगा, तेजस्वी और दूसरों पर हावी होनेवाला है—वैसा जिसे पश्चिमके मुहावरेमें 'डायनैमिक पर्सनैलिटी' कहते हैं और भारतीय परिभाषामें शायद राजसिक वृत्ति कहा जा सकता है। आयु लगभग पैंतालीस, युद्धकालीन कवियोंकी पीढ़ीके अन्यतम नेता (यद्यपि युद्धमें स्वीडन तटस्थ ही था), समकालीनोंमें भी और युवतर कवियोंमें भी सम्मानित।

अन्य पात्र हैं कांउटेस आमेली पोस, अभिजातवर्गकी कवयित्री; श्रीमती जेन लुंडब्लाड, लेखिका; यान शर्नस्टेट, कवि; लाज्लो हामोरी, कवि और

लेखक; रागनार ओल्डस्बर्ग, सम्पादक और सहकारी आन्दोलनके नेता; लार्स फ़ोर्शेल, लेखक, और श्रीमती फ़ोर्शेल; बैंग्ट नीर्ये, लेखक और समीक्षक; तथा दो-एक अन्य साहित्य-प्रेमी ।

मंचपर नाटकका आरम्भ होनेसे पहले कुछ निर्देश होना चाहिए । यहीं कठिनाई है । क्योंकि निर्देशके नामपर जो-कुछ सूझता है वह वास्तवमें एक स्वीकारोक्ति ही है, और स्वीकारोक्ति भी ऐसी जिससे कि नाटकका कथावाचक—क्योंकि वह नाटककार अपनेको कैसे कहे ?—इच्छा न रहते भी उसका सूत्रधार बन जाता है ।

किन्तु जब सूत्रकारतासे निस्तार नहीं है तब इस उत्तरदायित्वको स्वीकार ही करना होगा । आत्म-रक्षाके लिए और कथाको सही दृक्-परम्परा देनेके लिए यह स्पष्ट कर देना होगा कि यह सूत्रधार केवल कथा-सूत्रको धारण करनेवाला है, नाटक-सूत्रको नहीं ।

तो अब स्वीकारोक्तिसे आरम्भ किया जाय । समझ लीजिए कि नाटकका आरम्भ सूत्रधारके हलफ़िया बयानसे आरम्भ होता है ।

यूरोप जाते समय एक लेखककी हैसियतसे जो प्रश्न मेरे मनमें थे, यह नहीं है कि उनकी तीव्रता कुछ कम हो गयी है, या कि उनका उत्तर पाना अब मुझे उतना आवश्यक नहीं जान पड़ता । किन्तु इतना अवश्य है कि जब गया था तब मनमें यह विश्वास था कि इन प्रश्नोंका उत्तर जरूर बहुतसे यूरोपीय लेखकोंके पास होगा; इतना ही नहीं, पूछनेपर वे उत्तर बता भी सकेंगे । अब इस भोले विश्वाससे छुट्टी पा गया हूँ । जानता हूँ कि उन प्रश्नोंके कोई बने-बनाये उत्तर नहीं हैं । जो बने-बनाये उत्तर देते हैं वे झूठ बोलते हैं—कुछ जानते-बूझते और कुछ अनजाने । यह जानता हूँ कि पूरे उत्तर तो क्या, उत्तरोंका थोड़ा-बहुत धुँधला-सा संकेत भी बहुत थोड़े लोगोंके पास है; पश्चिममें भी उतने ही थोड़े लोगोंके पास

जितनाके पूर्वमें—भारतमें अथवा अन्य एशियाई देशोंमें। बल्कि इससे भी कुछ अधिक जानता हूँ : वह यह, कि इन प्रश्नोंका उत्तर चाहनेवाले लोगोंकी संख्या भी बहुत कम है—यूरोपमें भी उतनी ही कम जितनी कि भारतमें—क्योंकि ऐसे प्रश्न ही बहुत कम लोगोंके मनमें उठते हैं। इन प्रश्नोंके बिना भी काम मज़ेमें चलता है, बल्कि इनके न उठनेसे ही काम मज़ेमें चलता है; प्रश्न उठनेके बाद तो उनकी मार भीतर भी चैन नहीं लेने देती और बाहरसे भी गालियाँ दिलवाती है।

यूरोपके लोग ज्यादा व्यावहारिक हैं। या यों कह लीजिए कि यूरोपके आदर्शवादियोंने अधिक मार खायी है, जब कि भारतमें लेखकके लिए अभी इस लाचारीका श्रीगणेश ही हुआ है कि वह निर्मम वास्तविकतासे टक्कर ले। इसलिए यूरोपके अधिसंख्य लेखकोंने यह स्वीकार कर लिया है कि जहाँ एक ओर ऐसे प्रश्नोंके अस्तित्व या उनकी सम्भावनाका खण्डन न किया जाय वहाँ दूसरी ओर खाहमखाह उन्हें आमन्त्रित भी न किया जाय —*जब तक बने उन्हें दूर-दूर मँडराने दिया जाय।* छुट्टे साँड़ दूर चौक-चौराहेमें हुड़कते रहें तो रहें, 'आ बैल मुझे मार' कहते हुए लाल रुमाल दिखाकर उन्हें भड़कानेकी कोई जरूरत नहीं है।

यह सब अब जानता हूँ। पश्चिमका दृष्टिकोण अपनाया अब भी नहीं है, लेकिन उसे समझने लगा हूँ। किन्तु तब नहीं समझता था। समझता होता तो यह नाटक न हो पाता। प्रधान पात्रकी पात्रता इसीमें है कि उसके सहारे मैं क्रमशः यह समझ सका, और इसी समझ सकनेकी क्रियाका सूत्रपात इस नाटकीय झाँकीकी घटना-वस्तु है।

जैसे प्रश्न मेरे मनमें उठते थे, और जिनके उत्तर पानेकी नहीं तो जिनपर विचार-विनिमय करनेकी आशा मैं करता था, उनमेंसे कुछ ये हैं :

"ईश्वर है या नहीं, इस प्रश्नको एक तरफ़ रखकर यह बताइये कि कौनसे सत्यों या तत्त्वोंको आप ध्रुव मानते हैं? आपके जीवन-दर्शन या

जीवन-सम्बन्धी विश्वासोंका आधार क्या है ? मूल्योंका आपका बोध कहाँसे उदित होता है—मूल प्रतिमान या प्रमाण क्या है ?"

"इसके प्रतिकूल आपकी मूल चिन्ता या जिज्ञासा क्या है—मानव जातिके सम्बन्धमें, जीवनके सम्बन्धमें, अपने सम्बन्धमें, अस्तित्व-मात्रके सम्बन्धमें कौन-सा बुनियादी प्रश्न आपको व्याकुल करता है ?"

"मनुष्य नैतिक है, या अनैतिक, या अतिनैतिक—नैतिकतासे परे ? विज्ञान क्या कहता है ?"

"संसार-भरमें मानव-मात्रमें बढ़ता हुआ मानसिक तनाव किस बात-का संकेत है ?"

"आप कहाँ तक अपनेको उत्तरदायी मानते हैं—आप जो करते हैं उसके लिए, आपका देश जो करता है उसके लिए, समूची मानव जाति जो करती है उसके लिए ?"

निस्सन्देह ये प्रश्न बहुत बड़े-बड़े हैं और उनको पूछते हुए भी डर लगता है—और नहीं तो इसीलिए कि इतनी बड़ी-बड़ी बातोंकी चर्चा करना भी दम्भ समझा जा सकता है (और हो भी सकता है)। निस्सन्देह देशमें भी मेरे परिचितोंमें दो-चारसे अधिक नहीं हैं जिनसे ऐसी चर्चाका साहस कर सकता हूँ। और यह तो बराबर जानता था कि पश्चिमके सामाजिक वार्तालापके नियम ऐसे मामलोंमें कुछ अति संकोच ही सम्मत बताते हैं।

फिर भी ऐसे प्रश्न पूछनेकी बात मैं सोचता था तो यह निरी मूर्खता नहीं थी। फ्रांस या इंग्लैंडके अनुभवोंने तो कोई प्रोत्साहन नहीं दिया था, लेकिन स्वीडनमें जहाँ-तहाँ जो चर्चाएँ हुई थीं उनसे यह विश्वास होता था कि यहाँपर ऐसे गम्भीर विषयोंकी चर्चा हो सकती है—मनोरंजक या प्रभाव-शाली सामाजिक वार्तालापके या 'काव्य-शास्त्र-विनोद' के स्तरपर नहीं, बल्कि सच्ची जिज्ञासाके स्तरपर। धर्म-विश्वासोंके सम्बन्धमें कुछ गम्भीर चर्चाएँ हो चुकी थीं, सम्पूर्ण लौकिक और सबसे अधिक समाजवादी राज्य-

में लोगोंकी मानसिक स्थितिकी भी चर्चा हुई थी। लेखकोंने बार-बार यह मत प्रकट किया था कि सबसे अधिक समृद्धशाली, और आर्थिक दृष्टिसे निश्चिन्त होनेपर भी स्वीडी जन-साधारणका मूल भाव आनन्द अथवा सन्तोषका नहीं था। दुःखी उन्हें नहीं कहा जा सकता, उदास अथवा निर्वेद अथवा हताश भी नहीं कहा जा सकता; फिर भी कवि और लेखक जब गम्भीर स्तरपर चर्चा करते तो यह न केवल स्वीकार करते बल्कि आग्रहपूर्वक कहते कि लोगोंका स्थायी भाव निरानन्द अथवा असुखका है। लोग असुखी हैं और विश्वके प्रति उनका भाव अनाश्वस्त है।

क्यों? यह असुखी भाव क्या है? भविष्यके प्रति कैसी आशंका है? इसका सही-सही निरूपण नहीं हुआ था। किन्तु कुछ संकेत अवश्य मिले थे—भले ही कभी-कभी वे परस्पर-विरोधी भी रहे हों। एक तो स्पष्ट संकेत था ही: जहाँ ईश्वरमें या किसी पारलौकिक सत्तामें विश्वासका सहारा नहीं है वहाँ भविष्यका क्या आश्वासन हो सकता है? निरी ऐहिक सम्पत्ति या समृद्धिसे क्या होता है? यह ठीक है कि उससे असुख नहीं होता—पर क्या सुख उससे होता है? और जो क्लेश निर्धनतासे होता है वह दूर किया जा सकता है—पर उससे आगे? जहाँ कोई विश्वास नहीं है, और कोई क्लेश भी नहीं है, वहाँ मानवका मन किस चीज़पर टिक सकता है?

इसकी भी चर्चा होती रही थी कि उत्तर मध्य कालमें जब साहित्य-कार और चर्चका नाता टूट गया—जब चर्चने साहित्यकारको अविश्वास्य मानकर उपेक्षणीय घोषित कर दिया, तबसे न केवल साहित्यकी कल्याण-कारी शक्तिका ह्रास हुआ बल्कि चर्चकी भी कल्याणकारी शक्ति क्षीणतर हो गयी। क्योंकि धर्म और कला दोनोंकी शक्ति इनकी परस्परासे पुष्ट होती है और उनके एक-दूसरेसे अलग हो जानेपर क्षीण। कला-विहीन अथवा सौन्दर्य-बोध-विहीन धर्म नीरस हो जाता है, और श्रद्धा-विहीन कला निष्प्राण।

ऐसी चर्चाओंके कारण भी धीरे-धीरे साहस बढ़ता गया था, और क्रमशः गम्भीरतर मौलिक प्रश्नोंकी चर्चा कर सकना सम्भव मानने लगा था।

सूत्रधारका यह बयान उसकी अपनी मनःस्थितिको तो स्पष्ट करता ही है, स्वीडनके लेखकोंकी मनःस्थितिका भी कुछ संकेत देता है। समझ लीजिए कि नाटकके स्थायी भावका संकेत इसीमें है।

एक कवि-गोष्ठी

यान शर्नस्टेटके घरपर एक छोटी-सी कवि-गोष्ठी हुई जिसमें सभीने अपनी-अपनी भाषामें अपनी-अपनी कविताएँ पढ़ीं और संक्षेपमें उनका भावार्थ भी बताया। *कविताका अनुवाद नहीं हो सकता, यह एक सामान्य* बात है। इस गोष्ठीमें भाग लेनेवाले कवि अधिकतर नयी पीढ़ीके कवि होनेके कारण इस बारेमें और भी सहमत थे, क्योंकि नयी पीढ़ीकी कविता अपेक्षया अधिक उन तत्त्वोंपर निर्भर करती है जिनका अनुवाद नहीं हो सकता। फिर भी अलग-अलग भाषाकी लय और ध्वनियोंके बारेमें सभी-का कौतूहल था और सभी बड़े मनोयोगसे एक-दूसरेकी रचनाएँ न समझते हुए भी सुनते रहे।

मैंने स्वीडनमें ही लिखी गयी दो-एक कविताएँ सुनायीं। एक वहींकी एक झीलके किनारे लिखी गयी थी। स्थानका उल्लेख करनेपर नीर्येने बताया कि उसी झीलपर एक स्वीडी कविकी कविता भी है जिसकी लय और ध्वनि मेरी हिन्दी कवितासे बिल्कुल भिन्न है। मुझे कौतूहल हुआ, नीर्येने वह कविता सुनायी और फिर दोनों कविताओंके अर्थ और मूलपर विचार होता रहा। नीर्ये कविता अच्छी पढ़ते थे, इसलिए उनसे और भी कविताएँ सुनी गयीं। उसके बाद साहित्य-सम्बन्धी और क्रमशः दूसरे गम्भीर-तर-विषयोंकी चर्चा होने लगी।

समकालीन हिन्दी समीक्षामें प्रवृत्तियोंकी चर्चामें भी इसके लक्षण प्रकट

होने लगे हैं, लेकिन यूरोपमें साधारणतया और स्वीडनमें विशेष रूपसे साहित्यिक प्रगतिको एक-एक दशकके 'युगों'में बाँट दिया जाता है। तीसी के कवि, चालीसीके कवि, पचासीके कवि—इस प्रकार कवि-वर्गोंकी चर्चा होती है। इस गोष्ठीमें उपस्थित स्वीडी कवि प्रायः सभी मुझसे एक या दो 'युग' छोटे थे। क्योंकि कुछ चालीसी दशकके थे और कुछ पचासी दशकके—अर्थात् कुछ उत्तर युद्ध-कालमें प्रकाशमें आये थे और कुछ सन् '५० के बाद। उनकी परिभाषासे मैं तीसीका लेखक था। इसी वर्ग-विभाजन, और प्रत्येक दशककी विशिष्ट प्रवृत्तियोंकी चर्चाके प्रसंगमें एरिक लिंडग्रेनका नाम सामने आया।

सभी एकमत थे कि चालीसी पीढ़ीके सबसे अधिक प्रभावशाली और विचारोत्तेजक कवि वही हैं और सभीकी राय थी कि मुझे उनसे मिलना चाहिए। मैं नहीं कह सकता कि उन लोगोंका वास्तवमें यह विचार था कि जैसे प्रश्नोंकी चर्चा मैं करना चाहता था वैसे प्रश्नोंका उनकी दृष्टिमें सही उत्तर लिंडग्रेन दे सकेंगे। सम्भव है कि उन्होंने केवल यही सोचा हो कि लिंड-ग्रेनसे मुझे 'भिड़ा देने'से कुछ उत्तेजक और कौतूहलप्रद प्रश्नोंकी चर्चा होगी। यह भी था ही कि लिंडग्रेन लगभग मेरे समवयस्क होंगे और इसलिए चर्चा कुछ बराबरीके स्तरपर होगी—स्वीडनमें अजनबियोंसे मिलनेकी बात होती है तो सम्भाव्य व्यक्तियोंके चुनावका एक आसान तरीका यह समझा जाता है कि दोनों पक्ष लगभग एक ही वयके हों। बड़े-छोटेकी भेंटमें यह अन्देशा रहता है कि वह निरा 'इण्टरव्यू' न बन जाय, अर्थात् उसमें एक पक्ष केवल जिज्ञासु या गृहीता हो और दूसरा पक्ष उत्तर देनेवाला। जहाँ तक यूरोप के लेखकोंका आपसमें मिलनेका सवाल है, यह कसौटी किसी हद तक ठीक भी हो सकती है, क्योंकि एक पीढ़ीके लेखकोंका अनुभव लगभग सामान आधारपर होनेके कारण उनकी जिज्ञासाओंके वैचारिक और रागा-त्मक सन्दर्भ लगभग एक-से होते हैं और इसलिए आदान-प्रदान अधिक सहज और परस्पर स्फूर्तिप्रद हो सकता है। भारत और स्वीडनके जीवनकी

भूमिका एक-दूसरेसे इतनी भिन्न है कि ऐसा अनुभव-साम्य होनेकी सम्भावना कम है। बल्कि एक ही पीढ़ीके लोगोंमें तो और भी कम; अलग-अलग पीढ़ीके लोगोंमें तो कुछ सम्भावना हो भी सकती है।

खैर, सभीकी सम्मति थी कि हमें मिलना चाहिए। आतिथेय शर्नस्टेट और उनके मित्र फ़ोर्शेलने इसके लिए उत्साह दिखाया कि वे मिलनेका प्रबन्ध कर देंगे। मैं तो ऐसे लोगोंसे मिलना चाहता ही था जिनसे विचारों को उत्तेजना मिले और प्रश्नोंका कुछ समाधान हो।

रात बारह बजेके लगभग गोष्ठी समाप्त हुई। अर्थात् बारह तो बज ही गये, यद्यपि उसे रात नहीं कहा जा सकता क्योंकि उस समय उत्तरी प्रदेशोंके ग्रीष्मकी सन्धिकालीन फीकी रोशनी अभी थी।

एक आपानक

स्टाकहोमकी पूर्वी बन्दरगाहसे कुछ हटकर एक पानगृहका कमरा। दो और व्यक्तियोंको साथ लिये कवि लिडग्रेनके सामने मैं बैठा हूँ और सोच रहा हूँ कि क्या इस वातावरणमें कुछ बातचीत हो सकेगी? यों तो यूरोप में साधारणतया पानगृहमें होनेसे बात-चीतमें कोई बाधा नहीं आ जाती। बल्कि बहुत-सी बातें तो वहीं खुलकर होती हैं—घरके संयत वातावरणमें या तो हो ही नहीं पातीं, या लम्बे परिचयकी भूमिका माँगती हैं। पर औपचारिकताके बन्धनसे मुक्त हो सकना एक बात है, और एकाग्र गम्भीरता दूसरी बात। क्या ऐसा नहीं हो सकेगा कि उपचारसे मुक्त होकर हार्दिकता स्थापित करनेका काम तो कलवारीमें हो जाय, और उसके बाद विचार-विनिमयके लिए अन्यत्र चल दिया जाय? मैं लिडग्रेनको लेकर अपने 'लेखकोंके प्रिय' होटलके कमरेमें जानेकी सम्भावनापर विचार कर ही रहा था कि लार्ड फ़ोर्शेल आ पहुँचे। बोले: "यहाँसे हम लोग सीधे मेरे घर चलेंगे। मेरी पत्नी आप सबसे भेंट करना चाहती हैं।" लिडग्रेन

के हाथके गिलासकी ओर इशारा करके उन्होंने जोड़ा : "यह कार्यक्रम भी जारी रहेगा और बात-चीत भी होगी।"

थोड़ी देरमें हमलोग फ़ोर्शेलके घर पहुँच गये। लेखकोंके घर साधारणतया इतने बड़े नहीं हुआ करते—स्वीडनमें भी नहीं—लेकिन फ़ोर्शेल भाग्यशाली हैं। ऊपरी मंजिलका उनका खण्ड यों तो मकानके पार्श्वमें और पिछवाड़ेको है, लेकिन पीछे क्योंकि आँगन और छोटा-सा बगीचा है इसलिए पिछवाड़ेकी ओर होना उसका गुण ही है। वहाँ शान्ति भी है और खुली हवा भी, और खिड़कीसे बाहर झाँकनेसे नीचे हरियाली भी दिख जाती है।

नाटकीय झाँकीके अन्य पात्र यहाँ पहलेसे ही हैं। श्रीमती फ़ोर्शेल से परिचय हो जानेके बाद सभी लोग पास-पास दो टुकड़ियोंमें बँटकर बैठ जाते हैं जिनमें बात-चीत अलग-अलग भी चलती है और कभी-कभी आर-पार भी—कभी मेरी टुकड़ीमेंसे लिंडग्रेन पुकारकर दूसरी ओरके लोगोंसे कुछ कहते हैं और कभी दूसरी ओरसे नीर्ये, जिनसे इस बीच कई बार मिलना हुआ था और एक समानशील-व्यसन भावकी स्थापना हो गयी थी, हमारी टुकड़ीके लिए मुझे कुछ कह देते हैं। श्रीमती फ़ोर्शेल विभिन्न प्रकारके पेय पदार्थोंके प्रबन्धमें व्यस्त हैं।

थोड़ी देरमें टुकड़ियोंके सदस्योंमें कुछ अदला-बदली हो जाती है। यों शिष्ट बात-चीतका यह क्रम भी है कि थोड़ी-थोड़ी देर सभीसे आलाप होता रहे, पर यह मैं यहाँ भाँप रहा हूँ कि फ़ोर्शेल और नीर्ये जो मेरे पास आ गये हैं वह इसलिए कि बात-चीतका स्तर बदलनेके लिए वे योजनानुसार आगे बढ़ रहे हैं।

बात-चीत धीरे-धीरे गम्भीरतर होती गयी है और बीच-बीचमें नीर्ये अथवा मेरी ओरसे कुछ ऐसे प्रश्न भी बात-चीतमें झोंक दिये गये हैं जिनसे शीघ्र ही उसमें उबाल आने लगे। लिंडग्रेन बड़े उत्साहसे बहसको आगे बढ़ा रहे हैं, ऐसा तो नहीं लगता; लेकिन उसमें भाग तो वह रुचिसे ही

ले रहे हैं। इससे साहस पाकर और परिस्थितिको अनुकूल समझकर फ़ोर्शेल कहते है : "हमारे भारतीय बन्धु आपसे दो-एक विशेष प्रश्न पूछना चाह रहे थे—हम लोगोंमें इस तरहकी चर्चाएँ होती रही हैं और इस विचार-विनिमयमें हम सभीको दिलचस्पी है।"

लिंडग्रेन अनुमति-सूचक भावसे मेरी ओर देखते हैं।

"ऐसा प्रश्न करते मुझे संकोच तो होता, लेकिन आप मानेंगे कि सच-मुच ऐसी जिज्ञासाएँ मेरे मनमें रहीं और मैं चाहता रहा हूँ कि अपने यूरोप प्रवासका उपयोग उनका उत्तर पानेके लिए करूँ। एक तो मैं यह पूछना चाहता हूँ कि एक लेखक या कविके नाते वह कौन-सा प्रश्न है जो आपको सबसे अधिक चिन्तित या व्याकुल करता है ?" प्रश्न पूछकर मैं उत्सुक भावसे लिंडग्रेनके चेहरेकी ओर देखता हूँ।

कोई आवश्यक नहीं है कि प्रश्नका उत्तर मुझे मिले ही। उसे हँसकर भी टाल दिया जा सकता है, या उसके उत्तरमें वाक्‌चातुर्यका कोई पैंतरा दिखाया जा सकता है। या यह प्रतिप्रश्न किया जा सकता है कि 'आप अपनी ओरसे उदाहरण देकर प्रश्नको को स्पष्ट कीजिए'। ऐसा कोई भी उत्तर या पैंतरा मेरे लिए विस्मयका कारण न होता, क्योंकि सभी तरह-की प्रतिक्रियाएँ मैं पहले देख चुका हूँ।

किन्तु लिंडग्रेनकी प्रतिक्रिया मेरे लिए सर्वथा अप्रत्याशित है।

वह थोड़ी देर अपने गिलासके पाससे अपलक आँखोंसे मेरी ओर देखते रहते हैं। फिर सहसा गिलासको मेजपर पटकते हुए आगेको झुक आते हैं; उनका चेहरा भी गिलासके तरल पदार्थ-सा तमतमा उठता है और रागाविष्ट स्वरमें वह पूछते हैं : "आप कौन होते हैं ऐसा प्रश्न पूछने-वाले ? अगर मैं ही आपसे ऐसे सवाल पूछूँ तो क्या आप जवाब देनेका साहस करेंगे ? अगर मैं ही पूछूँ कि आप मृत्युसे डरते हैं कि नहीं, तो आप सही-सही उत्तर देंगे ?"

यह आवेश अप्रत्याशित है। तो भी बुरा क्या है ? खरी-खरी बात

अगर रागाविष्ट स्तरपर भी होती है तो भी क्या चिन्ता है—हो तो सही ! मैंने अपने स्वरको भरसक सम और संयत रखते हुए गम्भीर भावसे कहा : "ऐसे प्रश्न हल्के ढंगसे नहीं करने चाहिए, यह मैं जानता हूँ। न मेरे प्रश्नका भाव हल्का है। आपने प्रश्न पूछा है; अगर आप उस स्तरपर बात-चीत करनेको तैयार हैं, तो मैं भी तैयार हूँ। आप कीजिए प्रश्न—पहले आप पूछ लीजिए और उसके बाद ही मुझे उत्तर दीजिए, मुझे मंजूर है।"

सब लोग अभी अपनी-अपनी जगह बैठे हैं, लेकिन अब दो टुकड़ियों में नहीं क्योंकि सभीका ध्यान हमारे प्रश्नोत्तरपर केन्द्रित हो गया है। सामाजिक उपचार कुछ पीछे छूट गया है, शुद्ध बौद्धिक चौकन्नेपनका वातावरण है।

लिंडग्रेनके ओठ एक व्यंग्यपूर्ण मुसकराहटसे विकृत हो आते हैं। उनके स्वरमें ललकार है। "तो बताइये, मृत्युसे आप डरते हैं ?"

"ऐसे और किसी प्रश्नका जवाब देनेसे पहले मुझे शायद सोचना पड़ता। लेकिन संयोगसे इस प्रश्नका उत्तर मैं दे सकता हूँ। क्योंकि दो-एक बार यह प्रश्न अपने-आपसे पूछनेका अवसर मुझे मिला है—बौद्धिक जिज्ञासाके स्तरपर नहीं, जीवन-मरणके सन्धि-स्थलपर खड़े होकर। और मैं कह सकता हूँ—मैं समझता हूँ कि बिना झूठके मिश्रणके कह सकता हूँ—कि मृत्युका डर मुझे नहीं है।" लिंडग्रेन आयास-पूर्वक एक कृत्रिम हँसी हँसते हैं। उसमें विनोद बिलकुल नहीं है, शुद्ध अवहेलनाकी व्यंजना है। मैं कृतनिश्चय हूँ कि उस भावको नहीं देखूँगा, क्योंकि अगर बात इस स्तरपर हो सकती तो मैं उसे निरे आवेशके कारण दिग्भ्रष्ट नहीं होने देना चाहता।

फ़ोर्शेल कहते हैं : "मुझे मार्टिनने आपके क्रान्तिकारी जीवनके बारेमें कुछ बताया था। आप तभीकी बात कह रहे होंगे।"

मार्टिन मेरे वर्षों पुराने मित्र हैं, और भारतमें मेरे पास रहे भी थे। फ़ोर्शेलसे परिचय उन्हींके द्वारा हुआ था।

मैं कहता हूँ : "हाँ, तबकी भी, और बादकी भी। मुझे दो-तीन बार अपनेसे यह प्रश्न पूछना पड़ा है। इसलिए और भी तीव्रतासे कि मैं पुनर्जन्म या परलोकको नहीं मानता हूँ। उससे मिलनेवाला आश्वासन अपनेको नहीं देता हूँ और जीवनका जो कुछ अर्थ खोजता हूँ इसी जीवनमें खोजता हूँ।"

फ़ोर्शेल और नीर्ये उत्सुक भावसे अपनी कुर्सियाँ आगे खींच लेते हैं।

किन्तु हम लोग जितने कृतसंकल्प हैं लिंडग्रेन भी उतने ही जान पड़ते हैं! वह ज़ोरसे पुकार कर कहते हैं : "लैट अस हैव मोर वाइन!" और बोतल सामने रखी रहनेके बावजूद श्रीमती फ़ोर्शेलको व्यस्त भावसे भीतर की ओर दौड़ता देखकर शरारत-भरी मुसकराहट चेहरेपर फैलाकर दोनों हाथोंसे मेज़पर थपाथप ताली पीटने लगते हैं और पियक्कड़ोंका कोई गाना गाने लगते हैं। मेज़पर रखे हुए गिलास और तश्तरियाँ झनझना उठती हैं, और उससे लिंडग्रेनको मानो और उत्तेजना मिलती है, वह और भी ज़ोर-ज़ोरसे गाने लगते हैं।

संकेत स्पष्ट है कि लिंडग्रेन न केवल स्वयं बात करनेके अनिच्छुक हैं बल्कि दूसरोंको भी बात नहीं करने देना चाहते। श्रीमती फ़ोर्शेल उनका गिलास भरती हैं और दो-एक अन्य व्यक्तियोंके सहयोगसे यह उपक्रम करती हैं कि वह अगर हल्की ही बात-चीत करना चाहते हैं तो उनसे वैसी ही बात की जाय और हम लोगोंको अलग बात करने दी जाय। किन्तु लिंडग्रेन किसी तरह भी अपना ध्यान दूसरी ओर ले जानेको राज़ी नहीं हैं। उन्हें हमारी ही बातमें दिलचस्पी है, और उस दिलचस्पीका रूप यह है कि बात-चीत न होने दी जाय।

व्यर्थ प्रयत्न हम लोग छोड़ देते हैं और सभी लोग हँसी-मज़ाककी

बात करने लगते हैं। टोलियाँ फिर अलग-अलग हो जाती हैं—कभी दो, कभी तीन, कभी साढ़े तीन—और लोग स्थानान्तरित होते रहते हैं।

थोड़ी देर बाद फिर ऐसा संयोग होता है कि फ़ोर्शेल दम्पति और मैं अपनेको अन्य व्यक्तियोंसे कुछ अलग खड़े हुए पाते हैं। फ़ोर्शेल धीमे स्वरसे क्षमा-याचनाके भावसे कहते हैं : "मैंने ऐसा नहीं सोचा था—आप बुरा न मानेंगे—उनका आशय आपका अपमान करनेका नहीं है—वास्तवमें उनका स्वभाव ऐसा डायनैमिक है कि—"

श्रीमती फ़ोर्शेल तत्परतासे कहती हैं : "देर हो रही है, मैं रसोईमें जाकर कुछ खानेकी चीजका प्रबन्ध करूँ।" मैं दोनोंको आश्वासन देते हुए कहता हूँ : "नहीं-नहीं, बुरा माननेकी कौन-सी बात है। कोई जरूरी तो नहीं है कि प्रश्नोंका उत्तर दिया ही जाय! बल्कि मैं तो सोचता हूँ कि उनकी यह अतिरंजित प्रतिक्रिया भी अर्थ रखती है—मेरे लिए तो सारी बात-चीत अत्यन्त रोचक है।" फिर कुछ और हँसकर : "स्वीडी शराब-घरोंके गाने मुझे नहीं आते, नहीं तो मैं जरूर उनका साथ देता!"

ये तीनों एक तरफ़ खड़े धीमे-धीमे क्या बातें कर रहे हैं? जरूर कुछ गम्भीर बात होगी, जो कि नहीं होने देनी है! लिंडग्रेन तेजीसे उठकर हम लोगोंके पास आते हैं और श्रीमती फ़ोर्शेलसे पूछते हैं : " तुम नहीं गानेमें साथ दोगी?" और फ़ोर्शेलका हाथ पकड़कर झूम-झूम कर गाने लगते हैं।

श्रीमती फ़ोर्शेल कुछ खानेका प्रबन्ध करने रसोईकी ओर चल देती हैं। हम तीनों फिर आकर संगतमें मिल जाते हैं।

थोड़ी देर बाद फिर न जाने कैसे ऐसा होता है कि मैं और नीर्ये औरोंसे अलग हो जाते हैं और बातें करने लगते हैं। लिंडग्रेनकी पीठ हमारी ओर है और वह खिड़कीसे बाहर झाँकते हुए गा रहे हैं और हँस रहे हैं। फ़ोर्शेल मुझे कुछ कहते हुए रसोईके गलियारेकी ओर बढ़ते चले जाते हैं, जिसका अभिप्राय समझकर मैं भी "आइ बेग योर पार्डन?"

कहता हुआ उनके साथ बढ चलता हूँ और नीर्ये भी पीछे-पीछे चले आते हैं।

हम लोग केवल पान और बात-चीतके लिए आमन्त्रित थे, भोजनके लिए नहीं। लेकिन बात-चीत लम्बी और दिग्भ्रान्त होती चली गयी है; और लिडग्रेन न खुद उठनेवाले हैं न और किसीको जाने देनेवाले हैं। इसलिए श्रीमती फ़ोर्शेलका कुछ खानेका सामान जुटानेके लिए व्यस्त होना स्वाभाविक ही है। यूरोपीय घरोंमें ऐसा कम होता है कि चार-छः व्यक्तियोंके खाने लायक सामान घर ही मेंसे निकल आवे। सामान जमा रखनेकी आवश्यकता भी कभी नहीं पड़ती और न मेहमान ही कभी ऐसा संकट उत्पन्न करते हैं। दो-एक डिब्बे खोलकर श्रीमती फ़ोर्शेल बिजलीके चूल्हेपर जल्दी-जल्दी सासेज और आलू तल रही हैं—इनके साथ रोटी और मक्खनसे कुछ-न-कुछ काम तो चलेगा ही। इस बीच थोड़ी-बहुत और व्यवस्था हो जायेगी।

फ़ोर्शेल रसोईकी देहलीके पास खड़े रोटी भी काट रहे हैं और हम लोगोंसे बात-चीत भी करते जा रहे हैं। हम लोग मृत्यु-भयके प्रश्नके आस-पास ही मँडरा रहे हैं। महायुद्धमें स्वीडन तटस्थ रहा। तटस्थताको राज-नैतिक दृष्टिसे उसने उचित माना और अब भी उचित मानता है। किन्तु अपने जाति-भाइयोंपर जो अत्याचार होते उसने देखे उससे उस तटस्थताको लेकर एक अपराधी-भाव भी कहीं उसके अवचेतनमें आ गया है। नात्सियों का आक्रमण और उत्पीड़न डेनमार्कने सहा, नार्वेने सहा—अमानुषी अत्याचार सहकर भी दोनों हारे नहीं, टूटे नहीं। और उनके निकटतम सम्बन्धी, उनके जाति-भाई, उनके सगे, स्वीडी यह सब देखते रहे और तटस्थ बने रहे! क्या यह तटस्थताका या अहिंसाका आदर्श ही था, या कि स्वार्थको आदर्शकी ओट मिल गयी थी? तटस्थता आदर्श भी रही हो सकती है, किन्तु कितना सुविधाजनक था वह आदर्श! क्या उस सुविधाकी ओटमें कहीं मृत्यु-भय भी छिपा हुआ नहीं था? स्वीडी प्रबुद्ध वर्गमें ये

प्रश्न खुलेआम नहीं पूछे जाते, किन्तु उसकी चेतनामें कहीं गहरेमें ये बने हुए हैं। विशेष रूपसे उस वर्गके उन प्रबुद्ध व्यक्तियोंमें जिन्होंने युद्धारम्भसे कुछ ही पूर्व वयस्कता पायी या जो उत्तर युद्ध-कालमें साहित्यिक-जगत्में प्रमुख स्थानोंपर रहे....अर्थात् चालीसी वाली पीढ़ीमें ही यह भाव तीव्रतम होना चाहिए, क्योंकि वे ही लोग युद्धके पिछले वर्षोंमें सार्वजनिक जीवनमें सामने आये थे; उन्हींके भीतर यह नैतिक संघर्ष हो सकता था कि सार्वजनिक जीवनमें प्रतिष्ठित स्थान पावें या कि उसे छोड़कर अपने सगे डेनियों और नार्वेजियोंके लिए कुछ करें—उन सगोंके लिए जो कि गुप्त रूपसे नात्सियोंके प्रतिकारके संगठन कर रहे थे और अतिरिक्त जोखम उठा रहे थे।

हम लोगोंकी बात-चीत धीरे-धीरे हो रही थी। लेकिन उसकी पृष्ठ-भूमिमें अमुखर स्तरपर मैं अपने-आपसे भी बात-चीत करता जा रहा था कि क्या लिडग्रेनके मनमें भी भीतर कहीं ऐसा संघर्ष न होगा—आत्म-ग्लानिका यह भाव न होगा? अगर उनकी पीढ़ीके लेखकोंमें अधिकतरमें इसके चिह्न हैं, तो वह स्वयं तो उस पीढ़ीके प्रमुख व्यक्तियोंमें रहे, तेजस्वी स्वभावके रहे, 'डायनैमिक' चरित्रके रहे—अर्थात् उनका वैचारिक जीवन उनकी रागवृत्तियोंके अधिक दबावमें रहा....क्या उनका गम्भीर बात-चीतसे इनकार करना ही एक गम्भीरतर आलापकी भूमिका नहीं है?

उस समय ये विचार इतने स्पष्ट रूपसे मेरे सामने नहीं आ रहे थे, केवल उनका धुँधला आभास था। स्पष्ट तो वे क्रमशः होते गये, ज्यों-ज्यों इस नाटकीय वार्तालापमें एक-एक कड़ी जुड़ती गयी। या फिर अनन्तर जब-जब नीर्ये अथवा फ्रोर्शेलने उसकी चर्चा करके चिन्तित भावसे यह आशा प्रकट की कि मैं लिडग्रेनके व्यवहारको मनमें न लाऊँगा।

किन्तु यहाँ तो अभी और बाधाएँ होनेको थीं। गलियारेमें भारी पद-चाप सुनकर हम मुड़े तो लिडग्रेनका स्वर आया: "यहाँ रसोईमें क्या साजिश हो रही है? जो कुछ है हम तो यहीं खायेंगे!"

दो व्यक्तियोंको साथ लिये हुए वह रसोईमें प्रविष्ट हो रहे थे। छोटेसे रसोई घरमें हुड़दंगका-सा वातावरण हो गया था। हम लोग फिर बैठककी ओर लौट गये और थोड़ी देरमें श्रीमती फ़ोर्शेल अपने पति और डायनैमिक अतिथिको साथ लिये हुए भोजन-सामग्री ले आयीं।

रातके, अर्थात् भोरके, अर्थात् मध्य-रात्रिके धुँधले दिनके, दो बजे जब गोष्ठी समाप्त हुई तब भी लिंडग्रेनके गानोंका भण्डार अभी चुका नहीं था। मैं ट्रामसे भी अपने होटल जा सकता था, किन्तु नीर्ये टैक्सीमें मुझे पहुँचाने आये क्योंकि उन्हें रास्तेमें एक बार फिर क्षमा माँगनी थी। दूसरी ओर मैं कुछ इसलिए चिन्तित था कि दूसरे-तीसरे दिन जब लिण्डग्रेन स्वयं पूरी गोष्ठीके बारेमें विचार करेंगे तब उन्हें कैसा लगेगा? उस समयका अनमनापन और बेरुखी क्या अनन्तर उन्हें और भी अनमना न बनायेगी?

नाटकीय झाँकी यहाँ समाप्त होती है। भरत-वाक्यकी आवश्यकता नहीं है। यह सूत्रधार नाटकका नहीं था, केवल कथाका था; और उसका भरत-वाक्य तो नीरवता ही हो सकती है। या वह इतना कह सकता है कि इस झाँकीकी स्मृति उसे अब भी स्फूर्ति देती है, वही स्फूर्ति इससे पाठक को भी हो!



लोकोत्तर

अन्तहीन वन-प्रदेश और अन्तहीन दिन····अन्तहीन उज्ज्वल आकाशसे प्रकाशकी लहरोंकी अन्तहीन वर्षा····मानव अब पशु नहीं रहा है और उसके सोने-जागने और कर्म करनेका समय प्रकाश और अन्धकार, सूर्योदय और सूर्यास्तके प्राकृतिक अनुक्रमसे मुक्त हो गया है; लेकिन फिर भी हमारे जाने-अनजाने भी दिन और रात हमारी नैसर्गिक शक्तियोंको एक ताल-छन्दमें बाँधे रहते हैं। यहाँ स्वीडनके ग्रीष्मकालमें मेरे लिए उस ताल-छन्दमें कुछ व्यतिक्रम हो गया है और उसकी लय अनिश्चित हो गयी है। कभी बीस-चौबीस-तीस घण्टों तक नहीं सोता हूँ, क्योंकि साँझ ही नहीं होती तो रातका बोध कहाँसे होगा! फिर कभी अचानक पाता हूँ कि नींद सहसा आँखोंको ही नहीं, अंग-प्रत्यंगको विवश किये दे रही है जब कि घड़ी देखनेपर पाता हूँ कि दोपहरके बारह बजे हैं, या अपराह्न पाँच-छः बजेका समय है। दिन और रातके बोधसे वंचित, कैसे भी अनियमित अन्तरालके बाद जब भी सोया हूँ—सो सका हूँ—तो कमरेकी खिड़कियाँ बन्द करके और दुहरे-तिहरे पर्दे खींचकर! अब समझमें आ गया है कि क्यों यहाँ सर्वत्र खिड़कियोंमें सजावटी पर्दोंके बाद एक और बहुत मोटा काला पर्दा भी रहता है, जैसा पुराने ढंगके फ़ोटोग्राफ़र कैमरेपर डालनेके लिये रखते थे। इस महीनों लम्बे दिनमें बिना ऐसे उपायोंसे कृत्रिम रात कर लिये बिना तो सोना ही सम्भव न होगा। एक बार मुझे किसीसे ग्यारह बजे मिलना था (दिनके ग्यारह बजे), किन्तु नींदसे जागकर मैंने देखा कि दोपहरके दो बजे हैं—यों यह आश्चर्यकी बात नहीं थी, क्योंकि जिस समय सोया था उस समय भोरके चार बजे थे—भोर अभ्यासवश कहता हूँ, यह नहीं कि उससे पहले रात हुई थी!

स्टाकहोममें फिर भी दिन और रातका कुछ अन्तर पहचाना जाता था। प्रकाश नीखा और फीका होता रहता था। किन्तु उत्तरकी ओर बढ़ते हुए यह अन्तर कमसे कमतर होता गया है और अब अन्तहीन वन-प्रदेशपर बरसती हुई अन्तहीन धूप ही रह गयी है।....

स्टेशनका नाम ही 'ध्रुव-वृत्त' है; गाड़ी वहाँसे आगे बढ़ती है और खड़ियासे खिंची हुई एक लम्बी रेखा पार कर जाती है। यही ध्रुव-प्रदेश-की मेखला है। जैसे देशोंके सीमान्त मर्यादा-स्तम्भों और खड़ियाकी लीकोंसे चिह्नित किये जाते हैं, वैसे ही यह मेखला अंकित कर दी गयी है। सीमाके पार, गोलोकसे हम मानो लोकोत्तर प्रदेशमें आ गये हैं—वन-खण्डका अभी अन्त नहीं है, किन्तु उसीके बीच-बीच जहाँ-तहाँ बीहड़ खुले प्रदेश आ जाते हैं, कभी छोटी-बड़ी झीलें, कभी सद्यःगलित बर्फ़की कीच।

और इस प्रकार किरूनाके बंजर प्रदेशको, जहाँ लोहेकी खानें हैं और जहाँ चित्रकार वानगोखके आरम्भिक अशान्त जीवनके कुछ वर्ष बीते थे, पार करते हुए लापोनिया (लापलैंड) के भीतर आबिस्कोका छोटा स्टेशन। लाप जातिके वनोंमें छिपे हुए गाँव भी अधिकतर पीछे रह गये हैं; पालतू और जंगली मूज़ (एक प्रकारका बलिष्ठ बारहसिंघा जिसे लाप लोग खाते भी हैं और गाड़ियोंमें जोतते भी हैं) भी अब स्वच्छन्द विचरण करता हुआ नहीं दीखता। आबिस्को, तोर्ने त्रास्क नामक एक विशाल झीलके किनारे-पर बसा हुआ है। झील प्रायः सत्रह मील लम्बी है और सैलानियोंके लिए इसके आकर्षणके अनेक कारण हैं। एक तो आस-पासके शिखरोंके आरोहण, अथवा बर्फ़ीली तराइयोंपर स्कीकी दौड़के लिए यह बहुत अच्छा केन्द्र है। दूसरे जिन विदेशियोंको लापोनियाके लोक-जीवनमें विशेष दिलचस्पी है वे

यहाँसे झीलके पारकी लाप बस्तियोंमें जा सकते हैं—ये बस्तियाँ सभ्य जीवनके आवागमन और हलचलसे अपेक्षया अधिक दूर और सुरक्षित हैं और वहाँके लोक-जीवनकी परिपाटी शहरी रीतियोंसे कम प्रभावित हैं। तीसरे—और कदाचित् यही आकर्षण सबसे अधिक संख्यामें यात्रियों को खींचता है—यहाँसे झीलके पार 'मध्य रात्रिका सूर्य' बहुत सुन्दर दीखता है।

मध्य-रात्रिका सूर्य क्यों और कैसे होता है इसे गणितसे और रेखा-चित्रोंसे समझाया जा सकता है। उसका सिद्धान्त विशेष कठिन नहीं है। किन्तु वह कैसा होता है, किसी भी वर्णनसे यह अवगत कराना कठिन है। धीरे-धीरे क्षीणतेज होता हुआ वह क्षितिजके निकट आता जाता है किन्तु कुछ ऊपर ही रहकर मानो अपना विचार बदल लेता है; फिर और डूबता नहीं बल्कि लगभग क्षितिजके समान्तर उत्तरकी ओर बढ़ता चलता है। फिर धीरे-धीरे उत्तरसे पूर्वकी ओर जाता हुआ वह धीरे-धीरे ऊपर उठने लगता है। इस प्रकार सूर्योदय और सूर्यास्त नहीं होता, केवल रातके ग्यारह बजेके लगभग सूर्य पश्चिमोत्तर दिशामें क्षितिजके निकट आ जाता है और भोरके तीन बजेके लगभग पूर्वोत्तर दिशासे फिर ऊपर उठना प्रारम्भ करता है। यह स्थिति आबिस्कोकी है जो ध्रुवमण्डलके भीतर तो है पर फिर भी ध्रुवसे कुछ दूर तो है ही। ठीक ध्रुवपर तो स्थिति और भी अद्भुत होती होगी क्योंकि वहाँका पूर्व और पश्चिम तो मिट ही जाते होंगे और उत्तर-दक्षिण भी एक कल्पना भर रह जाते होंगे—सूर्य केवल एक सम-रेखामें उठता और उतरता रहता होगा।

आबिस्कोके टूरिस्ट होटलसे तोर्ने त्रास्कके पार जिस दिशामें आधी रातका यह सूर्य दीखता है, वहाँ अस्ताचल-पदाकांक्षी कोई पर्वत भी नहीं है। वहाँसे बाँयें, अर्थात् दक्षिणमें, ऊँचे शिखर हैं और दाहिने, अर्थात् उत्तरको एक लम्बी पर्वत-शृंखला है; किन्तु क्षितिजका ठीक वह अंश खुला है। इससे सूर्य और भी स्पष्ट दीखता है और जब उत्तरकी ओर

सरकता हुआ थोड़ा-थोड़ा उगला जाता है तब मानो गिरि-शृंखलाकी रीढ़ पर लुढ़कता हुआ जाता है—यद्यपि ऊपरसे नीचेको नहीं, नीचेसे ऊपर की ओर।

तीन दिन तक प्रति दिन ब्यालूके बाद—घड़ी या भूख ही भोजनका समय बताती थी!—झीलके किनारे या अपनी खिड़कीमें बैठकर घण्टों सूर्यको देखता रहा। ग्रीष्मकालीन सूर्य होनेपर भी ध्रुवमण्डल होनेके कारण उसकी चौंध अधिक नहीं होती थी और रातमें तो उसे बिना कष्टके देखा जा सकता था। मैं क्योंकि ठीक उत्तरायणके समय नहीं गया था बल्कि उसके कुछ दिन बाद ही, इसलिए मुझे कुछ और भी सुविधा थी क्योंकि ठीक मध्य-रात्रिके समय सूर्यके न डूबनेपर भी क्षितिजपर कुछ सन्ध्या-कालीन पीली अथवा लाल रंगत आ जाती थी और दो-तीन घण्टेके लिए सारे परिदृश्यपर, और विशेष रूपसे झीलपर, जादू छा जाता था। फिर दो-तीन घण्टेकी नींदके बाद प्रातराशका समय हो जाता था, और उसके बाद घूमने, किसी शिखरपर चढ़ने, या नदी-नालेके स्रोतका अनुसन्धान करने, या मोटर-बोटमें झीलकी सैर करनेका मोह बहा ले जाता था। वास्तविक नींद दोपहरके भोजनके बाद ही हो पाती थी, जिसके बाद फिर शामकी सैर और रातका सूर्य-दर्शन। यहाँ भी काँचकी दोपहरी खिड़कियाँ और उनके भीतर दोहरे पर्दे थे। दोहरी खिड़कियाँ गर्मियोंमें शोरको और जाड़ोंमें ठण्डको रोकनेका काम देती हैं।

छोटे-छोटे पेड़ों—यहाँ इतना अधिक हिम-पात होता है कि बड़े पेड़ बच ही नहीं सकते—और चट्टानोंके बीचमें हँसती और किलोलें करती आती हुई फेनोज्ज्वल नदी। थोड़ी आगे ही यह झीलमें विलीन हो गयी है, किन्तु यहाँपर इसका प्रवाह कैसा दुर्दान्त और उल्लास-भरा जान पड़ता है! ऊपर कुछ ही मील दूरसे यह आयी है—इसी पासके पर्वतकी ओटमें

तो आविस्कोयारका वह हिम-सरोवर है जिसके गलनेसे आविस्कोयोक्क नदीका उद्भव होता है। बर्फ़की एक झीलसे उद्भव, बर्फ़की दूसरी बृहत्तर झीलमें विलयन—(तोर्ने त्रास्क अभी जमी हुई नहीं है, केवल तैरते हुए हिमखण्डोंसे भरी है, किन्तु शीघ्र ही फिर जम जावेगी)—शिलित अनस्तित्वों के बीच कैसा उद्दाम गतिमय जीवनानन्द ! धरापर झुकी हुई जिस चट्टान पर बैठकर मैं इस फहराती हुई उजली पनचादरको देख रहा हूँ, उसके ऊपर और मेरे आसपास, मेरे पीछे वन-प्रदेशमें झिल्लीकी झंकार और मच्छरोंकी गुंजार हो रही है। ध्रुव-प्रदेशमें मच्छर !—लेकिन नाना प्रकार-के कीट-पतंगों (और तितलियों) का लघु जीवन भी मध्य-रात्रिके सूर्य-वाले कुछ सप्ताहोंका ही तो जीवन है। बर्फ़का सन्नाटा टूटनेपर अचानक उसका उदय होता है, और फिर उतना ही अचानक वह ठिठुककर मौन हो जाता है और फिर नयी बर्फ़का सन्नाटा उसका अन्तिम चिह्न भी मिटा देता है।....

झिल्लीका अविरत उल्लास
देता है संकेत कहीं क्या उसे
मृत्यु है कितनी पास ?

सबेरे आबिस्कोयार तक हो आया हूँ। बल्कि प्रातराशके लिए वहीं अपने साथ कुछ ले गया था। बर्फ़के नीचेसे निकलते हुए पानीको देखता हुआ देर तक बैठा रहा; फिर नीचेकी ओर लौटते हुए आधे रास्तेमें एक काठके पुलपर खड़ा होकर नदीका प्रवाह देखा और फिर पुलके पारकी वन-वीथीसे बढ़कर पेड़ोंके तनोंके अद्भुत आकारोंपर विस्मय करता रहा। पानी और बर्फ़के वार लचकीले काठको कैसे-कैसे अद्भुत रूप दे देते हैं—या यों कहें कि प्रतिकूल प्रकृतिके सब आघात सहता हुआ प्राकृत जीवन कैसे अपनी रक्षाके नयेसे-नये और अद्भुतसे-अद्भुत मार्ग निकालता रहता

है''''इन रूपोंको हम विकृत भी कह सकते हैं, लेकिन जो अदम्य जिजीविषा इतने आश्चर्यजनक रूपोंमें प्रकट होती है उसे हम विकृत कैसे कहें ? बल्कि उन्हीं गाँठों और मरोड़ों और कुण्डलोंको रंग-बिरंगी काहियाँ और निम्न कोटिके उद्भिज और भी विचित्र रूपोंमें सजा देते हैं ।

आविस्कोयोक्कके किनारे-किनारे होटल तक लौट आया हूँ किन्तु विश्राम करनेका मन नहीं है । कुछ भी मन नहीं है; एक अशान्ति है जो शिखरोंके एक बर्फ़ीले एकान्तकी ओर बुला रही है । मैं जानता हूँ कि अपना एकान्त ही एक अर्द्ध-चेतन समस्याके रूपमें मेरे सामने है और मेरी अशान्तिका कारण है, लेकिन मानो यह भी जानता हूँ कि उस एकान्तसे भागकर उस अशान्तिसे बचना सम्भव नहीं है बल्कि उसका साक्षात् करके ही । अकेला भी अन्ततोगत्वा कितना अकेला है ? दो हिमजड़ित अवस्थाओं के बीच नदीका यह उल्लास ही क्या उसके एकान्तका साथी नहीं है ? क्या जीवनका निर्वैयक्तिक आनन्द ही व्यक्तिका सर्वोत्तम संगी नहीं है ?

इन अस्पष्ट-निरूपित जिज्ञासाओंका उत्तर होटलमें नहीं है, सैलानी समाजमें नहीं है । मैंने दोपहरके लिए भी कुछ खानेको साथ लिया और नुओल्या शिखरकी चढ़ाई चढ़ने लगा ।''''

पहले वन-प्रदेश । अपनी ही ग्रन्थियोंसे उलझे हुए वृक्ष, और छोटे और कुण्ठित होते हुए धीरे-धीरे लुप्त हो जाते हैं और उनका स्थान धैर्यवती झाड़ियाँ ले लेती हैं । फिर और ऊपर—झाड़ियाँ भी चुक जाती हैं और घास-ही-घास रह जाती है । बीच-बीचमें सहसा पैर उसमें धँस जाते हैं, नीचे पोली मिट्टी और पानी है—बर्फ़को गले अधिक समय नहीं हुआ है । और ऊपर—घासकी हरियालीमें बीच-बीचमें कीचके छोटे-छोटे दाग़—चट्टानोंकी ओटमें इन स्थलोंपर बहुत बर्फ़ जमी रहती है और शायद इस कीचके सूखते-न-सूखते इसपर दुबारा नयी बर्फ़ पड़ जायगी । और ऊपर घास भी बुच्ची हो गयी है, और चट्टानोंकी ओटमें, या बड़ी-बड़ी दरारोंमें, अभी बर्फ़ जमी हुई है और धीरे-धीरे रिस रही है ।

मैं शायद पथसे भटक गया हूँ। लेकिन शिखरकी चढ़ाईमें पथ क्या और भटकना क्या। ऊपर शिखर है—ऊपर आकाशकी ओर ही तो है। नीचे बस्ती है, नीचे ही तो है और अभी तो दीख भी सकती है—कैसे भी, किधरसे भी उतर जाने हीसे तो वहाँ पहुँचा जा सकेगा!

और ऊपर। अब बस्ती भी नहीं दीखती। चढ़ाई कुछ कम हो गयी है। और यह शिखर तो नहीं जान पड़ता, लेकिन कम ढालकी भूमि आ गयी है; आकाशको छोड़कर सब कुछ इसी ढालकी चट्टानोंकी ओट हो गया है। मैं और आकाश और दुर्गम चढ़ाई। और अलक्षित, किन्तु मनमें दृढ़तापूर्वक धारण किया गया एक शिखर जो मेरा लक्ष्य है....

एक दिन जब
सिवा अपनी व्यथाके कुछ
याद करनेको नहीं होगा—
क्योंकि कृतियाँ दूसरोंके याद करनेके लिए हैं:
एक दिन जब
दे न पाया जो, उसीकी नोक
बेबस सालती रह जायगी—
क्योंकि दे पाया अगर कुछ, याद उसको आज
मैं करता नहीं हूँ, और
जीवन! शक्ति दो
उस दिन न चाहूँ याद करना:

....

एक दिन
उस दिन
जिसे अपनी पराजय भी
दे सकूँगा समुद, निःसंकोच,
उसीको
आज
अपना गीत देता हूँ।

शिखर नहीं था, पठार था। कोई नोकीली ऊँचाई उसपर नहीं थीं, केवल हवा द्वारा बर्फ़की धूलसे मँजी हुई एक समतल भूमि। लेकिन एकान्त में आकाश-विचुम्बित समतल भूमि।

मैं भटक गया था, पर खोया नहीं। लौट आया। राहमें उतरते हुए एक-आध जगह घुटनों तक बर्फ़में धँस गया, फिर वहीं बैठकर बर्फ़के गोले बनाकर अपने-आपसे खेलता रहा। फिर अन्तमें लौट आया।

आबिस्को ध्रुव-मण्डलके भीतर और स्वीडनकी उत्तरी सीमाके निकट तो है ही; उसके पास ही तीन देशोंकी सीमाएँ मिलती हैं यह भी उसके आकर्षणका एक कारण है। तोर्ने त्रास्कके किनारे-किनारे और नुओल्या शिखरके पार्श्वसे आगे बढ़ते हुए अगला स्टेशन रिक्सग्रांसेन है जो स्वीडन का अन्तिम पड़ाव है। इसके बाद लाइन वास्तविक सीमान्त पार करके नार्वेके प्रदेशमें प्रवेश करती है और नार्विक नामक बन्दरगाह तक जाती है। एक ही दिन आगे जाकर लौट आनेवालोंके लिए सीमान्तकी पुलिस पासपोर्ट और वीसाकी विशेष चिन्ता नहीं करती और आबिस्को अथवा रिक्सग्रांसेनसे सैलानी बहुधा नार्वेका वीसा न रहनेपर भी नार्विक तककी सैर कर आते हैं। नार्वेका वीसा मैंने भी नहीं लिया था और यह भी जानता था कि नार्विकमें कमसे कम रात-भर न रहना हो तो वहाँ जाना लगभग व्यर्थ है; फिर भी सीमा पार करके अपने देखे हुए देशोंमें एक और नाम जोड़ लेनेका बचकाना आकर्षण मुझे भी था और मैं रिक्सग्रांसेनसे तीन स्टेशन आगे जाकर वापिस लौट आया। एक और देश छू आनेके दावेके अतिरिक्त इस यात्रामें कोई उल्लेखनीय बात नहीं थी। दृश्यका निरन्तर परिवर्तन होते रहनेपर भी परिदृश्य वही था। एक ओर पहाड़का पार्श्व और चट्टानें, बीच-बीचमें बल खाती रेलकी पटरीपर सुरंगोंके द्वार, पिघलती बर्फ़के नाले, नीचे कभी छोटे-छोटे गँदले ताल और कभी जमी

हुई झीलें। रिक्सग्रांसेन लौटकर रेलसे उतर गया। स्टेशनके पास ही छोटी-सी बस्ती है जिसका मुख्य सहारा सैलानी हैं। लाइनके दूसरी पार लीन्य बान (रस्सेका मार्ग) का निचला पड़ाव है जहाँसे बिजली द्वारा चालित हिंडोलेमें बैठकर पड़ावपर चढ़ते हैं। यह हिंडोलगाड़ी सैलानियोंके लिए आकर्षक भी है और उपयोगी भी। मेरे लिए तो स्वयं इसकी सैर और उपरले छोरके बर्फ़ीले खेतोंकी सैर अथवा वहाँसे दीखने वाला हिम-सरोवरोंका दृश्य रोचक था; लेकिन सैलानियोंके लिए इसकी उपयोगिता यह है कि ऊपरी छोर कई हिम-मार्गोंका संगम है और वहाँसे कई दिशाओंमें स्कीकी दौड़ करते हुए जाया जा सकता है। यह हिम-पादुका अथवा उड़न-खड़ाऊँ पहनकर लोग इस स्थानसे लापोनियाके पर्वतीय मार्गोंका अन्वेषण आरम्भ करते हैं; कुछ लौटकर यहीं आते हैं तो कुछ दूसरी ओर आबिस्कोसे नीचे जा उतरते हैं और कुछ नार्वेयी पर्वत श्रेणियोंमें जा निकलते हैं। मेरे पास न इसके लिए समय था, न मुझे स्कीका अभ्यास है; मेरे लिए शिखरसे दूर तक दीखनेवाला दृश्य ही महत्त्वका था। हिंडोल-गाड़ीके ऊपरी ठियेके, और ठियेसे नीचेके परिदृश्यके मैंने कई चित्र लिये और फिर वहीं चट्टानपर बैठकर दूरतक हिम-सरोवरोंके दृश्य देखता रहा। तोर्ने त्रास्क झीलकी सतह तो पिघल चुकी थी और उसमें तैरते हुए हिम-खण्ड क्रमशः छोटे होते जा रहे थे, किन्तु यहाँसे दूसरी झील भी दीखती थी जो अभी जमी हुई थी। मैंने कुछ रंगीन चित्र भी लिये; लेकिन रंग वास्तवमें यहाँपर था ही नहीं—उजला और काला, और उसके ऊपर एक हल्की धुँधली नीलिमा या कहीं-कहीं चट्टानोंपर हल्की-सी धूसर रंगत—रंगके नामपर इतना ही था। बाक़ी खुला विस्तार, और प्रकृतिकी निर्विकल्प सत्तामयता।....

बर्फ़ गिरते और गलते मैंने देखी है। हिम-नदियोंका आरम्भिक रिसना और पर्वतीय गर्जन मैंने सुना है। जमे हुए नदी-तल और ताल भी देखे हैं और उनपर चला भी हूँ; जमी हुई पपड़ी टूट जानेसे ठण्डे पानीमें गोते

भी खा चुका हूँ। किन्तु पानीकी किसी बहुत बड़ी सतहका पिघलते हुए टूटना अभीतक आँखों नहीं देखा। उसके चित्र और ध्वनि-चित्र देखे-सुने हैं—ध्रुव-प्रदेशीय बड़ी-बड़ी झीलोंको सतहके भी और ध्रुवसागरके भी। कल्पनासे अवश्य उनके अनुभवमें प्रवेश कर सकता हूँ जिन्होंने उद्यम करके अथवा संयोगवश इनका अनुभव प्राप्त किया है; किन्तु उसे प्रत्यक्ष अथवा इन्द्रियगोचर करनेकी लालसा अभी बनी है।····

हिंडोलेपर बैठे-बैठे शून्यमें झूलते हुए और शिखरकी बर्फमें टहलता हुआ मैं इसी दृश्यकी कल्पना करता रहा हूँ। कैसा हो अगर अभी मेरे देखते-देखते ही हिम-सरोवरके शिलित तलके ऊपर और नीचेके तापमानका वह सूक्ष्म सन्धि-स्थल आ जाय जब कि बर्फ़ चटचटाकर टूट जाती है और असंख्य हिम-खण्ड सहसा नीली हो गयी सतहपर तैरने लगते हैं—जैसे कभी जाड़ोंकी बदली फटकर तीतरपंखी रूप ले लेती है और उसके बीचमेंसे आकाशकी नीलिमा झाँकने लगती है····तोर्नें त्रास्कमें तो यह हो चुका था; इन ऊपरी सरोवरोंमें किसी दिन भी उसकी सम्भावना हो सकती थी। या कि ऐसा भी हो सकता है कि कोई सरोवर जमा ही रह जाय और उसके पिघलनेसे पहले ही नया हिमपात होने लगे? ऐसा भी तो होता है कि इसी प्रकार स्थायी हिम-तलपर और हिम-पात होते-होते निचला स्तर शिलित ही हो जाय। क्या उत्तरी ध्रुवके ठोस खण्डोंके बहुत-से अंशने इसी प्रकार शिलित होकर भू-खण्ड कहलानेकी पात्रता नहीं पायी है?

कहीं नव-पल्लवके प्रस्फुटनसे, मंजरीसे और पिक-रवसे वसन्तागम जाना जाता है। किन्तु यहाँ न पक्षी हैं, न उद्भिज स्तरसे ऊपरके वन-स्पति; यहाँ वसन्तागमके कोई मूर्त्त लक्षण ही नहीं हैं; केवल बढ़ता हुआ प्रकाश और कमती हुई ठण्डक····एक-मात्र लक्षण होगा हिमतलका चट-चटाकर टूटना—'तोमार दुर्निवार चरणेर अलक्षित चला····' इस विजय-नादके होनेतक वसन्तका आना अलक्षित ही होता रहेगा—उसकी पद-ध्वनि किसीकी पहचानी हुई नहीं होगी क्योंकि किसीकी सुनी हुई ही न होगी।

चट-चट-चट कर सहसा तड़क गये हिम-खण्ड
जमे सरसीके तलपर :
लुढ़क-पुढ़ककर स्थिर···
वसन्तका आना
—यद्यपि पहले नहीं किसीने जाना—
होता रहा अलक्षित ।

नयी किरणने छुए शृंग : हो गये सुनहले
बहते सारे हिम-द्वीप ।

···· ····

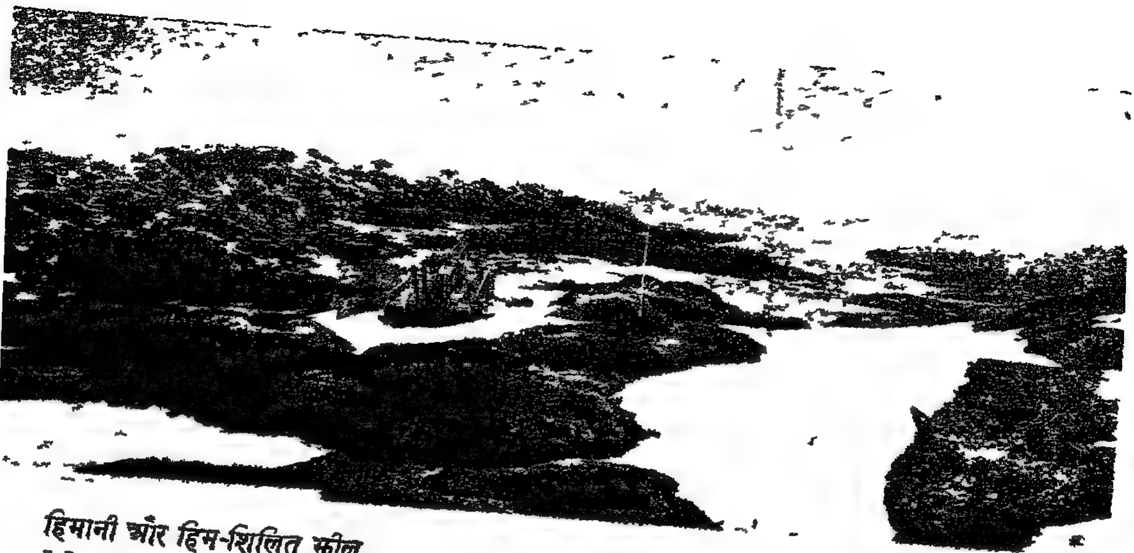
ये हेम-मुकुट हैं केवल :
दूर सूर्यके लीला-स्मितसे शोभन
कौतुक-पुतले ।

इन्हीं कौतुक-पुतलोंकी कल्पना करता हुआ और असंख्य पद-निक्षेपोंकी गूँज सुनता हुआ मैं लौट आया । हिम-सरोवर पिघला नहीं; नीचेकी हिम-शिलाकी तो बात ही दूर ।

नीचेकी हिम-शिला पिघलकर जिस दिन
स्वयं मिलेगी सरसी-जलमें
नव वसन्तको उस दिन
मेरा शीश झुकेगा ।

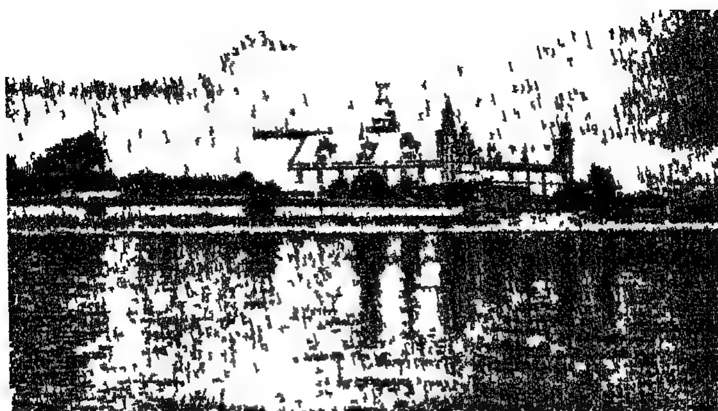
···· ····

क्योंकि तपस्या
चमक नहीं है
वह है गलना···

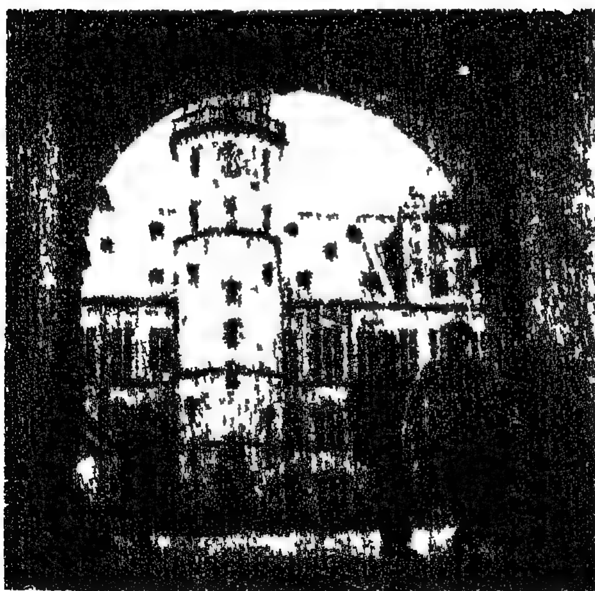


हिमानी और हिम-शिलित झील

[चित्रमें जो यन्त्र दीखता है वह झूला-गाड़ीसे यात्रियोंको शिखरपर ले जानेवाली चरखीको चलाता है]



हैमलेटका दुर्ग—एलिसनोर



एलिसनोर दुर्गका भीतरी प्रकोष्ठ

लौटती बार फिर खनिज-सम्पन्न देशसे होता हुआ आया । जाती बार किरूनाके खनिज लोहेके प्रदेशसे गुजरा था जो ध्रुव-मेखलाके उत्तरमें ही है; लौटती बार फ़ालून होता हुआ आया जो मध्य स्वीडनका खनिज ताँबेका केन्द्र है । उत्तरायणको तबतक एक महीना हो चुका था और ध्रुव-प्रदेश भी दूर रह गया था, इसलिए वहाँ रात नहीं तो साँझका-सा झुटपुटा तो होता ही था और कुछ घण्टोंतक रहता था; खानोंकी भट्टियाँ धुँधले अन्धकारमें चीड़-वनोंके श्यामल आकारोंको और उनके ऊपरके वायुमण्डलको एक अद्भुत ताम्रलोहित आभा दे देती थीं । फ़ालून होता हुआ मैं रात्विक गया जो सिलियान झीलके तट पर है और स्वीडनके लोक-जीवनका एक केन्द्र माना जाता है । इसी झीलके आस-पासके जंगलोंमें कई बस्तियाँ हैं जिनमें अभी तक लोक-समाज बसते हैं और परम्परागत लोक-शिल्प और दस्तकारियोंके सहारे निर्वाह करते हैं । लकड़ी, ताँबा या मिश्र धातु और ऊन, इनसे सम्बद्ध अनेक लोक-शिल्प इस प्रदेशमें जीवित हैं । स्थानीय पैंठ या मेलेमें ये शिल्प-वस्तुएँ बिकने आती हैं । और टूरिस्ट व्यवसायके प्रभावके बावजूद अभी ये मेले अपना लोक-सामाजिक आस्वाद बनाये हुए हैं । रात्विकमें भी उन दिनों मेला था । उसका सहज देहातीपन और रंगीनी भारतके पहाड़ी मेलोंकी याद दिलाती थी । भारतवासीको रात्विकके देहाती कदाचित् कुछ अधिक सभ्य जान पड़ें, लेकिन आनुपातिक दृष्टिसे उदयगिरि (द्वार देश) का भोट मेला दिल्लीसे जितनी दूर है रात्विक अथवा मोराके देहाती मेले स्टाकहोमसे उसकी अपेक्षा कुछ ही कम दूर होंगे ! यों स्वीडन अथवा समूचे स्कैंडिनेवियाकी सांस्कृतिक परम्पराएँ उतनी लम्बी नहीं हैं जितनी भारतकी, और इसलिए एक ही संस्कृतिके आदिम, प्राचीन और आधुनिक छोरोंकी परस्पर दूरी भी उतनी अधिक हो ही नहीं सकती जितनी भारतमें । यह भी सन्दिग्ध है कि स्कैंडिनेवियामें वन-प्रदेशोंके बावजूद संस्कृतिके ऐसे रूप बचे हैं जिन्हें वहाँके काल-व्यासकी दृष्टिसे भी आदिम अथवा प्राक्कालीन

कहा जा सके । वास्तवमें वहाँ 'परम्परागत' और 'आधुनिक'का ही विपर्यय हो सकता है; उससे पहलेकी सीढ़ियाँ वहाँ नहीं मिलेंगी । कदाचित् यही कारण है कि यूरोपके कुछ नये देशोंकी भाँति स्कैंडिनेवियाके देश भी लोक-संस्कृतिके अवशेषोंके संरक्षणके लिए इतने अधिक यत्नशील रहते हैं ।

इस प्रकार लोकोत्तर प्रदेशसे फिर साधारण भूमिपर आ गया । किन्तु लोकोत्तरकी गहरी छाप बनी रही । प्रायः पच्चीस वर्ष पहले जेल-जीवनमें जिस एक प्रश्नको लेकर बहुत सोचा करता था, और किसी कृतिमें निरू-पित करनेके अनेक प्रयत्न करता रहता था—कवितामें, उपन्यासमें, नाटकमें भी !—वह एक नये रूपमें उभर आया था । स्टाकहोममें लिफ़्टसे कूदकर आत्महत्या करनेवालोंकी चर्चा, जीवन और मरणके प्रश्नपर एक स्वीडी कविसे इच्छा-विरुद्ध और उत्तेजित बहसने मेरे चिन्तनको फिर उसी प्रश्नपर केन्द्रित कर दिया था—एकान्तमें मृत्युसे साक्षात् होनेपर कैसा लगता है ? अत्यन्त सूक्ष्म-कालमें तो ऐसी स्थितिमें केवल दुर्दान्त जीवन-प्रेम (या कह लीजिए जीवन-मोह) उभरेगा; अस्तित्ववादी इसी सूक्ष्म क्षणका विश्लेषण करते हैं क्योंकि मृत्यु-साक्षात्का क्षण ही चरम जीवन-बोधका क्षण है । किन्तु क्षणकी बात न सोचकर उस अवस्थाकी बात सोचूँ तब ? मृत्युके साक्षात्के क्षणको नहीं, काल-व्यापी परिस्थितिको अन्य सब परिस्थितियोंसे अलग करके एकान्त भावसे कैसे देखा और दिखाया जाय, यह मैं बराबर सोचता रहा था; और ऐसी परिस्थितिमें उलझे हुए पात्रोंको और सब प्रभावोंसे अलग करनेके लिए मैंने निर्जन द्वीपसे लेकर बन्द हो गयी सुरंग तक अनेक परिस्थितियोंकी कल्पना की थी । लापोनियाके हिम-शिलित एकान्तोंने इस प्रश्नको फिर उभारा । और अन्तमें जब एक स्वीडी लेखिकाने दुःख और यातना सम्बन्धी एक प्रसंगपर बात-चीतके सिलसिलेमें अपना एक अनुभव सुनाया तो सहसा मुझे लगा कि अपनी समस्याके हलके लिए

एक फीकी-सी किरण मुझे दीखने लगी है। यह लेखिका कैंसरके एक दु:साध्य रोगीके साथ लापोनियाके एक पहाड़ी झोंपड़ेमें जाड़ों-भरके लिए बन्दी हो गयी थीं—अनपेक्षित हिमपातके कारण उस झोंपड़ेके आने-जानेके सब मार्ग बन्द हो गये थे। मृत्युकी प्रतीक्षा करता हुआ एक व्यक्ति, और उसे देखता हुआ एक दूसरा व्यक्ति जो उस मृत्युका निवारण भी चाहता था और उसकी कामना भी करता था—मेरी समस्याका चरम रूप, जिसमें वह समस्या सब ओरसे काटकर शून्यमें रख दी गयी थी, सामने था !

किन्तु यह अनुभव भी लोकोत्तर है; और इस समस्याके काल-गत परिणाम भले ही दूसरोंके सम्मुख प्रस्तुत किये जा सकते हों, इस समस्याके साथ कृतिकारकी यात्रा भी एक लोकोत्तर और वर्णनातीत यात्रा है। युधिष्ठिरकी अन्तिम हिमालय-यात्राका वर्णन व्यासने किया है; उनके लिए यह बताना सम्भव था कि कैसे पत्नी और भाई एक-एक करके परिग्रह-से झरते गये। किन्तु अगर युधिष्ठिर इसका काव्य लिखने बैठते तो वह दूसरा होता ! न केवल दूसरा होता, बल्कि वह यात्रान्तका ही काव्य होता, यात्राका नहीं !

और मैं अभी यात्रापर हूँ।....



सागर-कन्या और खग-शावक

अवनीन्द्रनाथ ठाकुरने भारतमाताकी कल्पना गैरिक-वसना तपस्विनीके वेशमें की है; नहीं तो भारतवासियोंके मनमें भी देश-माताका रूप सिंह-वाहिनी दुर्गाका ही एक प्रक्षेपण होता है। ब्रिटेनकी देश-माता ब्रितानिया भी सिंहवाहिनी हैं। जर्मानियाके वाहन रीछ हैं। इसी प्रकार अधिकतर देश देश-माताकी रूप-कल्पना शक्ति अथवा तेजस्विताके किसी प्रतीकके साथ करते हैं।

किन्तु डेनमार्ककी प्रतीक कन्या सागरके किनारे एक चट्टानपर बैठी हुई स्वप्न देखनेवाली किशोरिका सागर-कन्या अथवा जल-परी है।

हम आदि-कवि वाल्मीकिपर गर्व करते हैं, यूनानके लोग आदि-कवि होमरपर; दोनोंने एक-एक महायुद्धकी गाथा लिखी है। ब्रिटेन शेक्सपियर पर गर्व करता है, जो राज-संघर्षोंका नाटककार है।

डेनमार्कको गर्व है अपने परियोंकी कथा लिखनेवाले हांस एंडर्सनपर, जिसे बीते अभी १५० वर्ष नहीं हुए लेकिन जिसकी कहानियोंको चालीस-से अधिक देशोंके बच्चे जानते हैं।

राष्ट्रके साहित्यकार और राष्ट्रकी प्रतीक-मूर्तिमें परस्पर सम्बन्ध है। कोपनहागनकी जल-परी एंडर्सनकी एक कहानीकी नायिका है,* और उसी कहानीने उसे डेनमार्ककी चेतनामें इतना गहरे तक बसा दिया है।

---

*कहानीमें बत्तखके बच्चोंमें मिला हुआ कुरूप शावक सबके व्यंग्य सहता हुआ सुन्दर राज-हंसीमें विकसित होता है; यह हंसी फिर परम सुन्दरी जल-कन्या बन जाती है।

इस आधारपर देशके बारेमें अनेक सिद्धान्त प्रतिपादित किये जा सकते हैं। यह भी सम्भव है कि उनमें कुछ सार हो, और डेनी चरित्रकी कल्पनाशीलता उसका प्रधान नहीं तो एक महत्त्वपूर्ण गुण अवश्य हो। लेकिन ऐसा कोई सिद्धान्त प्रतिपादित करनेकी आवश्यकता नहीं है जो अतिव्याप्ति दोषसे दूषित हो। इतना कहना पर्याप्त है कि डेनमार्कके लोग खुश-तबीयत, मनचले और मिलनसार हैं; और उनकी विनोदप्रियताकी चर्चा पास-पड़ोसके देशोंमें भी होती है। उदाहरणके लिए उनके निकटतम पड़ोसी और जाति-भाई स्वीडी, पड़ोसियोंकी स्वाभाविक ईर्ष्याके बावजूद निरन्तर उनके इस गुणकी प्रशंसा करते रहते हैं।

पशु-पक्षियोंके जीवनमें दिलचस्पी यूरोपके दूसरे देशोंमें भी पायी जावेगी, लेकिन डेनमार्क ही एक ऐसा देश है जहाँ देशके बच्चोंको ही नहीं, विदेशी वयस्क यात्रियोंको भी उत्साहपूर्वक नगरसे ५०–६० मील दूर ले जाया जावेगा—बगुलेका घोंसला देखने!

यों बगुलेका घोंसला है जरूर एक अजूबा। बगुले ऋतुप्रवासी जीव हैं, नियत समयपर उनकी डारें उत्तर और दक्षिणकी ओर उड़ती देखी जाती हैं। डेनमार्कसे उनके गुजरनेका समय ऐसा है कि वहाँ उन्हें नीड़ रचनेके लिए स्थान देखनेकी आवश्यकता होती है। कभी बहुत बड़ी संख्यामें उनकी डारें तटवर्ती सीलैंडपरसे जाती थीं और यहीं अपने घोंसले बनाती थीं; अब बहुत थोड़े घोंसले देखे जाते हैं। एक परिवार एक ही स्थलपर घोंसला बनाता है और प्रतिवर्ष वहीं लौटकर आता है। एक वर्षका शावक अगले वर्षका वयस्क बगुला हो जाता है और डारके साथ उड़ जाता है।

किन्तु दुर्लभ होना ही घोंसलेको अजूबा नहीं बना देता। विशेषता यह है कि ये घोंसले जंगलमें, झाड़ीमें, रेतीमें या चट्टानकी दरारमें नहीं होते, घरोंमें होते हैं; और घरोंमें भी गोखोंमें नहीं बल्कि ठीक चिमनीके ऊपर! घोंसला बहुत बड़ा होता है इसलिए उसे ऐसी जगहकी आवश्यकता भी होती है। बगुलेके घोंसलेके लिए घरकी चिमनीका चुना जाना गृहपतिके लिए

बड़े गर्वकी बात होती है; बल्कि उसे अक्षरशः 'सौभाग्यसूचक' भी मान सकते हैं क्योंकि घोंसलेको देखनेके लिए बड़ी दूर-दूरसे यात्री आते हैं और सीढ़ीसे ऊपर जाकर घोंसला देख सकने या फ़ोटो ले सकनेकी सुविधाके लिए पारितोषिक भी सहर्ष देते हैं। इसलिए गृहपति अपने पक्षधर अतिथि को सब तरहकी सुविधा देता है; गज़-भर व्यासके घोंसलेके लिए उसी मापकी झल्ली चिमनीके ऊपर लगा देता है। और इसका ध्यान रखता है कि अतिथि-युगल और उसके शावकको कोई कष्ट या जोखम न हो।

किन्तु हम जल-परीके पार्श्वमें बसे हुए कोपनहागन तक पहुँचनेसे पहले ही बक-पाँतीके पीछे हो लिये, इसे पाठक बहक जाना नहीं तो भटक जाना ही समझेगा!

[२]

कोपनहागन भी यूरोपके उन नगरोंमेंसे है जिनकी सुन्दरताका आधार मुख्यतया उनकी सफ़ाईमें है। डेनी जाति प्राचीन जातियोंमेंसे एक है, और साहस-कर्मी सागरिकोंकी यूरोपीय परम्परामें डेनियोंका योग कुछ कम नहीं रहा—अनेक नौ-युद्धोंमें वे जयी होते रहे और प्रदेशोंको अधिकृत करते रहे*। इसलिए पुराने दुर्ग, प्रासाद और उद्यान भी डेनमार्कमें अनेक हैं और कोपनहगान भी उनसे रहित नहीं है। फिर भी शहरका रूप प्रधानतया नये स्थापत्यपर आश्रित है। पुराने घर बन्दरगाहकी नहरोंके किनारोंपर हैं; लेकिन घरोंका स्थापत्य अभी तक नगर स्थापत्यका मुख्य अंग नहीं माना जाता क्योंकि दर्शककी दृष्टि पहले राजकीय अथवा सार्वजनिक भवनों-की ओर ही आकृष्ट होती है।

---

* भारतके पूर्वी सागर-तटपर तरंगम्बाडि (अंग्रेज़ी वर्त्तनीके प्रताप-से 'ट्रांकुबार'!) गाँवकी पुरानी डेनी बस्ती और गिरजाघर भी डेनी साहसिकोंके स्मारक हैं।

नगर-भवन, पार्लमेंट भवन, कुछ प्रासाद, गिरजाघर, मूर्त्ति-संग्रहालय आदि गिना देनेके बाद फिर नगरके दो-चार बड़े चौक, उद्यान और बन्दरगाहकी गोदियोंकी चर्चापर उतर आना पड़ता है। या फिर उन नयी बस्तियोंकी ओर ध्यान जाता है जिनके छोटे-छोटे बंगले डेनमार्कके आधुनिक सहकार और जन-कल्याणके आयोजनोंका उदाहरण हैं। इसके बाद विदेशी यात्री अनिवार्यतः शहरके बाहरकी ओर देखता और दौड़ता है। कोपनहगान सुखद और प्रशंसनीय और स्वच्छ है, लेकिन दर्शनीय तो सीलैंडका सागर-तट है, राजकीय मृग-वन है, उद्यानका 'लोक-जीवन संग्रहालय' है, फ्रेडेरिक्सबर्ग और क्रोनबर्ग दुर्ग हैं। नगरमें जहाँ-तहाँ स्थापित मूर्तियाँ और फव्वारे भी दर्शनीय और उल्लेखनीय हैं, किन्तु वे तो नगर-दर्शनकी यात्रामें अनायास ही दीख जाते हैं।

क्रोनबर्ग दुर्ग पढ़े-लिखे भारतीय पाठकोंसे अपरिचित नहीं है। क्योंकि वह हैमलेटका दुर्ग है, जिसे शेक्सपियरने (और, हा हन्त! किशोर साहूने) साहित्यमें प्रतिष्ठित कर दिया है। 'एल्सिनोर' का यह दुर्ग द्विभाजित व्यक्तित्ववाले अभागे राजकुमार हैमलेटका स्मरण तो दिलाता ही है; डेनी राष्ट्रीयतासे और गहरा सम्बन्ध भी रखता है। क्योंकि इसके एक तल-घरमें पौराणिक डेनी महारथी 'होलगर डेन' सोता है, जो डेनमार्कके संकटके समय जागेगा और उसकी रक्षा करेगा।

सागर-तटके उल्लेखसे जो चित्र आँखोंके सामने आता है, डेनमार्कका अधिकांश तट वैसा नहीं है, बल्कि एक उथली स्वच्छ झीलका तट ही जान पड़ता है। इसीलिए सागरकी इस भुजाको सागर कहा भी नहीं जाता, साउंड अथवा सूंड कहते हैं जिसे झीलका पर्याय ही मानना चाहिए। पूर्वी बंगालमें जो 'हाओर' पाये जाते हैं—'हाओर' सागरका ही अपभ्रंश है—वैसा ही जल-प्रसार यह भी है—अन्तर इतना ही है कि इसकी स्वच्छ पारदर्शी नीलिमा हमें तलकी चट्टानें भी देख लेने देती है।

वास्तवमें उत्तरी डेनमार्कको स्वीडनसे पृथक् करनेवाला सागर उथला

भी है और तंग भी। स्वीडी सागर-तटसे तो कोपनहागन भी दीख जाता है। लोग उत्तरी सीलैंडसे दैनिक खरीददारीके लिए भी नावमें बैठकर स्वीडन चले जाते हैं या स्वीडनसे डेनमार्क आ जाते हैं। कुछ चीजें इधर सस्ती हैं, कुछ उधर; इसलिए यह सरहदी व्यापार और आवागमन आसानीसे समझा जा सकता है। दोनों देशोंका परस्पर सौहार्द भी ऐसा है कि सीमाप्रान्तकी साधारण बाधाएँ वहाँ नहीं होतीं।

जितना उथला यह सागर है, उतना ही कम ऊँचा सीलैंडका भू-भाग है। इसीसे सीलैंडके आविर्भावकी पौराणिक कथाका आरम्भ हुआ होगा। डेनमार्ककी देवी गोफियनको वर मिला कि स्वीडनकी जितनी भी भूमिपर वह दिन भरमें हल चला लेगी उतनी भूमि उसे मिल जायगी। अपने चारों पुत्रोंको बैलोंमें परिवर्तित करके गोफियनने हल चलाना शुरू किया, और इस प्रकार सीलैंड डेनमार्कका अंग बन गया।

सीलैंडके तटकी सैर अत्यन्त सुखद और प्रीतिकर है। टूरिस्टोंके लिए उसे आकर्षक बनानेके प्रयोजनसे उसका और भी विकास किया गया है और उसकी सड़कें कांच-सी चिकनी और चमकदार हैं। सड़कके किनारेके चायघर और आमोद-भवन भी सुन्दर और रंगीन हैं, और उनके नाम भी वैसे ही आकर्षक। जिसमें मुझे जानेका सुयोग मिला उसका नाम था 'किस्टेन्स पर्ल'—सागर-तटका मोती। चायघर मोती-सा था या नहीं इसपर विवाद अनावश्यक है, किन्तु उसके बाहर सागरसे उछली हुई डाल्फ़िन मछलीकी जो काँसेकी प्रतिमा स्थापित थी उसकी याद मुझे अब भी हो आती है।

मैं कोपनहागनमें अथवा डेनमार्कमें अधिक नहीं रहा। सच बात यह है कि मेरी डेनमार्क यात्राको मेरी दृष्टिसे देश-यात्रा गिनना ही नहीं चाहिए। स्वीडनसे हालैंड जाते हुए चार-पाँच दिनके लिए रास्तेमें

रुक गया; बस, इतनी-भर मेरी यात्रा थी। लेकिन जो लोग एक महीनेमें संसार-भ्रमण करते हैं, या तीन दिनमें भारत देखते हैं, उनकी तुलनामें तो मैं कुछ समयके लिए डेनमार्कमें बस ही गया था! क्योंकि मैं किसी टूरिस्ट होटलमें नहीं ठहरा, जहाँ रहा वह एक कालेजका छात्रावास था जिसे ग्रीष्मावकाशमें विद्यार्थी ही होटलकी तरह चलाते थे। विद्यार्थी मैनेजरसे बन्धु-भाव स्थापित हो गया। विद्यार्थी टेलीफ़ोन आपरेटर एक युवा लेखक था जिसकी कहानी प्रतियोगितामें पुरस्कृत होकर कई देशोंमें छप चुकी थी और मैंने भारतके एक पत्रमें पढ़ी थी। उसकी पत्नी डेनी रेडियो और टेलीवीज़नमें वाचिका थी। दोनोंके साथ कोपनहागनकी बन्दरगाहकी सैर की, और मल्लाहोंके भोजनालयोंमें—जिन्हें ढाबेका डेनी पर्याय मानना चाहिए—भोजन किया। मेरे प्रवासके चार दिनोंमें एक रविवार था; उस दिन इस दम्पतिके साथ एक मूर्तिकार बन्धुसे उसके देहाती घरमें मिलने गया। दिन-भर वहीं बिताया, आतिथेयके साथ भोजन बनाया, थोड़ी-बहुत चित्रकारी और छीपीगिरी की और एक सहज आत्मीयताका भाव लेकर लौट आया। क्या यह आत्मीय भाव ही मेरी इस उड़ती हुई सैरको (फ़्लाइंग विज़िट, जो कि वैमानिक होनेके कारण सचमुच यथा-नाम थी!) थोड़े दिनकी बसाईमें परिवर्तित नहीं कर देता? जो फ़ोटो वहाँ लिये थे उनका उल्लेख नहीं करूँगा क्योंकि फ़ोटो तो वे लोग विशेष रूपसे लेते हैं जिनके लिए देश-यात्रामें दर्शन नहीं, कर्म प्रधान है ('डूइंग' इंडिया!)। किन्तु चलते समय मूर्तिकार क्लासने अपना एक ठप्पेका चित्र मुझे भेंट किया था, वह अभी मेरे पास है और डेनमार्कसे मेरा सम्बन्ध बनाये हुए है। इतना ही नहीं, छात्रावासके जिस कमरेमें मैं रहता था, उस कमरेमें उसके स्थायी निवासीकी ओरसे आगन्तुक विदेशीके लिए जो सन्देश लिखा हुआ था वह भी मुझे स्मरण है। वह विद्यार्थी कमरा छोड़कर गया था तो उसे खाली नहीं कर गया था बल्कि अपने सामानसे सजाकर रख गया था; इसीलिए आते समय मुझे यही उचित जान पड़ा कि इस सजावटमें भारतीय

सज्जाका भी कुछ योग अपनी ओरसे कर दूँ और साथ ही उस अपरिचित विद्यार्थीके लिए एक सन्देश भी लिखकर रख दूँ—अपने प्रीतिकर प्रवासके लिए कृतज्ञता-ज्ञापन कर दूँ। कमरेकी एक दीवारपर डेनमार्ककी राज-परम्पराका अत्यन्त विनोदपूर्ण चित्र लगा हुआ था—डेनी अपने राज-कुलसे स्नेह करते हैं इसलिए उनकी चर्चा आतंकपूर्वक नहीं बल्कि विनोद-भरी आत्मीयताके साथ करते हैं। इसी चित्रके एक कोनेसे अपना सन्देश अटका कर मैं चला आया। मैं आशा करना चाहता हूँ कि लौटकर वह विद्यार्थी जब भी अपने राजाओंके वंश-वृक्षकी ओर देखकर मुसकराता होगा, तब उसका प्रीति-भाव क्षणभरके लिए भारतकी ओर भी मुड़ आता होगा।

डेनी लोग अपने राजाओंका जो विनोदपूर्ण प्रचार करते रहते हैं उसमें कुछ यह बोध भी है कि राज-कुल टूरिस्ट व्यवसायके लिए लाभकारी होते हैं। जिस धवल-केश आदि-पुरुषसे उनकी राज-परम्परा आरम्भ होती है उसे वे सहज आत्मीयतासे 'बुढ़ऊ ऑर्म' कहते हैं, किन्तु यह सहजता 'अतिपरिचयादवज्ञा' वाली नहीं है। देशके जीवनमें राज-कुलकी देनका इतिहास जाननेपर समझमें आता है कि क्यों डेनी लोग उनपर इतना गर्व करते हैं। पिछले महायुद्धमें, जब डेनमार्कपर नात्सियोंका कब्जा हो गया था, तब राजाका अखण्डित धैर्य सारे देशको साहस और सान्त्वना देता रहा था। इतना ही नहीं, राज-परिवारके लोग अपनेको इस पूर्णताके साथ जन-जीवनमें मिला देते हैं कि अचरज होता है। राजा संगीत-प्रेमी हो यह तो साधारण बात है, किन्तु ऐसा गुणी कलावन्त हो कि नियमित रूपसे संगीत-भवनोंमें जन-साधारणके लिए कार्यक्रम प्रस्तुत किया करे, यह और कहाँ सुना गया है? यों जन-साधारणसे एकात्मता स्कैंडेनेवियाके सभी देशों की परम्परा रही है और स्कैंडेनेवी देशोंके राज-कुल एक दूसरेसे निकट सम्बद्ध हैं भी—बल्कि नार्वेका वर्तमान राजा तो डेनमार्क द्वारा 'भेंट' दिया गया था! एक राजाकी निस्सन्तान मृत्यु हो जानेपर जब प्रश्न उठा कि उत्तराधिकारी कौन हो, तब निकटतम सम्बन्धी स्वीडी राजकुमारको

इसलिए नहीं आमन्त्रित किया गया कि नार्वेको बड़े देश स्वीडनसे थोड़ा डर भी था। नार्वेने डेनमार्कसे एक राजकुमार माँगा और डेनमार्ककी भेंट उसे स्वीकार हुई। किन्तु नार्वेयी राजा हाकोनने अत्यन्त निष्ठापूर्वक अपने नये देशकी सेवा की और इस प्रकार स्कैंडिनेवी देश-परिवारको और भी घनिष्ट आत्मीयताके बन्धनमें बाँध लिया।

क्या उस आत्मीयताके वृत्तको इतना और विकसित नहीं किया जा सकता कि भारत और स्कैंडिनेवियामें परस्पर अनुकूलता बढ़ायी जा सके ? मैं नहीं जानता। लेकिन सागरमें एक बूँद जल झरा देनेवाली धाराकी पत्ती की तरह मुझसे जो बन पड़ा मैं कर आया !



राइनके साथ-साथ

विधिवत् स्वीकृत कार्यक्रमके अनुसार जितना भ्रमण करनेकी अनुमति मुझे है उससे अधिक भ्रमण कर रहा हूँ। दूसरे शब्दोंमें ये जो यात्राएँ कर रहा हूँ इनका यात्रा-व्यय, यात्रा-वृत्ति देनेवाली संयुक्तराष्ट्र संस्थासे नहीं माँग सकता हूँ---वह अपने दैनिक भत्तेमेंसे ही जैसे-तैसे निकालना होगा। यों यह इतना कठिन नहीं है, क्योंकि होटलमें न रहकर छात्रावासमें रहने, और भोजन रेस्टराँमें न कर किसी कैंटीन या नुक्कड़-चौराहेके ढाबेमें कर लेनेसे ही इतनी बचत हो जाती है कि थोड़ा-बहुत घूमने-फिरनेका व्यय निकल आवे। सामानकी विशेष आवश्यकता नहीं पड़ती, कन्धेपर टाँग लिया जानेवाला झोला-भर सामान पर्याप्त है और फ़ालतू सामान तो जहाँ कहीं भी निश्चिन्त भावसे छोड़ा जा सकता है। (जो मुझे जानते हैं वे तो जहाँ-तहाँ बहुत-सा सामान जुटाकर उसे वहीं छोड़कर आगे चल देनेकी मेरी आदतसे भली-भाँति परिचित ही होंगे !)

बाजलसे उत्तरके लिए छूटनेवाली एक पैसेंजर गाड़ीके तीसरे दर्जेके डिब्बेमें रातमें अकेला बैठा हुआ ठिठुर रहा हूँ, इसका यही रहस्य है। यहाँ दर्जेके हिसाबसे तो किराया घटता-बढ़ता ही है, गाड़ीकी रफ़्तारके अनुपातमें भी एक ही दर्जेके किरायेके कई स्तर होते हैं। संयुक्तराष्ट्र संस्थाकी कृपासे अधिकतर यात्राएं विमानसे करता रहा हूँ; जरूरी कामके लिए 'उड़ते फिरना' आवश्यक हो सकता है लेकिन वास्तवमें देश देखना हो तो कुछ धीमी गतिसे और स्थल मार्गसे ही जाना चाहिए।

सूनी अँधेरी रात। ठिठुरन। डिब्बेके कोनेमें सिमटे हुए अकेले व्यक्तिको सूनेपनने मानो और भी घेर लिया है। और गलियारेमें (गाड़ीके सब

डिब्बे एक-दूसरेसे मिले हुए हैं और गलियारेसे होते हुए एक सिरेसे दूसरे सिरे तक आया जा सकता है) भारी पल्टनिया बूटोंकी चाप उस सूनेपनको और भी घना कर रही है। बाज़लसे देर रातको चलना हुआ था; अब रातके अन्तिम पहरमें गाड़ी सीमान्त पार करके जर्मनीमें प्रवेश कर रही है और इस सीमान्तके स्टेशनपर कस्टमवाले पड़ताल करते हुए घूम रहे हैं।

कुछ ऐसा ही सूना और मनहूस वातावरण दो पीढ़ी पहलेकी हिन्दुस्तानी रेलगाड़ियोंके तीसरे दर्जेके डिब्बोंमें मिल जाया करता था। यह उस ज़मानेकी बात है जब रेलगाड़ियोंमें भीड़ नहीं होती थी—जी हाँ, कलजुगके बावजूद ऐसा ज़माना हमने अपनी आँखों देखा था!—और बहुधा बड़े डिब्बेमें भी रात-भर अकेले-दुकेले बैठनेका संयोग हो जाता था। किन्तु यूरोपकी रेलगाड़ियोंमें जब मनहूसियत छाती है तो कुछ ज्यादा मनहूस जान पड़ती है। हो सकता है कि मुझे अजनबी होनेके नाते ऐसा जान पड़ता हो; पर मेरा खयाल है कि यूरोपके अजनबी हिन्दुस्तानके अजनबियोंकी अपेक्षा एक-दूसरेसे ज्यादा अपरिचित होते हैं। पिछले महायुद्धके बाद विशेष रूपसे जर्मनीमें यह अजनबीपन और अधिक हो गया है। जैसे कछुआ बाहरके आघातसे डरकर अपने अवयव भीतर सिकोड़ लेता है, वैसे ही साधारण जर्मन नागरिक जीवनको भीतर-ही-भीतर समेटकर जीनेका आदी हो गया है।

मेरा सामान भी चेक किया जा रहा है। झोला देखकर कस्टमका सिपाही पूछता है, "से तू?"—इतना ही, बस? वह जर्मन है, और पहचानता है कि मैं विदेशी हूँ, शायद इसीलिए मान लेता है कि मुझसे फ़्रांसीसीमें बात करनी चाहिए! मैं उत्तर देता हूँ, "बाक़ी तो मेरे काग़ज़ात हैं।" मेरे हाथका बैग, जिसमें पास-पोर्टके अलावा तरह-तरहके प्रमाण-पत्र और अधिकार-पत्र हैं, मैं उसकी ओर बढ़ा देता हूँ।

वह मुसकराता है; लेकिन उसकी मुसकराहट जैसे वहाँ नहीं है। हाथके इशारेसे मुझे छुट्टी देता हुआ वह आगे बढ़ जाता है। सूनापन फिर उसी

तरह घेर लेता हूँ। कोटका कालर उठाकर मैं गलेको कानों तक ढँक लेता हूँ और जूतेमेंसे पैर खींचकर अपने नीचे दबा लेता हूँ। थोड़ी देर बाद घड़घड़ाकर गाड़ी चल पड़ती है।

किताब बताती है कि इससे आगेका प्रदेश बहुत सुन्दर है। बाज़लसे ही हम लोग राइन नदीके साथ-साथ चले हैं। बाज़लका नदी-तट भी बड़ा सुन्दर है, किन्तु अब हम 'श्याम-वन'के सुन्दर प्रदेशसे गुज़र रहे हैं जो कि भौगोलिक दृष्टिसे भी उतना ही महत्त्वपूर्ण है जितना कि ऐतिहासिक दृष्टिसे। किन्तु सूनी अँधेरी रातमें उस सौन्दर्यको देखनेका कोई उपाय नहीं है। अन्धकारमें सब सौन्दर्य एकसे होते हैं—बल्कि सुन्दर और असुन्दर भी एकसे ही होते हैं!*

लेकिन बीच-बीचमें खिड़कीसे बाहर झाँकता हुआ मैं सोचता हूँ कि स्वयं अन्धकार सब एकसे सुन्दर नहीं होते। घरकी याद मुझे सताये, ऐसा मेरा स्वभाव नहीं है, क्योंकि जहाँ रहता हूँ अपनेको इतना व्यस्त रखता हूँ कि इसकी गुंजाइश ही नहीं रहती। पर यहाँ खिड़कीसे झाँकते हुए सहसा भारतकी स्मृति उमड़कर आती है और आप्लावित करती हुई चली जाती है। यूरोपके अन्धकारकी अपेक्षामें कितना अनिर्वचनीय सुन्दर होता है भारतकी रातका अन्धकार! हमारा आकाश यूरोपके आकाशसे सुन्दरतर होता है, यह पहले भी लक्ष्य किया है; यहाँ रात तारों-भरी कभी नहीं होती, इक्के-दुक्के तारे ही दीखते हैं, और चाँद भी कभी-कभी दीखता है तो प्रायः खोया हुआ-सा। समझमें आता है कि क्यों भारतका चन्द्रमा रजनी-रूपी नायिकाका नायक है, निशानाथ है, राकापति है। पर मैं

---

* अनन्तर इस प्रदेशमें दिनमें भी घूमा; नदी-यात्रा भी की। किताब की बातका आँखों-देखा सबूत पा लिया!

आकाशकी, रातके भी आकाशकी, बात नहीं कर रहा था, अन्धकारकी ही बात कर रहा था। यहाँका अन्धकार रूखा और ठोस होता है, भारतका अन्धकार स्निग्ध और कुछ न दीखनेपर भी मानो पारदर्शी। यूरोपका अन्धकार मानो काली दफ़्तीकी दीवार होता है, हमारा अन्धकार काली मख़मलका पर्दा।

उस मख़मलके मानसिक संस्पर्शसे आप्यायित होता हुआ न जाने कब मैं ऊँघ जाता हूँ। सूनापन, मनहूसियत, ठिठुरन और अकड़न सब एक आकारहीन नीलिमामें विलय हो जाते हैं....

जब जागकर एक लम्बी अँगड़ाईसे बदनके जोड़ खोलता हूँ तब देखता हूँ कि वन-प्रदेश कबका पीछे छूट गया है—राइनका रुख कुछ पश्चिमको हो गया है और हम सीधे उत्तरकी ओर बहे जा रहे हैं। एक छोटेसे वनोद्यानके पाससे होकर गाड़ी मुड़ती है, हम एक नदी पार करते हैं—यह माइन नदी है जिसके किनारे फ्रांकफ़ुर्त बसा है।

मेरी मंज़िल यह नहीं है; पर यहाँ कुछ परिचित हैं जिनसे मिलना है। कुछ परिचित और कुछ परिचितोंके परिचित जिनके नाम पत्र लेकर आया हूँ—पुराने क्रान्तिकारी जिनके नाम इतिहासोंमें लिख लिये गये हैं, जिनकी क्रान्तियाँ अब शायद अर्थहीन हो गयी हैं लेकिन जिनके अपने प्रयत्न कभी अर्थहीन नहीं होंगे—जिनके अनुभव उनके अपने जीवनकी सम्पत्ति तो हैं ही, उन सभीके जीवनको सम्पन्नतर बना सकते हैं जिन्हें उनके निकट सम्पर्कका सौभाग्य मिले।

[२]

फ्रांकफ़ुर्तसे रेलकी पटरी राइनके साथ-साथ कुछ और पश्चिमको मुड़ जाती है और नदीसे आँख-मिचौनी खेलती हुई कोब्लेंजके स्टीमर घाटके निकटसे जाती हुई बॉन पहुँचा देती है। राइन नदीका पाट इधर आकर कुछ चौड़ा हो जाता है और पहाड़ियाँ भी कुछ विरल हो जाती हैं, फिर

भी प्रदेशका रूप बहुत अधिक नहीं बदलता। शिखरोंपर टँगे हुए मीनारदार छोटे-बड़े दुर्ग और उनकी झुकी हुई लाल छतें आकाशकी नीलिमा, वन-तरुओंकी श्यामलता और नदीके जहरमोहरा रंगके बीच अपनी अलग शान रखती है। नदीपर चलनेवाले स्टीमरोंकी झकाझक सफ़ेदीमें जो चटक हलकापन है वह सारे दृश्यकी भव्यताको कम नहीं कर पाता, क्योंकि ये दुर्ग शूर-वीरताके इतिहासके बोझसे उसे दबाये रहते हैं। दुर्ग-मंडित शिखरोंके बीचमेंसे बलखाती हुई नदी मानो बहुतसे पाणि-प्रार्थी सूरमाओंके बीचमेंसे बचकर निकल जानेवाली स्वयंवरा हो। यूरोपकी नदियाँ सभी अपना अलग-अलग प्रभाव रखती हैं। पैरिसकी सेन नदीका तो शहरी अंश ही देखा जो कि नहर-सा बँधा हुआ है और जिसका सौन्दर्य प्रकृतिका नहीं, स्थापत्यका है। रोमके टेवेरो नदका वर्णन अन्यत्र कर चुका हूँ। वियेनाके निकट डोनाउ अथवा डैन्यूब नदको देखकर पहली बार लगा कि वास्तवमें नहर नहीं, नदी देख रहा हूँ। उसका रंग भी कुछ अधिक उज्ज्वल था। उसे 'शाही नदी' कहनेका कारण जितना यह रहा होगा कि वियेना एक साम्राज्यकी राजधानी रहा, उतना ही उसकी नैसर्गिक भव्यता भी। अगर राइन स्वयंवरा युवती है तो डैन्यूब निश्चय ही पृथुलचारिणी राजमहिषी। किन्तु ऐसी उत्प्रेक्षाओंका कोई अन्त नहीं है, और कल्पनाको इस दिशामें छूट दे दी जाय तो नदी-देवताओंका एक नया पुराण बन सकता है।*

---

* राइन नदीका एक वर्णन :

"रोनके समान वेगवती, लोआरके समान चौड़ी, मय्रासकी भाँति पर्वत-वेष्टित, सोम-सी हरित और उर्वरा, टाइबर-के समान ऐतिहासिक, डैन्यूब-सी शाहाना, नील-सी रहस्यमयी, अमेरिकाकी नदियों-सी स्वर्ण-तारा-जटित, दूरतम एशियाकी किसी नदी-सी प्राचीन काव्य-गाथा-मयी!"

—विक्टर ह्यूगो



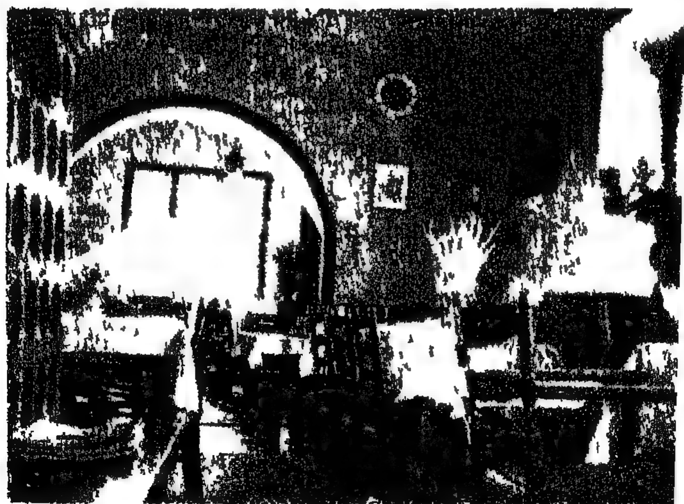
राइन प्रदेशमें : बिंगेरमुक



कार्ल्सरुहे : नगर-भवनका उद्यान



बाड-कोएत्सनाख



डा० फाउस्टका घर, कोएत्सनाख

बॉन पश्चिम जर्मनीकी राजधानी है किन्तु यह गौरव उसने नया ही ओढ़ा है और उसे देखकर अभी तक यह नहीं लगता कि वह वास्तवमें राजनगरी है। देशके प्रधान नगरमें जो गुण होने चाहिए और राष्ट्रीय-जीवनका केन्द्र-बिन्दु होनेका स्वयं जो बोध होना चाहिए उसको ध्यानमें रखते हुए अब भी बर्लिन ही राजधानी जान पड़ती है—वह विभाजित जर्मनीका ही नहीं यूरोपका स्नायु-केन्द्र है।

बॉन शासन-केन्द्र है; पर वह होकर भी राजधानी अभी नहीं बन पाया है। आगन्तुकपर उसका प्रभाव भी राजधानीका-सा नहीं पड़ता; एक परम्परागत प्रादेशिक नगरका-सा ही पड़ता है। शासन-केन्द्र हो जानेके बाद अनेक नये भवनोंका निर्माण वहाँ हुआ है, और नदीके किनारेकी सैर परम्परागत स्थापत्यका आस्वाद नहीं देती; फिर भी शहरका मुख्य भाग मध्य-काल और उत्तर मध्य-कालकी इमारतोंसे भरा है। इनमें मुख्य है रेलवे स्टेशनसे निकलते ही सामने दीखनेवाला बड़ा गिरजाघर या मिंस्टर। शहरकी तंग और घुमावदार सड़कें एक दूसरे युगका स्मरण दिलाती हैं—जब कहींसे चलकर कहीं जा पहुँचनेकी त्वरा भूत-सी सिरपर सवार नहीं थी, और 'जा रहे होने'का सुख 'पहुँचने'के सुखसे किसी तरह कम काम्य नहीं था, बल्कि कुछ अधिक ही होता था क्योंकि वह देर तक रहता था!

बहुत-से पुराने भवन शासकीय कार्यमें लगा लिये गये हैं। कुछ होटल बन गये हैं। जिस होटलमें मैं टिका हूँ वह कुछ तो इसलिए पुराने ढंगका है कि मैं किफ़ायत कर रहा हूँ, पर कुछ उसका कारण यह भी है कि वैसे पुराने मकानमें नये ढंगका होटल हो ही नहीं सकता। सफ़ाई तो आधुनिक स्तरकी है, पर कमरेसे स्नान-घर तककी यात्रा ही जितनी तंग सीढ़ियों और गलियोंसे करनी पड़ती है उसीसे आदमी भटक जाता है! और भोजनके कमरे तक पहुँचनेके लिए जितना उद्यम चाहिए वह शायद ज़ोरकी भूखके बिना कोई भी करनेको तैयार न होता!

यों उस कमरे तक पहुँचकर ही छुट्टी नहीं मिल जाती, क्योंकि भोजन

बड़े तकल्लुफ़के साथ होता है। यों तो जर्मन शिष्टाचारमें तकल्लुफ़ कुछ है भी अधिक; पर बॉनके परम्परागत जीवनका यह भी एक लक्षण है कि वहाँ पुराने ढंगके शिष्टाचारकी परम्पराएँ अभी जीवित हैं। चार आदमी बैठकर बीयर पीते हैं तो प्रत्येक बार गिलास उठाकर परस्पर स्वास्थ्य-कामना करते हैं; इसमें 'प्रोस्त !' कहकर योग दे देना ही पर्याप्त नहीं होता बल्कि खड़े भी होना पड़ता है। शराबके लिए इतनी उठक-बैठक करनी पड़े तो क़वायद करना ही क्या बुरा है ! कलकत्ता विश्वविद्यालयके उन आचार्य महोदयका स्मरण हो आता है जो घरसे विश्वविद्यालय जानेके लिए सियालदहसे जो ट्रामकी पटरीकी लीक पकड़ते थे तो बराबर एक-सी गतिसे ट्राम लाइनके बीचोबीच चलते जाते थे—ट्रामको घण्टियोंकी, चालकोंके चिल्लानेकी, दर्शकोंकी चिन्तित पुकारोंकी उन्हें कोई परवाह न होती थी। लोगोंने जब उन्हें जान-जोखोंकी बात समझाकर किनारेकी पटरीसे चलनेको कहा तब उनका उत्तर शक्तिकी स्वभावगत मितव्ययिताका (जिसे लोग ग़लतीसे आलस्यका नाम दे देते हैं) कितना सुन्दर उदाहरण था : "ओ की मोशाय, एक बार ओठा, एक बार नामा—आमी पारी ना।" सीधी सपाट ट्रामकी पटरीके सहारे चला जाता हूँ, किनारे चलकर कौन बार-बार फ़ुट-पाथपर चढ़ता-उतरता रहे ! आचार्य महोदय बीयर तो नहीं ही पीते थे; किन्तु जर्मनीमें भी जन्मे और पले होते तो इसीलिए न पीते कि कौन बार-बार गिलास लेकर उठक-बैठक करेगा !

होटलके भोजनालयमें मैंने एक ही बार भोजन किया; फिर किफ़ायतके लिए विश्वविद्यालयकी ओरकी छोटी दुकानोंमें ही जाता रहा जहाँ बचत भी थी और तकल्लुफ़से छुटकारेकी आशा भी। यहाँ ग्राहक प्रायः खड़े-खड़े सासेज और तले हुए आलू या इसी प्रकारका दूसरा किफ़ायती भोजन लेते थे, किन्तु साथ बीयरका बड़ा मग अवश्य। मैंने जब पानीका गिलास माँगा तब वेटरने चौंककर मेरी ओर देखा, और फिर कुछ रुककर कहा, "आप बैठ जाइए, पानी मैं वहीं पहुँचा दूँगा।" थोड़ी देर बाद पानीका

गिलास आ भी गया। यूरोपका साधारण भोजन मुझे कम रुचता था, इसलिए मैं अधिक मात्रामें हरी सब्जियोंके अलावा प्रत्येक भोजनके साथ दूध भी लेता रहा; वेटरसे मैंने पूछा कि क्या एक गिलास दूध भी मिल सकेगा? वह बिलकुल स्तब्ध-सा लगभग आधा मिनट तक मेरी ओर देखता रह गया। फिर थोड़ा मुसकराकर उसने जर्मनमें जल्दी-जल्दी कुछ कहा जो मैं समझ न सका, इतना ही समझा कि दूध नहीं मिल सकता। मैंने धन्यवाद कहकर उसे विदा करना चाहा, पर वह जैसे मुझे अपनी बात समझाना आवश्यक समझता था—दूसरी मेज़से वह एक व्यक्तिको बुला लाया जिसने मुझे अंग्रेज़ीमें उसकी बात समझा दी: वेटर यह कहना चाहता है कि "देखिए, महाशय, आपने बीयरके बदले पानी माँगा, वह तो मैंने ला दिया। अब इसीसे आप यह समझ लें कि यहाँ दूध भी मिल जायेगा तो यह आपकी ज्यादती है।" मैंने हँसकर दोनोंको धन्यवाद दिया और छुट्टी पायी। शहरकी गलियोंमें घूमते हुए यह तो देख ही लिया था कि कहाँपर डेरी है; भोजन करके उधरसे होते हुए लौटनेमें कोई कठिनाई नहीं थी।

बॉनको अपने संगीतकी परम्परापर गर्व है। यों यूरोपके क्लासिकल संगीतमें जर्मन संगीत-स्रष्टाओंकी देन सबसे बड़ी है—दक्षिणके संगीत-स्रष्टाओंकी प्रतिभा आपेराकी ओर अधिक झुकी है। किन्तु नगरकी संगीत-परम्पराका सम्बन्ध जहाँ एक ओर स्रष्टासे है, वहाँ दूसरी ओर संगीत-भवनोंसे प्रकट होता है जिनमें नियमित रूपसे शास्त्रीय संगीतके कार्यक्रम प्रस्तुत किये जाते हैं। संगीतके स्रष्टाओंसे बॉनका नाम अभिन्न रूपसे जुड़ा हुआ है क्योंकि यूरोपीय संगीतका कदाचित् सबसे बड़ा नाम बॉनसे सम्बद्ध है। बेटहोवेनका जन्म यहीं हुआ और यहाँका 'बेटहोवेन-भवन' और 'बेटहोवेन संग्रहालय' न केवल उस महान् कलाकारकी स्मृति की रक्षा किये हुए हैं बल्कि इस बातका भी प्रमाण हैं कि नगर उससे अपने सम्बन्धपर कितना गर्व करता है। गर्व अपने आपमें कोई बड़ी बात नहीं है, क्योंकि किसी चीज़के महत्त्वको समझे बिना भी उसपर गर्व किया

जा सकता है, किन्तु स्मृति-भवन और संग्रहालय जिस ढंगसे रखे गये हैं वह सिद्ध करता है कि बॉन निवासियोंकी गौरव-भावना वास्तवमें बेटहोवेन संगीतके प्रति प्रेम और संगीतकारके सच्चे सम्मानका प्रतिबिम्ब है। बेटहोवेन-भवनकी तीसरी मंजिलपर जिस छोटेसे कमरेमें बेटहोवेनका जन्म हुआ उसमें कोई भी परिवर्तन नहीं होने दिया गया है, कोई सज्जा नहीं है, यहाँ तक कि मरम्मतसे भी उसका रूप नहीं बदलने दिया गया है। वुल्फ़की बनायी हुई प्रस्तर प्रतिमा उस कोठरीका एक-मात्र अलंकरण है। किन्तु उसके आस-पासके कमरे मूल्यवान् ऐतिहासिक सामग्रीसे भरे हुए हैं। एक कमरेमें उस वाद्यके पर्दे भी रखे हैं जिसपर बेटहोवेनने बजाना सीखा था। बेटहोवेनकी हाथकी लिखी हुई स्वर-लिपियोंके कई एलबम भी वहाँ हैं। तीन सौके लगभग हस्तलिपियोंका यह संग्रह यूरोपीय संगीतके इतिहासमें अपना विशिष्ट स्थान रखता है। दूसरे कमरोंमें बेटहोवेनका पियानो और विभिन्न तार-यन्त्र भी रखे हैं।

[४]

कार्ल्सरुहे। 'श्याम वन' के छोरपरका छोटा-सा ऐतिहासिक नगर। बॉनसे चलकर फिर एक बार राइनका किनारा देखते-देखते फ्राकफ़ुर्त पार करता हुआ यहाँ आ गया हूँ। विधिवत् कार्यक्रमके आधीन यहाँ आनेका मेरा कोई काम नहीं है; मुझे म्यूनिख पहुँचना चाहिए जहाँपर संयुक्तराष्ट्रसे सम्बद्ध एजेंसी और जर्मन-भारत मैत्री संघ मेरे लिए कुछ कार्यक्रम बना रहे हैं।

लेकिन 'विधिवत् कार्यक्रम' मेरा हो ही क्या सकता है? लेखक हूँ; जो वृत्ति मुझे मिली है लेखक होनेके नाते ही मिली है, और उसका क्या उपयोग मैं करूँगा इस प्रश्नका यही उत्तर मैंने दिया है कि अनुभव-संचयके लिए और यूरोपकी आत्माको पहचाननेके लिए भ्रमण करना चाहता हूँ। पह-

चानका विधिवत् कार्यक्रम क्या हो सकता है ? अनुभव-संचयकी विधि क्या हो सकती है सिवा अनुभव-संचयके ?

और कार्ल्सरुहे एक व्यक्तिका पता लगाने आया हूं। इस व्यक्तिसे भी मुझे कोई काम नहीं है, अगर इतना ही पता लग जाये कि वह जीवित है—बल्कि इतना भी नहीं, इतना-भर पता लग जाये कि उसके बारेमें कुछ भी जाननेका—यह भी जाननेका कि यदि वह जीवित नहीं है तो कब और कहाँ उसकी मृत्यु हुई—कोई उपाय है तो वह भी यथेष्ट होगा। ऐसा क्यों ? वह भी एक पुराना क्रान्तिकारी था—हिटलरके उदयसे पहले-का, उसके उस समयके कुछ सहकर्मी मेरे घनिष्ठ मित्र हैं। हिटलरके उदयके बादसे ही वह बिना कोई निशान छोड़े गायब हो गया था। नात्सी जर्मनीमें इस प्रकार नामशेष या निःशेष हो जाना कोई असाधारण बात नहीं थी। अब उसके बारेमें कुछ भी समाचार एक ऐतिहासिक उप-लब्धि होगी। बल्कि इतना जानना भी उपयोगी होगा कि अब भी ऐसे लापता हो गये व्यक्तिकी खोज हो सकती है।

जहाँ तक अनुभव-संचयकी बात है, क्या इस खोजका उत्तर—कैसा भी उत्तर—मेरे अनुभवकी वृद्धि नहीं करेगा ? मैं तो समझता हूँ कि ऐसे छोटे-छोटे अन्वेषण ही व्यक्तिको समकालीन इतिहासके सजीव सम्पर्कमें लाते हैं, विशेषतः ऐसे व्यक्तिको जो इतिहासकार नहीं, साहित्यकार है; जिसे ऐतिहासिक घटनाके अस्थिपंजरसे नहीं, उसके प्राणोंके स्पन्दनसे प्रयोजन है।

(उस व्यक्तिसे भेंट नहीं हुई। लेकिन उसका पता लग गया। वह उस समय कार्ल्सरुहेमें नहीं था, लेकिन जीवित था और फिर काम करने लगा था—क्रान्ति-कर्म नहीं, कलाकी समीक्षा ! उसके पतेपर चिट्ठी छोड़ कर, और अपने मित्रोंको उसकी सूचना देकर मैंने अपनी खोज समाप्त समझी; चिट्ठीका उत्तर मुझे प्रायः डेढ़ बरस बाद मिला।)

[५]

होटलसे लगा हुआ नगरका उद्यान है जो भारतमें होता तो 'कम्पनी बाग़' कहलाता किन्तु यहाँपर वाल्ड (वन) कहलाकर ही सन्तुष्ट है। आज छुट्टीका दिन है इसलिए तीसरे पहरकी शरद्कालीन धूपमें विहार करनेके लिए आबाल-वृद्ध-वनिता सभी तरहके नागरिक वनके भीतर सलिल तालके किनारे खुली हरियालीमें जुटे हैं—'हरियाली' कुछ पीली पड़ने लगी है। किन्तु उसी भीड़में जा मिलना ज़रूरी नहीं है, क्योंकि पेड़ोंके बीचमेंसे जाती हुई अनेक वन-वीथियोंमेंसे किसी एकको पकड़ा जा सकता है और दूसरे अप्रत्याशित सुन्दर स्थलोंमें पहुँचा जा सकता है। पत्तियाँ भी लाल और सुनहली हो गयी हैं। रातको उनमें धुन्ध भर जाती है, और सवेरे उसकी नमी नीचे जमी हुई पत्तियोंमें बस जाती है। छायावादी कहते हैं कि शीर्ण पत्रोंपर रात अपने आँसुओंकी छाप छोड़ गयी है। किन्तु यह नमी पुरानी पत्तियोंमें वह खमीर उठाती है जिससे वे पत्तियाँ पचित होकर धरतीकी नयी उर्वरा शक्तिमें परिणत हो जावेंगी—उनकी मृत्यु नये जीवनकी भूमिका बन जावेगी। जीवनकी इसी क्रियाकी एक अनिर्वचनीय गन्ध इन पत्तियोंसे उठ रही है। वसन्तके सौरभ दूसरे होते हैं, किन्तु शरद्कालकी वनगन्ध अपना अलग प्रभाव और सम्मोहन रखती है। वह गन्ध एक अकेलेपनकी गन्ध है जो कि वीरान नहीं है, एक स्निग्ध निश्चलताकी जो कि जड़ता नहीं है, जिसकी विमुग्धतामें इसका तीखा बोध है कि हम जीवित हैं, कि हमारी इन्द्रियाँ जागृत हैं, संचरण-शील हैं और नयी संवेदनाके लिए उत्सुक हैं। कितना सार्थक है इन्द्रियोंके लिए वैदिक 'गो' शब्द—वन-भूमिमें उन्मुक्त गायोंकी भाँति ही हमारी इन्द्रियाँ जीवन-क्षेत्रमें अनुभव बीनती हुईं विचरण करती हैं!

शरद्ऋतु। वायुमें हल्की-सी सिहरन है। धूप बहुत जल्दी ही ढल जाती है; और उसकी लालीमें पत्तियोंकी लाली रुपहली जान पड़ने लगती है और फिर धीरे-धीरे काली पड़ जाती है।

शरद्‌ऋतु। घर लौटनेका समय आ गया है।

यायावरमें कोई आत्मावसाद नहीं है। भीतर उमड़े हुए करुण भावको अपने ही पर ढालकर वह कारुण्यका अपव्यय नहीं करेगा····केवल एक गहरा स्पन्दनशील अकेलापन, जिसमें संवेदनकी अतिरिक्त सजगता है, किन्तु मन मानो जड है। देखना है, सुनना है, घ्राण है, स्पर्श है—सभी कुछ है, किन्तु नहीं है चिन्तन····वहाँ केवल स्तब्धता है। जीवन मानो सतहपर आ गया है और भीतर केवल सन्नाटा है।

वनोद्यानसे बाहर नगर-भवनके सामने फव्वारोंपर प्रकाशका खेल सुन्दर है, दूकानोंमें काँचके पीछे सजी हुई वस्तुएँ सुन्दर—या कमसे-कम आकर्षक हैं; रंगीनी और नवीनता लिये हुए हैं। फूल चटकीले हैं।

चौकमें आने-जाने वालों और वालियोंके सेंट और तम्बाकुओंकी अनेक गन्धें, केक-पेस्ट्री और ताजी डबलरोटीकी गन्ध, प्याज और मसालोंके बघारकी गन्धें, तली जाती सासेजकी गन्ध, दूसरे पत्तोंसे अलग चिनारके पत्तोंकी गन्ध, झरते हुए सूखे पत्तोंकी गन्ध और गलते हुए गीले पत्तोंकी सर्वथा भिन्न गन्ध—कैसा गन्ध-संकुल है····।

ट्रामगाड़ियोंका शब्द, ऊँची एड़ियोंकी द्रुत और कठैठी पटा-पट, चपटे और पुरानी तलीवाले जूतोंकी भारी चाप, कहवा-घरोंसे दूध मिलानेवाले यन्त्रोंका सीत्कार और फेंटनेवाले यन्त्रोंकी गूँज, अनेक प्रकारके स्वचालित यन्त्रोंकी खटखटाहट, तश्तरियोंकी खनखनाहट—कैसा स्वर-संकुल····

ठंडे धातुका स्पर्श, रूखे गरम पाइपका स्पर्श, अखरोटके पत्तेका चिकना स्पर्श, बेत वृक्षकी कोंपलका रोमिल मखमली स्पर्श (बेतकी कलीको जर्मनमें 'बेतके बिलौटे' कहते हैं), ऊनी कोटका रोमिल रूखा स्पर्श, होटल-की चाबियोंके साथ लगे हुए प्लास्टिकके टिकटका कठोर और निर्वैयक्तिक स्पर्श, हाथमें लिये हुए बैगके लोहेके हत्थेका उँगलियोंके काटनेवाला कठोर और अत्यन्त व्यक्तिगत स्पर्श—कैसा स्पर्श-संकुल····

और इस बहुविध संकुलसे आक्रान्त तीव्र संवेदनापर एक तीव्रतर संवेदनाका आरोप : लौटनेका, घर जानेका समय आ गया....

घर। कितनी परिभाषाएँ हो सकती हैं इस एक शब्दकी—कितने रूपों और बिम्बोंमें वह मूर्त होकर सामने आ सकता है....एक चिबुक और कंठकी रेखा, जो धीरे-धीरे उभरती और दबती है, जिससे कोई शब्द नहीं फूटते क्योंकि मानो वाणीको ही धीरे-धीरे निगल लिया जा रहा है.... रूखे केशोंकी एक लट, जिससे एक साथ ही धुएँकी और किसी बहुत दिनसे सूखे हुए फूलकी गन्ध उठ रही है....**'पुष्पं प्रवालोपहितं यदि स्यान्मुक्ताफलं वा स्फुटविद्रुमस्थम्'**....याद निजी होती है, और उसके बिम्ब भी निजी होते हैं, इसलिए हर किसीमें घरकी याद अलग ढंगसे उमड़ती है। किन्तु निजीपनका वह क्षेत्र निजी है इसीलिए ओट रहना चाहिए....

[६]

कार्ल्सरुहेका वही वनोद्यान। वही तीसरे पहरकी धूप जो पेड़ोंसे झरते हुए सोनेको थोड़ा और सुनहला कर देती है। उसी सर्पिल तालकी एक भुजा जिसके तलपर गिरते ही झरती पत्तियोंका कम्पन शान्त हो जाता है, और उसके बदले पानीकी सतहपर सिहरनका एक वृत्त बनता है और फैलता हुआ विलीन हो जाता है। अपनी काँपती गति तालको सौंपकर, उसीके फैलते हुए वृत्तमें पत्तियाँ टिक जाती हैं।

और इस दृश्यको देखते हुए मुझे सहसा चेतनाकी एक लहर आप्लावित कर लेती है—कि मैं जीवित हूँ, कि जीवन सुन्दर है, कि जीवित होनेकी अनुभूति सौन्दर्यकी चरम अनुभूति है, कि मैं मरना नहीं चाहता, कि मैं मर जाऊँगा।

मैं मरना नहीं चाहता। और मैं अवश्य मरूँगा।

दोनों ही बातोंमें कुछ भी नया नहीं है। नया ज्ञान मुझे कुछ नहीं

मिला है, केवल नयी चेतना मिली है—दोनों ही बातें अलग-अलग एक नये उन्मेषके रूपमें मेरे भीतर खुल गयी हैं। मानो अस्तित्व-मात्रका निचोड़ उन्होंने मेरे सम्मुख रख दिया है—अस्तित्व-मात्रसे मेरे सम्बन्धका सार-तत्त्व। कि जीना सुन्दर है, कि मैं जीवित हूँ और मरना नहीं चाहता, कि मैं मरूँगा।

यह बोध धूपकी तरह उजला और मर्मस्पर्शी है। उसके साथ कोई व्यथा नहीं है, कोई खंडन या कुंठा नहीं, कोई पराजय नहीं। कदाचित् इसलिए कि वह बोध मेरे अपनेपनका नहीं, अपनेसे बड़े कुछका है, जीवनका है। सुन्दर जीवन है, मैं नहीं; मरूँगा मैं, जीवन नहीं। जीवित होना एक सम्बन्ध है; मरना न चाहना उस सम्बन्धके प्रति एक राग-भाव। मेरे मर जानेपर उस राग-भावका क्या होगा? मैं नहीं जानता; न उसका कोई महत्त्व है। अगर वह भाव बना रहता है, अन्त तक चेतन रहता है और फिर एकाएक बुझ जाता है, तब उसके चुक जानेसे भी क्या? जब तक कि वह राग-भाव मेरे उस भावके बोधसे पहले नहीं चुक जाता, तब तक शंका किस बातकी?…

और उस सम्बन्धका क्या होगा? क्या वह नहीं रहेगा? और क्या उसका 'न रहना' उसके 'रहे होने' को निरर्थक नहीं बना देता? यह भी मैं नहीं जानता; इससे भी कोई अन्तर नहीं पड़ता। जीवन नहीं चुकता; अगर मैं हूँ, जबतक मैं हूँ, तब, और तबतक, मैं सम्बद्ध भी हूँ—असम्बद्ध अवस्थाको मैं जान ही नहीं सकता। इसलिए जहाँतक मेरी बात है, यह सम्बन्ध चिरन्तन है—मैं सम्बन्ध होनेको ही जान सकता हूँ, उसके न होने को जान ही नहीं सकता।…

कार्ल्सरुहेसे स्टुटगार्ट और उल्मके रास्ते होता हुआ मैं म्यूनिख चला गया। इस यात्राका पहला भाग उसी श्याम वनके प्रदेशसे जाता था और सुन्दर था : परवर्ती भाग नीरस लगा। म्यूनिखमें भी ईसर नदीका किनारा और उससे लगा हुआ मैक्सिमिलियन भवनके आस-पासका वनोद्यान सुन्दर

लगा—यहाँ भी शरत्कालका सन्देश पहुँच चुका था। निम्फ़ेनवुर्ग गढ़ और उसका उद्यान भी दर्शनीय और स्मरणीय था। बाक़ी म्यूनिखमें जो कुछ देखा वह स्मरण तो है पर स्मरणीय उसे नहीं कह सकता; उल्लेख-नीय भी वह नहीं है। जो थोड़ा-बहुत कहने योग्य होता वह दूसरे प्रसंगोंमें पहले या आगे कहा गया है।

मेरी डायरीमें टीप है कि 'कार्ल्सरुहेसे स्टुटगार्टकी यात्रामें शरत्काल-का जो सौन्दर्य देखा वह मेरे जीवनमें अद्वितीय है'। यह टिप्पणी वहाँके सौन्दर्यपर भी हो सकती है, और मेरे जीवनानुभवपर भी। कितना महत्त्व उसे दिया जावे यह पाठककी रुचि और उसके विवेकपर है। मेरे एक मित्र हैं जिन्होंने अभी तक पहाड़ नहीं देखा; मैंने एक बार उन्हें और नहीं तो हरद्वार-ऋषिकेश तक ही हो आनेको उकसाया था पर उनकी इस शंकासे निरुत्तर हो गया कि "पहाड़ तो इतना ऊँचा होता है, कहीं अचा-नक ऊपर आ गिरे तो?"



पतझरका एक पात

[वर्लिनकी डायरीसे एक पृष्ठ]

आज जैसे जंगल पहले न देखे हों, ऐसा नहीं, पर पत्तियोंके ऐसे जलते रंगोंका इतना बड़ा पुंज—वह नहीं देखा⋯हमारे यहाँ इक्के-दुक्के पेड़ ऐसे देखनेको मिल जाते हैं, बहुत हुआ तो आठ-दस पेड़ोंकी पाँत। पर इस वनखण्डीमें सभी वृक्ष ऐसी भड़कीली लाल-पीली-सुनहली पोशाक पहने थे, और नीचे बिछे पत्तोंपर पड़ते हुए धूपके वृत्त सोनेके मुकुट जैसे चमक जाते थे। हमारे पैरोंसे रौंदी जाकर पत्तियाँ एक तीखी परन्तु हृद्य गन्ध दे रही थीं—और वह मुझे बचपनकी स्मृतियोंमें डुबाये दे रही थी।

मेरी साथिनने, जो जर्मन है पर यहाँके एक भारतीय विद्यार्थीकी वाग्दत्ता है और इसीसे मेरी परिचित हुई, सहसा कहा, "मुझे बचपनकी याद आ रही है—पिताके साथ इस वनमें घूमने आया करती थी। वह भी ऐसे ही तुम्हारी तरह तेज चलते थे—अब तो लोग तेज चलते ही नहीं।"

मैं कहनेको हुआ, "और लड़कियाँ कौन तेज चलती हैं? खासकर हमारे देशमें तो—"पर चुप रहा, मुसकरा दिया।

सामने कई पैरोंकी चाप सुनाई दी; थोड़ी देरमें पगडंडीके मोड़के आगे लोग दीखे। एक छोटी सैनिक टुकड़ी—नायकके साथ आठ सैनिक जिन्हें शायद मार्चका अभ्यास कराया जा रहा था। वे आकर दूसरी ओर निकल गये, हम आगे बढ़ते रहे।

चुपचाप। पर मौनमें भी मुझे लगा कि कुछ बदल गया है। साथिनसे

पूछा, "क्या बात है ?" और उसके बदले हुए स्वरसे चौंक गया—"इन सिपाहियोंने आकर सब कुछ बिगाड़ दिया !"

मैंने कहा, "वे तो गये। पत्तियाँ तो अब भी वैसी ही रंगीन हैं, और धूप—"

उसने आविष्ट स्वरसे कहा, "नहीं, मैं और सैनिक नहीं देखना चाहती ! क्यों सब जगह सैनिक हैं ?"

प्रसंग बहुत ही नाजुक था—हर जर्मनके लिए होता, पूर्वी बर्लिनमें और भी अधिक क्योंकि वहाँ सैन्य-सत्ता कहीं अधिक दृश्य है, और नागरिक जीवनपर उसकी छाप कहीं अधिक गहरी।''''मैं उससे उसके युद्धकालीन अनुभवोंकी बात पूछना चाहता—पर दूसरेके जीवनको कुरेदनेका अधिकार तभी मिलता है जब पहले सहानुभूतिका सम्बन्ध स्पष्ट हो चुका हो—क्या वैसी स्थिति मेरी है ? मैंने कुछ पूछा नहीं—उस समय''''पर कितने प्रश्न मेरे मनमें थे—हैं''''

वनमें एक छोटी झील मिली, उसमें तिरते पत्तोंको हम देखा किये। जर्मन स्वभावकी कल्पनाशीलता जागी, उसने कहा, "ये पत्तियाँ परियोंकी डोंगियाँ हैं। जाड़ोंमें ये बर्फ़के नीचे छिप जावेंगी; वसन्तमें फिर निकलेंगी। अगले वर्ष—" पर अगले वर्षके उल्लेखसे वह फिर उदास हो गयी।

× × ×

लौटकर विदा लेनेसे पहले मैंने उसे भोजनपर आमन्त्रित किया, और हम लोग एक रेस्टराँकी ओर बढ़े। रास्तेमें उसने कहा, "तुम मुझे जर्मनीसे बाहर कहीं—या अपने देशमें—कोई काम नहीं दिला सकते—मैं झाड़ू-बर्तनके लिए भी तैयार हूँ।"

मैंने चौंककर कहा, "क्यों ?" क्योंकि मुझे मालूम है वह एक दैनिक-पत्रमें काम करती है।

उसने इधर-उधर देखकर कहा, "क्योंकि बर्लिन अब रहने लायक नही रह गया है ! मै शान्तिके वातावरणमे रहना चाहती हूँ ।"

मैने पूछा, "तो क्या पश्चिमी जर्मनीमे नही जाया जा सकता ?"

"पर मै काम लेकर जाना चाहती हूँ—भागकर नही । यहाँ असमझ है—पर शरणार्थी बन जाना भी तो—भविष्य गिरवी रख देना है ।"

मै थोडी देर चुप रहा । फिर मैने कहा, "वे राजनीतिक शरणार्थी तो बडे आदमी होते है—तुम तो एक बिचारी लड़की—"

उसने जोरसे कहा, "नही, नही, नही ! भागकर नही जाऊँगी, शरणार्थी नही बनूँगी ! यहा गुलामी है, पर गुलाम विद्रोह तो कर सकते है, और अनेक साथ होते है । पर शरणार्थी—शरणार्थी सब अकेले होते है—और लड़ेगे किससे ?"

खाने बैठे, तो हमे पासपोर्ट दिखानेको कहा गया—पूर्वी बर्लिनमे बिना इसके खाना नही मिल सकता—क्योंकि अगर पश्चिमी जर्मनीका हो तो उसे खाना नहीं दिया जायगा । पहले चौंका, फिर मुझे स्थिति याद आ गयी, चुपचाप पासपोर्ट दिखा दिया ।

अब रातमे पश्चिमी बर्लिनके इस छोटे होटलकी तीसरी मंजिलसे बाहरका प्रकाश देखता हुआ सोच रहा हूँ : कौन-सा अच्छा है—अपने देशमे दासवत् रहना, या दूसरोंके बीच अनाथवत् ?

वह कहती थी, हिन्दुस्तानी भोले होते है; ठीक ही है; पर भोलापन खोनेको इतिहासने उन्हे बाध्य भी नहीं किया । यह उनका सौभाग्य रहा है । वे यूरोपके असमंजसका हल नही निकाल सकते, पर सहानुभूति तो दे सकते है···

यूरोपका स्नायु-केन्द्र : बर्लिन

नगरका एक बहुत बड़ा चौक। आधुनिक नगरका आधुनिक चौक, जिसका बड़ा होना ही यथेष्ट नहीं होता बल्कि निरन्तर बड़े-पनका बोध कराते रहना भी आवश्यक समझा जाता है।

बाहरी मण्डलमें सभी ओर काँचकी बड़ी-बड़ी खिड़कियाँ, जिनके भीतर प्रकाश जगमगा रहा है। सड़कपर उनसे छनकर आयी हुई रोशनी, सड़ककी बत्तियोंकी रोशनी, दौड़ती हुई मोटरोंकी रोशनी—थिर और पतली धारियोंमे बहती हुई नानाविध दीप्तियोंके जाल। भीतरी मण्डलमे अन्धकार का एक वृत्त, जिसमे हल्का-सा आभास कि कहींपर टूटी हुई महराबें और शिखर हैं; फिर सहसा और भी गहरे अन्धकारके एक कुएँसे निकली हुई गिरजाघरकी एक टूटी मीनार।

बर्लिनके राजमार्ग कुर्फ़ूर्स्टेनडाम ('सरदारोंकी सड़क') के मुख्य चौक में खड़ा हुआ युद्धसे ध्वस्त गिरजाघरका यह खँडहर ज्यों-का-त्यों रहने दिया गया है, और इसके आसपास सब कुछ फिरसे बना और बसा दिया गया है। गिरजाघर एक समय बर्लिनकी बहुमूल्य निधि समझा जाता था; उसके खँडहर भी कम सुन्दर नहीं हैं, और चारों ओर नव-निर्माणसे घिरे हुए होनेके कारण उसका सौन्दर्य मानो और समृद्ध हो आया है—उसका प्रतीकत्व लम्बे संस्कारसे पुष्ट होकर, और साथ ही आस-पासके जीवनसे आग्रहपूर्वक असम्पृक्त होकर, और भी शक्तिशाली हो गया है।

मैं चाहता तो इसमें धर्मकी देश-कालसे ऊपर उठ सकनेकी शक्तिका ही प्रतीक देखता, इससे अधिक कुछ नही। या नैतिक प्रचारका आग्रह कुछ अधिक होता, तो इसे युद्धकी ध्वंसात्मकताका प्रतीक मान लेता। या निरा

सौन्दर्यवादी—यद्यपि कुछ विकृत प्रवृत्तिका !—होता तो मृत्यु या विनाश का सौन्दर्य भी इसमें देख सकता। या चाहता तो गिरजाघरकी स्थितिको यों भी देख सकता कि आस-पास सब-कुछका पुनर्निर्माण करनेके बाद डिठौन-सा गिरजाघरको छोड़ देनेमें बर्लिनवालोंने केवल थोड़ा-सा थिएटर प्रस्तुत किया है—एक नाटकीय विसंगति द्वारा आगन्तुकपर अधिक प्रभाव डालनेका प्रयत्न-भर किया है।

किन्तु मैंने जो देखा, उसके पीछे कहीं यह सब भले ही रहा हो, वास्तवमें इससे भिन्न था। यों किसी भी चीजमें किसी प्रतीकार्थका उद्भावन जितना उस चीजको देखना है उतना ही अपने-आपको प्रकट करना भी; और कोई चाहे तो यत्न कर सकता है कि मुझे गिरजाघरमें जो दीखा उसमें मुझको ही देखे। किन्तु मैंने यही देखा कि यह टूटा हुआ गिरजाघर मानो समकालीन यूरोपका चेहरा है—सुन्दर, खंडित, जीवन और विनाश-के विरोधी आकर्षणोंके कारण भीतर-ही-भीतर खिंचा हुआ; धर्म-विश्वाससे मिलनेवाली अनासक्ति और कर्म-प्रेरणाके आसक्त-भावके विरोधी दबावोंसे तिलमिलाया हुआ और बेचैन; और रातमें भी प्रखर आलोकसे ऐसा आलोकित कि उसे अनदेखा नहीं किया जा सके।...

यूरोपमें प्रवेश करनेके कुछ दिन बाद ही मैंने किसीसे कहा था कि भारतीय चेहरे स्वच्छ और शान्त होते हैं किन्तु यूरोपीय चेहरे अनिवार्यतया संघर्ष-विकृत। किसी भी साधारण स्थापनाकी तरह इसमें भी सच और झूठ दोनोंका अंश है; लेकिन कुल मिलाकर अन्ततक यही भाव बना रहा और अब भी बना है। और मुझे ऐसा लगा कि जिस प्रकार यूरोपके संघर्ष-का केन्द्र बर्लिन रहा और है, उसी तरह यूरोपका असली चेहरा मूलतः बर्लिनका चेहरा है।

और गिरजाघरका आलोक-मंडित, खंडित शिखर मानो इस संघर्ष-विकृत चेहरेका प्रतीक बना खड़ा था।

यह कदाचित इसी पहचान या कल्पित भावनाका प्रभाव था कि बर्लिन-प्रवाससे जो कुछ मैं संचित करके लाया उसमें दृश्योंकी स्मृतियाँ प्रधान नहीं हैं। बल्कि अनुभूतियोंकी या वार्तालापोंकी स्मृतियाँ ही उभर कर सामने आती हैं। यह नहीं कि वहाँ घूमा कम, या कि वहाँ देखनेको कम था, यही कि देखी हुई प्रत्येक वस्तुके साथ किसी मानव-व्यक्ति—या व्यक्ति समूह, जीवित या मृत—की अनुभूतियाँ इस प्रकार गुँथी होती थीं कि आँखोंसे ग्रहण की हुई छापकी अपेक्षा कानों द्वारा ग्रहण की गयी छाप सदैव अधिक गहरी होती थी।....एक झील देखने गया था, झील बहुत सुन्दर थी और पहले पतझरके रंगोंने उसके किनारे और भी सुन्दर बना दिये थे, लेकिन उसे स्मरण करता हूँ तो आँखोंके सामने उतना स्पष्ट कुछ नहीं आता, अपनी मार्ग-दर्शिकाकी कही हुई बातें ही कानोंमें अधिक स्पष्ट गूँजती हैं। पानीमें सूखते पत्तों और अधनंगी डालियोंकी काँपती छायाएँ देखकर वह अर्द्ध-स्फुट स्वरोंसे जिस कल्पना-लोककी बात करती रही उसमें जिस गहरी हताशाका अवचेतन भाव मैं लक्षित कर सका था वही मेरे सम्मुख आती है।....वन-प्रदेशमें एक छोटे-से कहवा-घरमें बैठकर काफी पी थी, लेकिन स्मरणमें केवल उस वेटरका चेहरा सामने आता है जिसने काफी लाकर मेजपर रखी थी। कोई कारण नहीं था कि उसे मेरे ऊपर सन्देह हो, या मुझसे डर हो; लेकिन यह स्पष्ट था कि जिस दुनियामें वह रहता था उसमें जो प्रतिदिन होता है उससे भिन्न कुछ भी होना, (जैसे मुझ-से विदेशीकी उपस्थिति) केवल अनिष्ट ही हो सकता था: आशा कहीं नहीं थी, डर ही डर था—यद्यपि लाउड-स्पीकर निरन्तर चिल्लाते रहते थे कि कि आशावादी न होना जीवन-द्रोही होना है।....एक 'नाइट क्लब'में गया था; नाइट-क्लबका वातावरण और ही होता है, और मेरे लिए तो वह वैसे दृश्यका पहला अनुभव था, लेकिन पहले याद आता है यही कि कोई मुझसे कह रहा है, "सारे पूर्वी बर्लिनमें यही एक जगह है जहाँ शासनके बारेमें मजाक किया या सुना जा सकता है।"

निस्सन्देह मैं पूर्वी और पश्चिमी बर्लिनके अनुभवोंको मिला गया हूँ। निस्सन्देह दोनों खण्डोंके वातावरणमें आकाश-पातालका अन्तर है, और पूर्वी और पश्चिमी जर्मनीका जीवन शायद सर्वत्र इस अन्तरको प्रतिबिम्बित करता है—पूर्वी जर्मनीसे मेरा परिचय नहीं है, केवल उसकी राजधानी पूर्वी बर्लिनसे है। लेकिन पूर्व और पश्चिमके ये भेद बादकी बातें हैं, और एक हदतक बाहरसे रोपी हुई शक्तियोंके दबावके परिणाम हैं। एक दूसरा आयाम भी है जिसमें यह अन्तर महत्त्व नहीं रखता, क्योंकि यह स्वयं परिणाम है। बर्लिनका, या जर्मनीका, या यूरोपका चेहरा अगर दो विरोधी शक्तियोंके संघर्षसे विकृत, भिदा हुआ चेहरा है, तो इसीलिए कि यूरोपीय जीवनकी जिस आधार-भूमिपर वह खड़ा है वही विभाजित और अन्तर्विरोधसे फटी हुई है। बर्लिन यूरोपका स्नायु-केन्द्र है, और जिस स्नायु-जालका वह केन्द्र है वह रुग्ण है, अति-संवेदनशील और असहिष्णु है; जरा-जरासे आघातसे झनझना उठता है और विश्राम कभी नहीं कर पाता, इसीलिए निरन्तर और भी क्लान्त, और भी असहिष्णु, और भी विकृत संवेदनवाला होता जाता है।....

बर्लिनकी वर्तमान स्थितिसे जो परिचित नहीं हैं उन्हें उसे ठीक-ठीक समझानेके लिए अवकाश चाहिए। संक्षेपमें यह, कि जर्मनी दो भागोंमें बँटा है जो अलग-अलग देश और राष्ट्र माने जाते हैं। पश्चिमी जर्मनीकी राजधानी बॉन है, पूर्वी जर्मनीकी बर्लिन। महायुद्धके बाद बर्लिनपर चार महाशक्तियोंका संयुक्त सैनिक शासन होता था; अनन्तर ब्रितानी, फ्रांसीसी, अमेरिकी सैनिक अधिकारियोंने सैनिक नियन्त्रण हटाकर अपना खण्ड नगर शासनको सौंप दिया; दूसरी ओर रूसी खण्डमें रूसके संरक्षणमें पूर्वी जर्मनीकी सरकार स्थापित हुई और पूर्वी जर्मनीकी राजधानी इसी खण्डमें है।

कानूनकी दृष्टिसे बर्लिन खुला शहर माना जाता रहा, अर्थात् उसके एक खण्डसे दूसरे खण्डमें जानेपर कोई नियन्त्रण या प्रतिरोध न था। बीच-बीचमें कठिनाइयों और संघर्षोंके बावजूद यह स्थिति बनी रही है। कहनेको बर्लिन एक और अविभाजित है; और आने-जानेपर किसी तरहकी कोई रोक नहीं है; लेकिन वास्तवमें दोनोंके बीचमें कितनी गहरी खाई है यह वहाँ पहुँचकर ही जाना जा सकता है। शासनिक स्तरपर जो भेद है, वैचारिक अथवा मनोवैज्ञानिक खाई उससे भी कहीं गहरी है। बल्कि प्रशासन अथवा अर्थ-व्यवस्थाके जो भेद दीखते हैं उनके मूलमें यह मानसिक भेद ही है।

पश्चिमी बर्लिन सम्पन्नताकी और एक आश्वस्त यद्यपि सतर्क आशा-वादकी प्रतिमूर्ति है। उसकी भरी-पूरी दुकानोंमें नाना प्रकारका माल है, बाज़ारोंमें चहल-पहल है। पूर्वी बर्लिनकी दूकानोंमें सजावट बिलकुल नहीं है क्योंकि माल भी कम है; व्यापार बेचनेवालेकी ग़रजसे नहीं, खरीदने-वालेकी ग़रजसे चलता है। पसन्दकी गुंजाइश नहीं है; खाने-पीनेकी चीज़ें सरकारी दूकानोंसे मिलती हैं और उसके बाद बुनियादी आवश्यकताओंकी पूर्त्ति सरकारी या व्यवसायी दुकानोंसे होती है। पश्चिमी बर्लिनमें जैसे उत्साह और चहल-पहल दीखती है, पूर्वी बर्लिनमें उसी तरह एक सशंकता; मानो सारा नगर टोह-टोहकर डरता-डरता क़दम रख रहा हो। बाहरी व्यक्तिको स्पष्ट दीख जाता है कि युद्ध और पराजयके बादके अनिवार्य अनिश्चयने पश्चिममें फिर एक धैर्ययुक्त साहसका रूप ले लिया है, किन्तु पूर्वमें वह एक कसमसाते आतंकमें बदल गया है।

एक शहरको दोमें बाँटनेवाली इस मानसिक दीवारके स्थूल और वास्तविक धुस्स जगह-जगह दीखते हैं। पश्चिममें उस गिरजाघर जैसे दो-चार स्थलोंको छोड़कर सब कुछ फिरसे निर्मित हो गया है। इसके विपरीत पूर्वमें सरकारी इमारतों और 'स्तालिन आली' जैसे दो-एक राज-मार्गोंको छोड़कर नगरका अधिकांश वैसा ही ध्वस्त और खण्डित पड़ा है। पूर्व और

पश्चिमकी सीमा-रेखापर सैनिक पंक्तियाँ बैठानेकी कोई आवश्यकता नहीं है क्योंकि ध्वंसावशेषोंकी एक अटूट रेखा ही सीमा बना देती है। कहनेको यातायातपर कोई रोक न होनेपर भी, नगर रेलवेको छोड़ यातायातका कोई साधन ऐसा नहीं है जिसका एक खण्डसे दूसरे खण्डमें जानेके लिए उपयोग किया जा सके। पश्चिम बर्लिनकी टैक्सी, सीमासे सौ गज़ पहले रुककर सवारी उतार देती है; वहाँसे पैदल सीमाके दूसरी ओर सौ गज़ जाकर दूसरी टैक्सी ली जा सकती है—अगर मिल जाए तो! मुझे अपने बीस-पच्चीस फेरोंमें कभी भी पूर्वी बर्लिनमें टैक्सी न मिल सकी; पैदल प्रवेश करनेके बाद मीलों पैदल ही घूमा और अन्तमें रेलगाड़ीसे वापिस लौट आया। नगरके दोनों खण्डोंमें टेलिफ़ोन व्यवस्था है, लेकिन एक ओरसे दूसरी ओर टेलिफ़ोनका सम्बन्ध नहीं है। शहरके दोनों भागोंसे अलग-अलग दुनियाके अधिकतर देशों और नगरों तक टेलिफ़ोन किया जा सकता है लेकिन पूर्वी बर्लिनसे पश्चिम या पश्चिमी बर्लिनसे पूर्व टेलिफ़ोन नहीं किया जा सकता। इतना ही नहीं; बाहरी आदमी पूर्वी बर्लिनमें भी किसी-को टेलिफ़ोन नहीं कर सकता क्योंकि टेलिफ़ोनकी कोई डाइरेक्टरी वहाँ प्रकाशित नहीं की जाती। यदि आप पहलेसे कोई नम्बर जानते हों तो बात दूसरी है; नहीं तो एक मात्र उपाय यह है कि आप डाकके पतेसे पत्र डाल दें और अपना पता दे दें। अपना टेलिफ़ोन नम्बर भी आप सर्वदा नहीं दे सकते क्योंकि होटल तकमें ऐसा हो सकता है कि आपको नम्बर न बताया जाय, पूछनेपर यही उत्तर दिया जाय कि आप पता दे दीजिए; जिससे आप सम्पर्क करना चाहते हों वह स्वयं टेलिफ़ोन कर लेगा।

पश्चिमी बर्लिनके चौकोंमें उद्यान हैं, बच्चे खेलते हैं, अच्छी पोशाकों-में स्त्रियाँ घूमती हैं, हँसी-मजाकके स्वर सुनाई पड़ते हैं। पूर्वी बर्लिनके चौक अकेले और सपाट और सूने होते हैं; और उनके चारों ओर फहराते झण्डे और बड़े-बड़े अक्षरोंमें लिखे हुए जयकार और नारे उस सूनेपनपर और अधिक बल देते जान पड़ते हैं। कभी-कबाह जो सैनिक या प्रदर्शन-

भागी चौकमें भर जाते हैं और फिर बिखर जाते हैं उनसे भी चौकोंका स्वभाव नहीं बदलता। पश्चिमके चौक सम्मेलनके लिए, आमोद-प्रमोदके लिए हैं; पूर्वके चौक प्रदर्शनके लिए, आन्दोलनके लिए।....

पश्चिममें क्रय-विक्रयपर कोई प्रतिबन्ध नहीं है, विदेशी मुद्रा भी साधारण नियमानुसार बैंकोंमें बदली जा सकती है। पूर्वी और पश्चिमी जर्मन मुद्राका भी विनिमय निर्बाध रूपसे होता है; खरीद और बेच दोनोंके लिए एक पश्चिमी मार्क (जो लगभग सवा रुपयेके बराबर होता है) साढ़ेचार पूर्वी मार्कोंके बराबर समझा जाता है। यही विनिमयकी सरकारी दर है और यही आनुपातिक व्यापारिक मूल्य। पूर्वी बर्लिनमें विनिमयपर कड़ा प्रतिबन्ध है। कोई विदेशी मुद्रा सरकारी बैंकको छोड़कर कहीं भी परिवर्तित नहीं की जा सकती; और वह भी वहाँकी सरकारी दरसे, जिसके अनुसार एक पूर्वी मार्क एक पश्चिमी मार्कके बराबर गिना जाता है—अर्थात् कोई भी विदेशी सिक्का या पश्चिमी मार्क भी पूर्वी बर्लिनमें भुनाने पर उसका एक चौथाईसे कम मिलता है—रुपयेमें साढ़े-बारह आने भुनाईमें कट जाते हैं।

नगरके दो भागोंमें मुद्राके सम्बन्धमें दो ऐसी भिन्न व्यवस्थाओंके कैसे विसंगत परिणाम होते हैं इसका ब्यौरा देना यहाँ आवश्यक नहीं है। उससे अपनी रक्षाके लिए पूर्वी बर्लिन यह व्यवस्था करता है कि किसी विदेशीसे अपनी मुद्रा भी नहीं लेता और पश्चिम जर्मनीकी मुद्रा भी नहीं; केवल डालर या स्टर्लिंग माँगता है। जर्मन मुद्रा—पूर्वी या पश्चिमी—केवल उस दशामें स्वीकार की जाती है जब वह पूर्वी बर्लिनके सरकारी बैंकमें डालर अथवा स्टर्लिंग देकर प्राप्त की गयी हो और वहाँसे इसका प्रमाण-पत्र भी लिया गया हो जो कि साथ दिखाया जा सके; अर्थात् प्रकारान्तरसे फिर केवल डालर या स्टर्लिंग ही स्वीकार किया जाता है।

विदेशीको किसी भी दुकानमें कुछ भी खरीदनेके लिए पासपोर्ट दिखाना पड़ता है। अर्थात् समझ लीजिए कि अपरिचित हर किसीको पासपोर्ट

दिखाना पड़ता है—क्योंकि पासपोर्ट देखकर ही तो यह निश्चय हो सकता है कि कौन विदेशी है ! होटलमें भोजन करनेके लिए या सिगरेट खरीदने तकके लिए पासपोर्ट दिखाना पड़ता है। विदेशी पासपोर्ट होनेपर होटलमें खाना केवल तब दिया जायगा जब विदेशी उसका दाम डालर या स्टर्लिंग में चुकानेको तैयार हो—या अगर जर्मन मुद्रा दे तो उपर्युल्लिखित प्रमाण-पत्रके साथ—अर्थात् प्रमाण-पत्र दिखानेके बाद उसे यह सुविधा दी जा सकती है कि साढ़े चारगुना दाम देकर भोजन कर ले। यह सुविधा भी विदेशियोंके लिए है; जर्मनोंके लिए नहीं—पश्चिमी जर्मनीका पासपोर्ट दिखानेपर कोई भी जर्मन मुद्रा देनेकी सुविधा नहीं दी जायगी। मुझे एकाधिक बार यह अनुभव हुआ कि पश्चिम जर्मन नागरिकके साथ पूर्वी बर्लिनके होटल या कहवाघरमें जानेपर साथीको बिना भोजन किये बैठना पड़ा। फलतः पूर्वी बर्लिनमें मैं या तो किसी पूर्वीके साथ ही भोजन करने जाता, या कोई पश्चिमी व्यक्ति साथ होनेपर पश्चिम बर्लिन लौटकर ही भोजन करता। पश्चिम बर्लिनमें पूर्व या पश्चिम दोनोंके नागरिक बिना पासपोर्ट दिखाये भोजन कर सकते थे और किसी भी मुद्रामें नियत विनिमय दरपर दाम चुका सकते थे। पश्चिम बर्लिनमें भोजन करनेका संयोग पूर्व बर्लिनके लोगोंके लिए प्रीतिकर ही होता था क्योंकि एक तो पश्चिममें भोजनका वैविध्य सम्भव था; दूसरे वहाँका वातावरण निःशंक और स्वच्छन्द होता था और उसमें खुलकर बातचीत हो सकती थी। पूर्वी बर्लिन में अनेकों बार यह अनुभव हुआ कि किसी परिचितसे कोई प्रश्न पूछनेपर वह एक बार सतर्क भावसे इधर-उधर देखकर कहता, "चलिए, उस तरफ़ चलें; वहीं बातें करेंगे।" 'उस तरफ़', अर्थात् पश्चिमी बर्लिनमें, जहाँ विदेशीसे (या स्वदेशीसे भी !) सहज भावसे बातचीत हो सकती है और अपने विचार प्रकट किये जा सकते हैं....

एकबार मुझसे पूछा गया कि मैं 'हायो' नामके नाइट-क्लबमें गया हूँ या नहीं ?

मेरे नकारात्मक उत्तर देनेपर फिर पूछा गया कि क्या मुझे नाइट-क्लबमें जानेपर एतराज़ है ? क्या मैं उसे अनैतिक समझता हूँ ?

मैंने उत्तर दिया कि ऐसी कोई बात नहीं है; मुझे नाइट-क्लबका अनुभव नहीं है, न उधर विशेष रुचि है। थोड़ा-सा कौतूहल है अवश्य, पर ऐसा नहीं कि उसे शान्त किये बिना मैं अपनेको अज्ञ समझूँ, या मानूँ कि मुझमें बौद्धिक जिज्ञासा नहीं है।

मुझे कहा गया कि नैतिक आपत्ति न होनेपर मुझे 'हायो' में अवश्य जाना चाहिए। क्यों ? इसलिए कि पूर्वी बर्लिनमें, और शायद समूचे पूर्व जर्मनीमें वह एक मात्र जगह है जहाँ शासन और शासकोंके बारेमें मज़ाक सुना जा सकता है ! "पश्चिममें लोग शासनके बारेमें हँसी-मज़ाक करते हैं और प्रधान-मन्त्री या मन्त्रि-मण्डलपर व्यंग्य कर सकते हैं; लेकिन 'यू कांट मेक जोक्स एबाउट उलरिश ऑर पिएक'"।

कहना न होगा कि 'हायो' नाइट-क्लबकी इतनी सिफ़ारिश काफ़ी थी। मैं दो बार वहाँ गया भी। दीप्त अन्तरंग वातावरण; शराबकी भाप और तम्बाखूके धुएँकी गन्धाती धुन्ध; थोड़ी देरके लिए स्नायविक तनावको शिथिल करके मानवीय हो गये चेहरे; हल्का-फुल्का संगीत; बीच-बीचमें वैसा ही हल्का नृत्य। ग्यारह और साढ़े ग्यारहके बीच दस-पन्द्रह मिनटका हास्य-व्यंग्यका वह कार्यक्रम जिसके लिए 'हायो' की इतनी प्रसिद्धि थी और जिसके कारण सब लोग वहाँ एकत्र होते थे। दो या तीन व्यक्ति यह कार्यक्रम उपस्थित करते थे। समकालीन भारतमें ऐसे कोई कार्यक्रम नहीं होते जिनकी इससे तुलना की जा सके; किन्तु गयी पीढ़ी तक उत्तर भारतमें जो स्वाँग होते थे, या पूर्वी प्रदेशमें भाँड़ लोग जैसे कार्यक्रम प्रस्तुत किया करते थे, जिन्हें वे स्मरण हैं वे जान सकेंगे कि किस चुटीले ढंगसे समकालीन शासक-वर्गपर व्यंग्य किया जाता था। उससे अधिक गहरा कुछ 'हायो' में नहीं था, लेकिन जो था वह उससे कम मनोरंजक भी नहीं था, और इसलिए और भी अधिक आकर्षक था कि परिष्कृत होने-

के साथ-साथ वह इतना दुर्लभ था। निरानन्द जीवन-संघर्षमें बँधे हुए देशमें कैसे इस एकमात्र स्थानमें राजनैतिक व्यंग्योक्तिकी स्वाधीनता बची रह गयी है, इसकी पड़ताल करनेपर अनेक प्रकारके उत्तर मिले। एक उत्तर यह था कि नाइट-क्लबका प्रवासी इटालियन मालिक स्थानीय पुलिसको खिला-पिलाकर अपना व्यवसाय करता है और धन कमाता है। दूसरा यह था कि सरकार भी यह समझती है कि देशके गलाघोंट वातावरणमें कहीं तो हँसनेकी छूट होनी चाहिए, और व्यंग्य-प्रवृत्तिको एक जगह केन्द्रित कर देनेसे अन्यत्र उसके दबावसे बचाव हो जाता है। अर्थात् 'हायो' एक प्रकारका 'सेफ़्टी वाल्व' है जो बर्लिनका बायलर फट जानेकी आशंकाको दूर करता है। तीसरा उत्तर यह था कि ऐसे एक स्थानके द्वारा सरकारके लिए जासूसीका काम आसान हो जाता है—सभी असन्तुष्ट लोग वहाँ जुटते हैं और इस प्रकार अपने-आप उनकी सूची तैयार हो जाती है। अर्थात् 'हायो' वास्तवमें खुफ़िया–पुलिसके एजेंटका काम करता है।

कौन-सा उत्तर सच था, मैं नहीं जानता। सम्भव है कि तीनों ही ग़लत हों। लेकिन तीनोंमेंसे कोई भी सच हो सकता है। और यह भी असम्भव नहीं है कि तीनों सच हों, क्योंकि कोई बुनियादी विरोध उनमें नहीं है।

उत्तर जो भी हो, उल्लेख्य वह वातावरण है जिसमें ऐसी सम्भावनाएँ हो सकती हैं और 'हायो' जैसी संस्थाको इतनी सफलता मिलती हैं।*

× × ×

डायरीसे कुछ उद्धरण :

'हम लोग पुराने देशके वासी हैं। पुरानेको मानते बहुत हैं, लेकिन आकर्षण हमारे लिए नयेका ही अधिक होता है। यूरोपमें औसत व्यक्तिके

---

* यह नाइट-क्लब सन् १९५९ में बन्द कर दिया गया; उसका मालिक पश्चिम जर्मनीमें है।

लिए भी पुरानेका आकर्षण आश्चर्यजनक रूपसे बलवान् होता है। और पुरानेसे मतलब केवल ऐतिहासिक-पौराणिक या धार्मिक महत्त्वकी चीज़ोंका नहीं है—क्योंकि उस तरह तो हम भी 'पाण्डवोंके क़िले' और 'सीताकी नहानी' और 'सिकन्दरा' और 'ताजमहल'की ओर आकृष्ट होते हैं। किन्तु यूरोपमें 'पुराने'के अन्दर पुराना सारा जीवन भी आता है। एक तरहसे कहा जा सकता है कि यूरोपीयकी रुचि शुद्ध सामाजिक, सांस्कृतिक प्राचीन की ओर अधिक है जबकि हमारी रुचि पौराणिक-ऐतिहासिककी ओर है। पुराने शहरके पुराने मुहल्ले, पुरानी गलियाँ, पुराने गिरजाघरोंके चौक, खँडहरोंमें चले आते पुराने भठियारखाने—इन सबके प्रति यूरोपमें आश्चर्यजनक कौतूहल होता है। इसका कारण शायद यह है कि वहाँकी पुरानी संस्कृति, यान्त्रिक उन्नतिके दबावसे तेज़ीसे मिटती जा रही है, और लोगोंमें उसका दर्द बहुत है। रोम और नैपोलीसे लेकर स्टाकहोमतक, शहरके पुराने भागोंकी गलियोंके प्रति एक-सी ममता और लगाव पाया जाता है; और ऐसी गलियोंमें निरुद्देश्य भटकनेका अवसर मिलनेपर लोग उसका पूरा उपयोग करते हैं। मानो एक खोयी हुई, काल-निरपेक्ष नहीं तो मन्द-गति संस्कृतिके लिए सब तरस रहे हों····और हम ? मुझे याद आता है, दर्शनका एक फ्रांसीसी प्रोफ़ेसर एक भारतीय दूतावासमें पूछने गया था कि क्या भारतमें भारतीय दर्शनके सम्बन्धमें कोई नयी पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं जिन्हें वह अपने पुस्तकालयके लिए मँगा सके, तो भारतीय सांस्कृतिक अधिकारीने सगर्व उत्तर दिया था, "दर्शन ? आधुनिक भारतमें हमारी प्रवृत्ति ऐसी चीज़ोंकी ओर नहीं है। हम बड़ी तेज़ीसे उन्नति कर रहे हैं !"

उन्नति !····'

'बर्लिन चिड़ियाघरके रेलवे स्टेशनसे रेलमें सवार होकर पूर्वी बर्लिन

के फ्रीडरिशस्ट्रासे स्टेशनपर उतरा, जहाँ मार्ग-दर्शिका उ० से भेंट हुई। बर्लिनका संग्रहालय देखा, वहाँ संगृहीत भारतीय चित्रोंका सूचीपत्र लिया, पश्चिम एशियावाला कक्ष देखा जो एक समय सारे यूरोपमें प्रसिद्ध था किन्तु जहाँ अब देखनेको बहुत कम है क्योंकि बर्लिन संग्रहालयकी अधिकतर मूल्यवान् वस्तुएँ रूसमें है; संग्रहालयके तल-घरमें भोजन किया।''''उसके बाद हम लोग शहरकी सैर करने निकले। कोई वाहन तो मिलता नहीं; या तो दुबारा रेलमें बैठ कर शहरसे बाहर निकल जाते, या पैदल सड़कों पर भटक सकते। हम लोगोंने दूसरा मार्ग चुना क्योंकि रेलका सफ़र रोज-रोज अच्छा नहीं लगता, एक बार रेलसे नगरके किसी छोरपर पहुँच कर वहाँसे आगे पैदल अन्वेषण ही ठीक है।''''

'खँडहर-खँडहर''''पुरातत्त्वका आकर्षण तो मेरे लिए पैतृक दाय है; पर सब खंडहर पुरातत्त्व नहीं होते ! महायुद्धके ध्वंसावशेष पुरातत्त्व नहीं हैं। और यहाँपर तो खंडहरोंके आस-पाससे ईंट-पत्थरोंके ढेर हटाये भी नहीं गये हैं, सड़कों-गलियोंकी सफ़ाई भी नहीं हो पाती है और घरोंके पिछवाड़ोंका तो कहना क्या ? घरोंके भीतर या अपने-अपने आँगनमें व्यक्ति या परिवार जो कुछ कर सकते हैं करते है। और चारों ओरके ध्वंस, अव्यवस्था और गन्दगीके बीच-बीच आयासपूर्वक व्यवस्थित और सुरक्षित सौन्दर्यके ये छोटे-छोटे द्वीप कितने सुखद जान पड़ते है ! टैक्सियोंका न होना यहाँ एक वरदान बन जाता है, क्योंकि इस प्रकार पैदल गलियोंमें भटककर ही समाजका और नगर-जीवनका यह पहलू मुझे देखनेको मिला है। बल्कि मार्ग-दर्शिकाके कारण और भी बहुत कुछ देख सका हूँ; क्योंकि वह गलियों में ही नहीं जाती बल्कि साहसपूर्वक पुराने घरोंके आँगनोंमें भी चली जाती है, अजनबियोंके घरोंकी सीढ़ियाँ चढ़कर ऊपरके पुराने छज्जे-चौबारे और उनकी महराबें दिखाती हैं, और भीतरी प्रकोष्ठमें झूलते हुए गमलों या टोकरियोंमें लगाये गये फूल''''मानो अभागे नगरके मानव-जीवनने, न केवल खँडहरोंको स्वीकार कर लिया हो, बल्कि उसीको अपनी ओट और कवच

बना लिया हो और उसीके भीतर स्पन्दित और विकसित हो रहा हो। गुराने आततायी रोममें दमनके शिकार ईसाई जैसे समाधियोंके तल-घरोंमें रहते थे, वैसे ही आधुनिक निर्वैयक्तिक अत्याचारसे ग्रसित कितने लोग इस प्रकार अपने ही ध्वंसावशेषोंमें छिपकर जीवन बिता देते हैं।....

'यह बात पूर्वी बर्लिनमें ही हो, ऐसा नहीं है। और भी शहरोंमें ऐसी स्थिति होती है। बल्कि ऐसा भी नहीं है कि व्यक्तिके ऊपर अत्याचार केवल उन्हीं संगठनोंमें हुए हों जिनमें व्यक्तिको व्यक्ति नहीं माना जाता, केवल सामाजिक संगठनकी इकाई माना जाता है। जिन समाजोंमें व्यक्ति को प्रधान माना जाता है, और समाजको उनके अन्योन्य-सम्बद्ध व्यापारोंका पुंज, वहाँ भी अनजाने ऐसा अत्याचार होता है और ऐसी परिस्थिति आती है कि व्यक्ति अपनी रक्षाकी व्यवस्था करे। रक्षा इस या उस क़ानून या प्रवृत्ति या अत्याचारसे नहीं, केवल अपनी नगण्यतासे। 'कर्मोंकी किंक-रता' का यह खतरा आधुनिक मानवताका सबसे बड़ा संकट है। समाज-वादी संगठनोंमें वह अधिक स्पष्ट है, उसकी ओर प्रवृत्ति अधिक मुखर और क्रियाशील। इसे उसी तरह अच्छा मानना चाहिए जिस तरह जो रोग अन-जाने भीतर ही भीतर खोखला कर सकता है उसका प्रकट हो जाना अच्छा होता है—वह निदान और चिकित्साको आसान बनाता है।....'

'चिड़िया-घर और जल-जन्तु-घर देख लिये। फिर रेलमें बैठकर पूरब की ओर।....लेकिन आज पूर्वी जर्मनीका वर्षोत्सव है, और बड़ी सड़कोंपर उसकी तैयारियोंकी चहल-पहल है। मार्क्स-एंगेल्स चौक, जिसे सब परेड-चौक कहते हैं, झण्डोंसे सजाया गया है। आने-जानेके रास्ते बन्द हैं। इमा-रतोंपर थानके थान कपड़ेपर लिखे गये नारे टाँगे गये हैं। सब ओरसे आदम-कद अक्षर मानो सन्नाटेमें भी गला फाड़-फाड़ कर चिल्ला रहे हैं।....

'सैनिक प्रदर्शन देखने या नारे सुननेके लिए तो मैं यहाँ नहीं आया।

स्टेशनमें ही एक सिनेमा-घर है जिसमें निरन्तर छोटी-छोटी रीलें दिखायी जाती रहती हैं। आध-पौन घण्टे उसमें बैठकर 'डोनाल्ड डक', कुछ अखबारी फ़िल्म और डैनी के द्वारा 'संयुक्त-राष्ट्र शिशु रक्षा फ़ंड' के लिए बनायी गयी रोचक फ़िल्म देखकर मैं फिर कुर्फ़ुर्स्टेनडाम लौट आया। भोजन करके फिर रेल पकड़ी। वैस्ट क्रोएत्स स्टेशनपर उ०से भेंट हुई, जिसके साथ बर्लिन-मोआबिटके सुनसान अन्तिक प्रदेशमें भटकता रहा और तरह-तरहके वृत्तान्त सुनता रहा। रात एक बजे उ०को गाड़ीमें सवार करा कर दूसरी गाड़ीसे होटल लौट आया।....'

'फिर रेलसे फ़्रीडरिशस्ट्रासे, जो नगर रेलवे और पूर्वी जर्मन रेलवेका जंक्शन है। वहाँसे उ०को साथ लेकर दूसरी गाड़ीमें सवार होकर पूर्वकी ओर फ़्रीडरिशहागेन; लाल बन्दगोभीका खट्टा झोल खाकर और काफ़ी पीकर पैदल मिगेलसी झीलके घाटपर पहुँचे। सैरका मौसम समाप्त हो चुका है इसलिए घाटपर नाव नहीं मिलेगी।....हम लोगोंने पैदल ही झील का चक्कर लगानेका निश्चय किया और चल पड़े। झीलके दो हिस्से हैं, बल्कि कह लीजिए दो झीलें हैं—ग्रोसे (बड़ी) और क्लाइने (छोटी)। एक नहर इन दोनोंको मिलाती है। इसी नहरके किनारे एक छोटा-सा कहवा-घर है; मौसममें शायद यह भरा-पूरा रहता हो लेकिन आज वहाँ सन्नाटा छाया है। सुन्दर वन-प्रदेशका सन्नाटा कम-से-कम मुझे प्रीतिकर लगता है लेकिन यहाँके सन्नाटेमें एक अजीब मनहूसियत है। वेटर जिस तरह हम लोगोंकी ओर देखता है, उससे यह मनहूसियत और भी बोझीली हो जाती है। उसकी रूखी और उदासीन दृष्टि मानो कह रही है, "क्यों जी, आज-कल तो छुट्टीका मौसम नहीं है; फिर तुम लोगोंको सैर करनेका अवकाश कैसे मिल गया? और आज तो छुट्टीका दिन भी नहीं है, फिर तुम लोग कैसे मटरगश्ती करने निकल सके? क्या कामसे भागकर आये हो? या कि

तुम्हारे पास कोई छिपा हुआ धन है जिसके कारण तुम लोग ऐसा समाज-निरपेक्ष जीवन बिता सकते हो ? मुझे देखो, मैं जानता हूँ कि आज जैसे दिन यहाँ कोई नहीं आयेगा फिर भी इस सरकारी कहवाघरमें सरकारी नौकरी करते हुए सरकारी हाज़िरी बजा लानेको मजबूर हूँ····और तुम जैसोंके लिए, जो कि निठल्ले और काम-चोर तो हो ही, शायद इससे ज्यादा ख़तरनाक भी हो····और, क्यों जी, यह लड़की तो जर्मन मालूम होती है, और यह आदमी तो विदेशी है—जर्मन लड़की कामके दिन क्यों और कैसे विदेशीके साथ घूम रही है ? क्या यह जासूस हैं ? क्या दोनोंकी रिपोर्ट करनी चाहिए, या दोनोंको रोककर गिरफ़्तार करवा देना चाहिए ?''

'सम्भव है कि मेरी संवेदना अति-क्रियाशील रही हो; सम्भव है कि मेरी कल्पनाका भी योग इसमें रहा हो। लेकिन साधारणतया मेरी संवेदना इस मामलेमें मुझे धोखा नहीं देती कि किस व्यक्तिका भाव मेरे प्रति कैसा है; वह जैसा है वैसा क्यों है इसके कारणके अनुमानमें भले ही मुझसे ग़लती हो।

'जो हो, हम लोग जल्दी ही कहवाघरसे बाहर निकल आये और नहरके दूसरे छोरपर, जहाँ वह छोटी झीलमें मिलती थी, पानीके किनारे अखरोटोंके एक कुंजमें बैठ गये। नहरके किनारेपर लगा हुआ एक बेंत वृक्ष अपनी डालें झुकाकर पानीको सहला रहा था। पहले पतझड़के रंगोंसे रंगीन अखरोटके सूखे पत्ते धीरे-धीरे झरकर नहरकी निश्चल सतहपर गिरते थे और उनके फैलते हुए कम्पनके वृत्त धीरे-धीरे दूर जाकर विलीन हो जाते थे। पत्ते रंगीन थे, किन्तु आकाश उदास होनेके कारण खड़े पानीका रंग भी बहुत उदास था।

'जर्मन जाति शायद यूरोपकी सबसे कल्पनाशील जाति है। यहाँ 'कल्पना' शब्दका व्यवहार मैं उसके सही अर्थमें कर रहा हूँ—यानी रूप-कल्पी प्रतिभा (फ़ैंटेसी) के अर्थमें। हमारे देशमें जैसे यह कहना निन्दाकी एक पराकाष्ठा है कि ''अमुकको तमीज़ नहीं है'', उसी तरह अंग्रेजके लिए

यह बड़ी गाली है कि "अमुकमें सेंस आफ़ ह्यूमर नहीं है"; जर्मनके लिए इसकी राम-पदीय गाली है कि "अमुकके कल्पना नहीं है।"

'किन्तु मेरी साथिनमें जर्मन कल्पना यथेष्ट मात्रामें थी। हम लोगों को चुपचाप बैठे हुए अधिक समय नहीं हुआ था कि नहरपर तिरते पत्ते 'परियोंकी नौकाएँ' हो गये। नहरके पार एक छोटा-सा घर था जिसमें शायद नहरका चौकीदार रहता था; हम लोगोंके बैठे-बैठे झुटपुटा हो आया था और उस घरकी खिड़कीके भीतर बत्तीका प्रकाश हो गया था। परदोंके बीचसे, और फिर बेंतकी झूलती हुई डालोंके बीचसे, किरणोंकी एक क़लम-सी मानो पानीपर कुछ लिखने लगी थी। मेरी साथिनकी अपलक आँखें मानो उस क़लमकी नोंकपर केन्द्रित थीं और पानीपर उसकी लिखत पढ़ रही थीं....

'परियोंकी नौकाएँ'....आज परियोंका अन्तिम उत्सव-दिवस है, क्योंकि अगले सप्ताह वे सब मर जावेंगी। उनकी नौकाएं पानीमें डूब जावेंगी। फिर धीरे-धीरे पानीकी सतह ठण्डी और कठोर हो जावेगी; हिम और तुषार धीरे-धीरे वनको, पानीको, सब कुछको मार डालेगा। परियाँ डूबकर मर जावेंगी और उनकी आत्माएँ पाताल-लोकमें कहीं चली जावेंगी।'....

'वह चौंके नहीं, ऐसे धीमे स्वरमें मैंने कहा, "फिर वसन्तमें परियोंका पुनर्जीवनोत्सव होगा, और वे कोंपलोंमें और नयी पंखुड़ियोंमें नृत्य करेंगी; भौंरे आर्केस्ट्रा बजावेंगे—"

'न! पहले परियाँ मरती नहीं थीं; पाताल-लोकमें जाकर अदृश्य आलोककी गुफ़ाओंमें बस जाती थीं और वसन्तमें फिर नयी किरणोंके सहारे बाहर निकल आती थीं। लेकिन अब वैसा नहीं है। अब वे सब मर जाती हैं। मैं जानती हूँ। सब कुछ मर जाता है; कुछ भी बना नहीं रहता है, न कुछ लौटकर आता है।....मैं जानती हूँ। आजकल हर चीज़का दाम चुकाना पड़ता है। परियाँ मोल-तोल नहीं करतीं, और दाम चुकानेवाली दुनियामें जी नहीं सकतीं....दाम चुकाना पड़ता है....हमेशा हर चीज़का

दाम चुकाना पड़ता है''''यही अच्छा है कि स्वेच्छासे दाम चुका दिये जावें !''''"

'सहतूतकी और अखरोटोंके कुंजकी उदासीसे ज्यादा गहरी उदासी उसके मनकी झीलपर छायी हुई है। उसे दीखने देनेमें उसे मेरे सम्मुख संकोच नहीं हुआ है, यह उसका अनुग्रह है। लेकिन झीलकी शान्तिको भंग नहीं करना चाहिए''''मैं कुछ बोला नहीं; मेघाच्छन्न आकाशमें जो दो-तीन तारे निकल आये थे उन्हींकी ओर सकेत करके रह गया। उ० चुप हो गयी। थोड़ी देर बाद दूर बहुत धीमा चग्-चग्-चग्-चग्का स्वर सुनाई देने लगा। बड़ी झीलके आर-पार आने-जानेवाला मोटर-बोट अपना अन्तिम फेरा करने आ रहा था। हमलोग उठकर घाटके पास आ गये। मोटर-बोटमें-से एक अकेली सवारी उतरी। वह भी जर्मन था, कल्पनाशील था, अकेला कुछ जाल बुन रहा था। उतरते-उतरते वह कह रहा था, "प्रेत-नौका घाट आ लगी, और उसमें-से उतरा—" कि सहसा किनारेपर खड़े हम दोनोंको देखकर सकपकाकर चुप हो गया''''!

'प्रेत-नौकापर हम दोनों सवार हुए। दूसरी पार बस मिल गयी—एक अप्रत्याशित संयोग! स्टेशनसे हम लोगोंने पश्चिम बर्लिनके चिड़िया-घरवाले स्टेशनकी रेल पकड़ी। स्टेशनपर ही हम लोगोंने काफ़ी पी और उसके बाद उ० के घर लौटनेके लिए गाड़ी देखने चले तो ज्ञात हुआ कि पूरबको जानेवाली अन्तिम गाड़ी जा चुकी है। पैदल वह मीलों चल सकती है, और चलती है, यह मैं जानता था; लेकिन रातके डेढ़ बजे उसे पैदल घर जानेके लिए छोड़ देना अकल्पनीय था। स्टेशनके बाहर मालूम हुआ कि कुछ टैक्सियाँ ऐसी हैं जिन्हें पूर्वी बर्लिनमें प्रवेश करनेका लायसेंस दिया गया है! ऐसी एक टैक्सी ढूँढ़कर उसपर सवार होकर चले। आधी रातको टैक्सी लेकर पूर्वी बर्लिनमें जाना मज़ाक नहीं है। लेकिन जितनी ही अधिक देर हो जाय उतना ही धीरे चलना उचित है; क्योंकि तेज़ चलनेवाली टैक्सी तो दिनमें भी सन्देहकी दृष्टिसे देखी जाती है और आधी रातमें तो

सीमाके सन्तरी उसे टोकनेसे पहले उसपर फ़ायर कर देना ही बेहतर समझ सकते हैं। पहले ही दिन मुझे चेतावनी दी गयी थी कि अगर कभी पूर्वी बर्लिनमें टैक्सीमें जानेका संयोग हो तो टैक्सीको दस मीलसे अधिक गतिसे न चलने दूँ नहीं तो जानका खतरा है !

'लौट आया हूँ। चार बजने वाले हैं। बदली कुछ छट गयी है और हल्की-सी ठण्ड है।....'

× × ×

डायरीसे ही—कुछ सुनी हुई घटनाएँ : क्या जाने कभी लिखी जाने वाली कहानियोंके प्रारूप....लेकिन भविष्यमें उपयोग हो न हो, अभी भी ये सारगर्भ हैं, आलोकप्रद हैं....

कार्लका गुस्सा प्रसिद्ध था। वह सबेरे उठता ही तो झल्लाया होता; और तबसे राततक उसके चेहरेका भाव ऐसा रहता कि पास-पड़ोसी सभी डरते थे। क्यों और कैसे उसका स्वभाव ऐसा हो गया, यह कोई नहीं जानता था; क्योंकि जब वह वायु-सेनामें भरती हुआ था तब सभी उसके हँसमुख चेहरे और मिलनसार स्वभावकी प्रशंसा किया करते थे।

लेकिन कुछ अद्‌भुत बात थी कि बच्चे उससे नहीं डरते थे। उसका झल्लाया हुआ चेहरा न केवल उन्हें आतंकित नहीं करता था बल्कि उसे देखते ही बच्चे घेर लेते थे और तरह-तरहकी फ़रमाइशें किया करते थे !

गि०, जिसने यह घटना मुझे सुनायी, उसे प्रायः अपनी फ़रमाइशोंसे तंग किया करती थी। कार्ल उसका पड़ोसी था। अधिकतर तो वह अपने कामपर ग़ायब रहता था, लेकिन जब-जब घर आता था तब गि० उससे मिलने अवश्य जाती थी। वह भी गि० के घर अवश्य आता था। जर्मन कल्पनाशीलता उसमें भी बहुत थी, और गि० की माताको वह घंटों कहानियाँ सुनाया करता था। बल्कि गि० ने बताया कि बैठकमें उसकी कहानियाँ सुनते-सुनते वह कुर्सीपर ही सो जाती थी और बीच-बीचमें जाग

कर देखती थी कि वह अभी कहानियाँ सुनाये ही चलते जा रहा है। फिर आधी रातके बाद किसी समय वह चला जाता था, और सबेरे ही अपनी ड्यूटीपर रवाना हो जाता था।

एक बाँहपर गि०को और दूसरीपर एक और बालिकाको झुलाता हुआ कार्ल सड़कपर चला जा रहा था कि उसने देखा; सामनेसे एक लड़की रोती हुई चली आ रही है। अपने झल्लाये हुए स्वरमें ही उसने पूछा, "क्यों री, रोती क्यों है? क्या काट रहा है तुझे?"

लड़कीने रोते-रोते उत्तर दिया : "मेरा दूधका जग टूट गया है। मैं घर नहीं जाऊँगी—मार पड़ेगी।"

दूध तब बहुत मँहगा था। (एक लीटर अथवा सत्रह छटाँकके लिए लगभग चार रुपये देने पड़ते थे।)

कार्लने और भी रुखाईसे कहा, "तो रोती क्यों है? चल मेरे साथ!" वह उसे चीनीके बर्तनोंकी दुकानपर ले गया।

"कैसा था तेरा जग?"

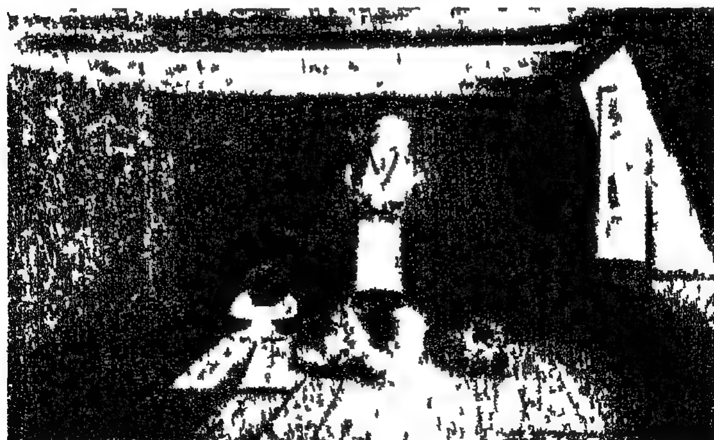
लड़कीके बतानेपर ठीक वैसा ही जग कार्लने उसे खरीद दिया और फिर दूसरी दुकानसे दूध भी ले दिया। "जा ले जा! और खबरदार जो रोयी तो! और यह न समझना कि फिर जग टूट गया तो मैं और ले दूँगा—जग टूटा तो ऐसा थप्पड़ लगाऊँगा कि जीवन-भर याद रहेगा! समझी? जा!"

कार्ल बहुत ही कुरूप था। पर अपने रूपका उसे ध्यान नहीं था। गि० की बैठकमें उसकी माताको कहानियाँ सुनाते हुए प्रायः वह उस युवतीकी रूप-कल्पना भी किया करता था जिसके साथ भविष्यमें कभी वह विवाह करेगा—अभी तक उससे परिचय नहीं हुआ है, लेकिन उससे क्या····

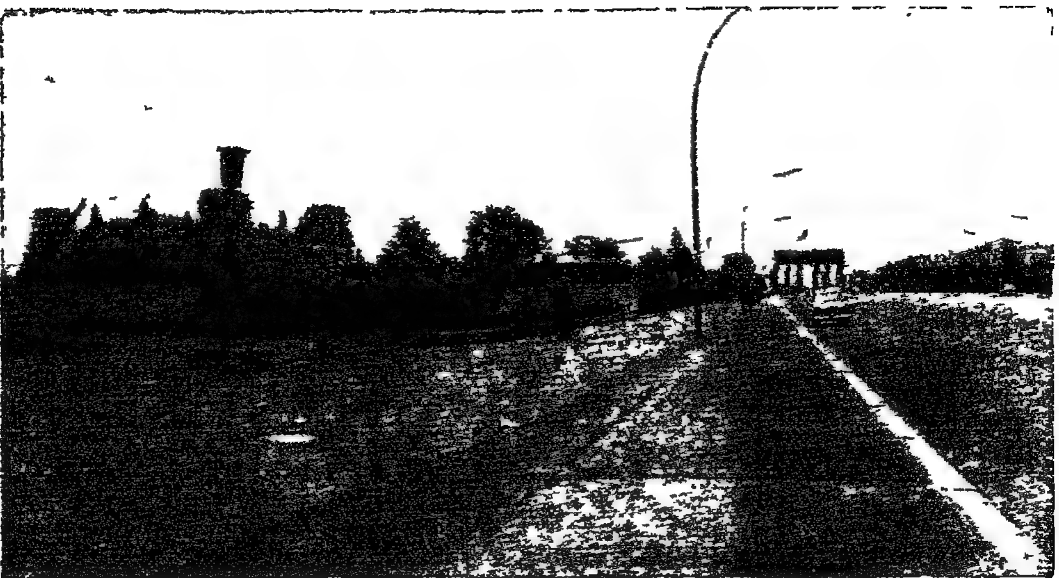
एक दिन विमान उड़ाते-उड़ाते विमान-चालक कार्ल सहसा मर गया। बताया गया कि हृद्गति बन्द हो जानेसे उसकी मृत्यु हुई। किन्तु उसके



बॉन : बेटहोवेन-भवन



बॉन : बेटहोवेनका जन्म-स्थल



बर्लिन : सीमा-रेखा

[ब्रांडेनबर्ग द्वार और रूसी युद्ध-स्मारक : यह द्वार पूर्व और पश्चिमकी सीमा-रेखा है]

परिचित फुसफुसाते स्वरोंमें कहते हैं कि उसने उड़ानसे पहले विष खा लिया था—कि वह पूर्ण रूपसे हताश हो गया था, जीवनके अन्तरंग निजी स्तरपर भी और वायु-सेनाके विमान-चालकके नाते भी। अपना और अपने साथ अपने जंगी विमानका नाश ही वह चाहता था।

क्यों? इस 'क्यों'का उत्तर ही उसकी कहानी होगा, कदाचित् जर्मनी की और यूरोपकी भी कहानी होगा—क्योंकि वह 'नकारसे साक्षात्कार'की कहानी होगा.... ।

× × ×

यह कहानी महायुद्धसे पहले शुरू हुई। ठीक कितना समय पहले, यह कहना कठिन है।

मायर और उसकी पत्नीको उनके पड़ोसी तीस वर्षसे देख रहे हैं। इस निःसन्तान दम्पतिमें आपसमें बच्चों जैसा प्रेम है, जोकि सभी पड़ोसियों के लिए कौतुक भी और श्रद्धाकी भी चीज़ है। दोनोंके बाल पक गये हैं, लेकिन अब तक वे एक-दूसरेसे जिस दुलराते हुए स्वरमें बात करते हैं वह पड़ोसियोंको बलात् अपने-अपने दाम्पत्य-जीवनका अन्तरवलोकन करनेके लिए बाध्य कर देता है।....

अचानक वातावरणमें खिचाव आता है। कहीं कुछ दीखता नहीं है, लेकिन सब जानते हैं कि सतहके नीचे कोई भयानक शक्तियाँ काम कर रही हैं। मायरकी नौकरी छूट जाती है। पति-पत्नी दोनोंको कहीं किसी प्रकारका काम नहीं मिल सका है। सहायता भी नहीं मिल सकी है और क्रमशः भोजन मिलना भी असम्भव होता जा रहा है।

मायर-दम्पतिकी जबानपर शिकायत नहीं है। न उनके चेहरेका भाव शिकायतका है। वे चुपचाप सहते हैं, मुसकराते हैं और एक-दूसरेपर पूर्ववत् अपना दुलार उड़ेलते हैं।

पड़ोसियोंसे उनकी कोई बातचीत अपने कष्टोंके सम्बन्धमें नहीं होती।

पड़ोसी भी आपसमें उनकी बदलती हुई परिस्थितिकी चर्चा नहीं करते। मानो सबके सब परस्पर अभिसन्धि करके एक नाटकीय समयका निर्वाह कर रहे हों जिसमें कुछ भी बदला नहीं है और मायर तथा उसकी पत्नी वैसे ही दीख पड़ते, हँसते-खाते जीव हैं जैसे पड़ोसी उन्हें बीसियों बरससे जानते आये हैं।....

केवल इतना होता है कि श्रीमती मायर बड़े सवेरे उठकर दरवाजा खोलती हैं तो पाती हैं कि कोई वहाँपर एक बोतल दूध रख गया है, या कभी रोटी और मक्खन, या कभी कुछ और। ऐसा भी होने लगा है कि कभी-कभी दोनों बाहरसे आते हैं तो पाते हैं, मेज़पर एक लिफ़ाफ़ेमें कुछ रुपया रखा है।

यह सब कैसे होता है, कौन करता है, मायर दम्पति किसीसे नहीं पूछते। न उन्हें कोई बताता है। न वे कभी कहीं इसकी चर्चा सुनते या करते हैं।

फिर एक दिन ऐसा आया कि श्रीमती मायर सबेरे घरसे अकेली बाहर निकलीं—प्रायः तो दोनों एक साथ निकलते थे और टहलने जाते थे। थोड़ी देर बाद वह अकेली ही वापिस लौटीं। मायर शाम तक भी नहीं लौटे। रातको भी नहीं लौटे। दूसरे दिन सबेरे जब वह फिर अकेली बाहर निकलीं तो लोगोंने भी जान लिया कि मायर घरमें नहीं हैं। यह भी जान लिया कि लौटकर नहीं आयेंगे। यह भी जान गये कि पहली रात जो मोटर तड़के तीन बजे मुहल्लेमें आकर रुकी थी, वह मायरको लेने ही आयी होगी....

श्रीमती मायर थोड़ी देर बाद लौटकर घरके भीतर चली गयीं। फिर बाहर निकलीं तो अच्छे कपड़ोंमें सज-धजकर, जैसे लोग विशेष अवसरोंके लिए या पार्टीके लिए तैयारी करते हैं। पड़ोसके प्रत्येक घरमें जाकर बड़ी शालीनताके साथ उन्होंने अपने पड़ोसियोंको धन्यवाद दिया। "आप नहीं चाहते कि कोई जाने कि आपने हमपर क्या-क्या कृपा की है। लेकिन

मैं यह चाहती हूँ कि आप लोग जानें कि हम कितने कृतज्ञ रहे और मैं कितनी कृतज्ञ हूँ। यह कृतज्ञता प्रकट करनेका दूसरा मौक़ा मुझे शायद न मिले....''

कृतज्ञता-ज्ञापनका अपना दौरा करके श्रीमती मायर घर लौटीं और थोड़ी देर बाद साधारण कपड़े पहनके फिर बाहर निकलीं।

फिर वह लौटी नहीं। कहाँ गयीं, किसीको मालूम नहीं। इतना ही कि वह लौटी नहीं जैसे कि मायर भी नहीं लौटे; जैसे कि और भी हज़ारों नहीं लौटते थे क्योंकि जिस समय वह घरसे निकले थे उस समय वे यहूदी थे, अर्थात् उनकी पिछली आठ पीढ़ियोंमें कोई एक पूर्वज यहूदी था।....

मायरको तो यहूदी जानकर, या मानकर, गैस देकर मार दिया गया होगा। किन्तु मिसेज मायरका क्या हुआ? अधिकतर पड़ोसियोंका विश्वास था कि उन्होंने आत्म-हत्या कर ली। लेकिन यूछका पक्का विश्वास है कि वह घरसे निकलकर सीधे थानेमें गयीं जहाँ उन्होंने बयान दिया कि वह भी *विवाहसे नहीं, वंशसे यहूदी हैं;* और थानेसे गैस देनेकी जगह भेज दी गयीं।

उनकी देहका क्या हुआ कौन जाने। यहूदियोंकी देहसे बनाये गये रसायन जर्मन-जीवनमें कहाँ तक रच गये हैं, इसका कोई हिसाब नहीं रखा गया है।

× × ×

आर्जेंटीनाकी राजधानी बुएनोस एयरिसमें मैदाम अल्वारेस नामकी एक सम्पन्न महिला रहती हैं। लोगोंसे उनका परिचय पूछनेपर बताया जायगा कि वह पहले एक प्रसिद्ध रसायनविद् थीं और जर्मनीके किसी विश्व-विद्यालयमें पढ़ाती थीं; अब अवकाश ले चुकी हैं। परिचय देनेवाला इसके साथ-साथ बड़े रहस्यपूर्ण ढंगसे मुसकरा देगा। और पड़ताल करनेपर ज्ञात होगा कि मैदाम अल्वारेसको यह नाम उनके अट्ठारहवें विवाहके कारण

प्राप्त हुआ है। सिन्योर अल्वारेसमे उनका विवाह एक वर्षसे अधिक नहीं टिका, और महायुद्ध समाप्त हो जानेके बाद वह यूरोप भी नही लौटीं। वहीं अकेली रहने लगी हैं। सिन्योर अल्वारेस किसी दूसरे नगरमे रहते हैं।

तथ्य सब ठीक हैं। लेकिन कहानी यह नहीं है। कहानी बिल्कुल दूसरी है।

श्रीमती अल्वारेस मूल जर्मन हैं। इतना ही नहीं, एक पुराने अभिजात परिवारकी हैं। रसायनकी शिक्षा प्राप्त करके उन्होंने विश्वविद्यालय में रसायन पढ़ाना आरम्भ किया और साथ-साथ एक प्रयोगशालामें अनुसन्धान करने लगीं। इसी प्रयोगशालामें अनुसन्धानके सिलसिलेमें न मालूम क्या हुआ कि उनके स्वभावमें एक अद्‌भुत परिवर्तन आ गया। इसके एक डेढ़ महीने बाद ही उन्होंने रसायनशालाके एक-दूसरे आचार्यसे विवाह करके सबको अचरजमें डाल दिया क्योंकि पतिसे विज्ञान-सम्बन्धी चर्चाके अतिरिक्त किसी प्रकारकी घनिष्ठताका कोई लक्षण किसीने नहीं देखा था। लोग और भी चकित तब हुए जब विवाहके कुछ दिन बाद दोनों सैरके लिए दक्षिण अमेरिका चले गये और वहाँसे पत्नी अकेली लौटी। कुछ दिन बाद पत्नीकी दरखास्तपर उनका डाइवोर्स हो गया।

दो-एक महीने बाद रसायनकी युवती अध्यापिकाने फिर विवाह किया; दम्पति फिर विदेश-यात्राके लिए चले और पत्नी फिर अकेली वापिस लौट आयीं।

तीन-चार विवाहोंके बाद वातावरण ऐसा हो गया कि उन्हें नौकरी छोड़ देनी पड़ी। किन्तु सम्पन्न अभिजात परिवारकी होनेके कारण उनकी कर्म-स्वच्छन्दता बनी रही और विवाह भी होते रहे।....

अट्ठारहों पति प्रतिभाशाली वैज्ञानिक रहे हों, ऐसा तो नहीं; लेकिन किसी-न-किसी प्रकारकी प्रतिभा सभीमें थी; और देशान्तर जाकर प्रायः सभीने प्रतिष्ठा पायी। केवल दो-एक अपवाद थे; किन्तु ये प्रायः

विवाहसे पहले ही रोगी और लगभग असहाय थे, और एक तो पंगु ही था।

उस समय यह ज्ञात भी नहीं था—और बताया भी नहीं जा सकता था—अब बताया जा सकता है, कि अट्ठारहों पति यहूदी थे। तत्कालीन जर्मनीमें उनके प्राणोंकी रक्षा अधिक दिन न हो सकती लेकिन एक अभिजात जर्मनी 'आर्य' नारीके 'स्वेच्छाचार'के कारण सभी आज जीवित हैं, कर्मरत हैं और अधिकतर मानव-कल्याणके लिए यत्नशील है।

सभी बच गये हैं, नहीं बची तो एक उस नारीकी कीर्त्ति जो आज मैदाम अल्वारेस कहलाती है। उसका नाम लेकर अधिकतर लोग रहस्य और व्यंग्यसे भरकर मुसकराते हैं। इससे वह विचलित होती हो, ऐसा नहीं जान पड़ता। उसने अपने ढंगसे अपनी शक्ति-भर जर्मन जातिके अहंकारजन्य अत्याचारका प्रतिकार किया है, और उसके पापका शोध किया है। शोधका यह तरीक़ा सभीको असंगत (और भारतवासियोंको बेतुका भी) लगे; पर एकके स्वेच्छा-पूर्वक वरण किये गये कष्ट (तपस्या) के द्वारा दूसरेके पापके मार्जनका सिद्धान्त उसका ईजाद किया हुआ नहीं है; उसके पीछे ईसाका प्रमाण है और ईसाइयतकी समूची परम्पराकी शक्ति।

मैदाम अल्वारेस 'रंगीली' और पुंश्चली मानी जाती हैं। अकेली हैं। निःसन्तान हैं। मुझे कोई बताये कि अपने अट्ठारह विवाहोंके बावजूद वह अभी कुमारी भी हैं तो मुझे अचम्भा नहीं होगा....

इस चरित्रका परिचय मुझे उन्हींकी एक सहेलीसे मिला है जो स्वयं यहूदी है और जिसका भाई मैदाम अल्वारेसके अल्पकालीन पतियोंमेंसे एक रहा। नाम सभी कल्पित हैं; स्थान और कार्य-सम्बन्धी विवरणमें भी थोड़ा हेर-फेर है; लेकिन मूल कहानी सच है और चरित्र वास्तविक है।

× × ×

बर्लिनमें मैं अधिक समय नहीं रहा। थोड़े दिनोंके निजी अनुभवके आधारपर किसी नगर या देश या जातिका प्रभावग्राही चित्रण जोखमका काम है और उसमें धोखा हो सकता है। भागते हुए विदेशी टूरिस्ट भारत के बारेमें जो कुछ लिखते हैं वह इसका उदाहरण है, और उससे शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए कि हम भी वैसी भूल न करें। लेकिन मैं नहीं समझता कि मैं जो कर रहा हूँ उसमें इसकी उपेक्षा है। जर्मन जीवनके बहिरंगसे मुझे विशेष प्रयोजन नहीं है। उसका वर्णन मैं नहीं कर रहा हूँ। जर्मनीके इतिहास, उसकी राजनीति या दर्शन या विज्ञान, उसकी अर्थ-व्यवस्था या व्यापारिक स्थितिके बारेमें मुझे न कोई राय देनी है न कोई रवैया अख्तियार करना है। बल्कि जर्मन लोग क्या सोचते हैं, क्या चाहते हैं, इसकी चर्चा भी मैं नहीं कर रहा हूँ—यद्यपि इसका अनुमान कुछ दिनोंमें कर लेना असम्भव नहीं है।

मुझे संयोगवश यह अवसर मिला कि इन सबके पीछे जो आभ्यन्तर तनाव जर्मन-मानसके भीतर है उसकी कुछ झाँकियाँ पा लूँ। निःसन्देह वह तनाव देश-कालकी परिस्थितियोंने उत्पन्न किया है, और उसे समझने अथवा उसे दूर करनेकी योजनाके लिए इन सबका वर्षोंका अध्ययन आवश्यक है। लेकिन जिस प्रकार सूर्योदयका प्रकाश देखनेके लिए सौर-मण्डलके संक्रमणके सिद्धान्त जानना आवश्यक नहीं है, उसी प्रकार इस अन्तरालोक को देखनेके लिए जर्मनीका अध्ययन आवश्यक नहीं है...

यूरोपके संघर्षोंका केन्द्र जर्मनी रहा है और है। बर्लिन अब भी जर्मनीका केन्द्र है और वहाँ लक्षित होनेवाले (या अलक्षित भी) स्नायविक तनाव सारे यूरोपको संचालित करते हैं। मैं संयोगवश बिजलीकी-सी कौंधमें यह देख आया। जो कच्चा माल मुझे मिला उससे कुछ निर्माण करनेमें मुझे वर्षों भी लग सकते हैं; लेकिन यह तो मेरी आभ्यन्तर यात्राकी बात है।

एक क्षण-भर और रहने दो मुझे अभिभूत :
फिर जहाँ मैंने सँजोकर और भी सब रखी हैं ज्योतिःशिखाएँ
वहीं तुम भी चली जाना
शान्त, तेजोरूप ।

एक क्षण-भर और :
लम्बे सर्जनाके क्षण कभी भी हो नहीं सकते ।
बूँद स्वातीकी भले हो
बेधती है मर्म सीपीका उसी निर्मम त्वरासे
वज्र जिससे फोड़ता चट्टानको ।

भले ही फिर व्यथाके तममें
बरसपर बरस बीतें
एक मुक्ता-रूपको पकते ।

प्राची-प्रतीची

चेहरे

कुछ चेहरे देखकर सहसा विचार उठता है—'अरे, यह चेहरा मैंने पहले कहीं देखा है'—और यह क्षण केवल पहले देखनेके स्मरणका क्षण नहीं बल्कि पहचानका क्षण होता है। उस क्षणसे वह चेहरा मित्रका चेहरा लगने लगता है।

कुछ दूसरे होते हैं, जिन्हें देखकर भी मनमें सहसा यही विचार उदित होता है कि 'अरे, यह चेहरा तो पहले कहीं देखा है,' पर यह क्षण केवल एक चित्रके स्मरणके क्षणका होता है, कोई पहचान उसको आलोकित नहीं करती। और यह देखा हुआ चेहरा उस क्षणसे और भी अपरिचित लगने लगता है।

और जान पड़ता है कि पहले वर्गके चेहरे दिन-पर-दिन कम होते जा रहे हैं, और दूसरे वर्गके बढ़ते जा रहे हैं।

क्योंकि मानो अब मनुष्यका उत्पादन एक बड़े पैमानेके ढलाईके कारखानेमें होने लगा है—व्यक्तित्व खोकर अब वह 'प्रतिमा' नहीं रह गया है बल्कि केवल एक ठप्पा हो गया है।

कहाँ गये बाइबलके वे ऋषि साक्षी, जिन्होंने कहा था कि 'ईश्वरने स्वयं अपनी प्रतिमासे मानवको रचा'....

वरणकी स्वतन्त्रता

मनुष्यकी नैतिकताका क्या अर्थ है सिवा इसके कि वह अपने कर्मके लिए उत्तरदायी है? लेकिन जिस कर्मका उसने स्वेच्छासे वरण नहीं किया है, वह उसका कर्म कैसे है?

इसलिए अगर हम मनुष्यकी वरणकी स्वतन्त्रता नहीं मानते, तो हम उसकी नैतिकताकी सम्भावना भी नहीं मानते।

यन्त्र और आत्म-दान

यान्त्रिक उन्नति इसे क्रमशः सुगमतर बनाती जाती है कि मानव अधिकाधिक काम बिना आत्म-दानके कर सके।

अर्थात् वह क्रमशः अधिकाधिक मानवोंका अकेला होना अधिकाधिक सम्भव बनाती जा रही है, यदि वे यान्त्रिक उन्नतिपर ही निर्भर करते है।

यान्त्रिक उन्नति

यान्त्रिक उन्नति अपने-आपमें दूषित नहीं है। वह मृत्युको सुगमतर बनाती है, इसका अर्थ यह नहीं है कि वह जीवनको असम्भव बनाती है।

किन्तु यान्त्रिक उन्नति आत्माको प्रेरणा नहीं देती; और वह प्रेरणा आवश्यक है। उस प्रेरणाके स्रोतकी खोज आधुनिक मानवकी खोज है।

शिक्षा : विचार और भावना

लोक-कल्याणका अर्थ जब परिस्थितियोंका प्रतिमानीकरण समझ लिया जाता है, तब शिक्षाका अर्थ भी मानसिक प्रतिक्रियाओंका प्रतिमानीकरण हो जाता है। तब हम परिस्थितिकी विशिष्टताको अरक्षित होना समझने लगते हैं, और भाव-प्रतिक्रियाकी विशिष्टताको अशिक्षित होना।

शिक्षा विवेचनकी परिपाटी देती है। जो शिक्षा विचार-शक्तिकी बजाय भावनाका नियमन करना चाहती है, वह सर्वसत्तावादकी चेरी है।

प्रतिमान और प्रतिमानीकरण

हम जीवनके प्रतिमानकी बात करते चलते हैं, और जीवनका प्रतिमानीकरण करते चलते हैं।

हम सांस्कृतिक स्वातन्त्र्यको राजनैतिक मतवाद बनाना चाहते हैं, पर यह भूलते जाते हैं कि स्वतन्त्र रखनेके लिए संस्कृति तो प्रतिदिन कम होती जाती है। व्यक्ति-संस्कृति भी व्यक्ति-स्वातन्त्र्यकी भाँति प्रतिदिन आक्रान्त होती जा रही है।

देव-प्रतिम

ईश्वरने मानवके रूपमें अपनी प्रतिमाका निर्माण किया। कुशल शिल्पी होनेके नाते उसने प्रत्येक प्रतिमा भिन्न और अद्वितीय बनायी; भिन्न होनेके कारण प्रतिमाएँ परस्पर प्रेम कर सकीं।

अब यन्त्र-युगमें मानव ईश्वरके रूपमें अपनी प्रतिमाका निर्माण करता है। उत्पादक होनेके नाते वह सभी प्रतिमाएँ एक-रूप और एक-प्रमाण बनाता है; समान होनेके कारण प्रतिमाएँ एक-दूसरेसे केवल घृणा कर सकती हैं।

संस्कृति : व्यक्तित्वका विस्तार

संस्कृति व्यक्तित्वका विस्तार और प्रसार माँगती है, संकोच या छँटाव नहीं। संस्कारी व्यक्ति बराबर नयी उपलब्धियोंको आत्मसात् करता चलता है। संस्कृत व्यक्तिकी आत्म-सज्जा या अलंकृति किसी व्यक्ति या वस्तुके मुक़ाबिलेमें, उसके विरुद्ध, उभर कर आनेके लिए नहीं होती—जैसे घर या बैठककी सजावट, या मित्र-मण्डली या प्रेमी; बल्कि वह उन्हें अपनेमें घेर लेती है।

अलंकरण और पंगुकरण

पश्चिमकी आधुनिका अपने नाखून रँगती है; नाखून अब उसके शरीर का अंग न रहकर एक अलंकरण रह गये हैं। वह अपना चेहरा रँगती और सजाती है; वह चेहरा भी उसका अपना नहीं रहा है बल्कि एक

आभरण हो गया है। अद्वितीय, वैयक्तिक, निजी चेहरा किसीका नहीं होता; सज्जाकी जो कुछ प्रसिद्ध शैलियाँ हैं उनमेंसे किसी एक शैलीका चेहरा पहचान लिया जाता है—अर्थात् चेहरा नहीं, चेहरोंके माडल रह गये हैं।

दिनके समयके अनुसार, पहने हुए अलंकारोंके अनुसार, पोशाकके रंगके अनुसार, मुख-रंजनी (लिपस्टिक) का रंग भी बदलता है। सबसे नया यह देखा है कि आधुनिकाएँ अपनी वेश-भूषाके अनुरूप अपने बालोंको भी रँगती हैं। इस प्रकार मुँह भी और केश भी व्यक्तित्वके अविभाज्य अंग न होकर उसके अलंकरण मात्र हो गये हैं।

क्या यह मानवीय व्यक्तित्वका क्रमिक पंगुकरण नहीं है? एक-एक अंग गलकर गिर नहीं रहा है बल्कि स्वयं काटकर फेंक दिया जा रहा है!

और पूर्वकी आधुनिका? यह नहीं कि उसकी कल्पना असम्भव है—आधुनिका पूर्वकी भी हो सकती थी। शायद हो भी; लेकिन पूर्वकी दृष्टिमें विकास यदि भीतरी होता है तो आधुनिकता भी भीतरी संस्कार ही होगा और उसका दृश्य लक्षण कोई न होगा। जिन्हें हम आधुनिकाके नामसे पहचानते हैं वे वास्तवमें पूर्वकी हैं ही नहीं। यह ठीक है कि इसीसे वे पश्चिमी नहीं हो जातीं। पश्चिमके अनुकरणमें उन्होंने भी अपनेको अंग-अंग करके अपाहिज बनाया है और उसके बाद पंगु देहको फिर पाश्चात्य रंगसे रँग लिया है—अर्थात् उनके चेहरेका रंग पहचाने हुए चेहरेका स्वाभाविक रंग भी नहीं है—वह रँगे हुए पहचाने हुए चेहरेका रंग है।

वयस्कताके रूप

पश्चिमी जन जब तक युवा रह सकता है, रहता है, फिर वय-मुक्त हो जाता है।

पूर्वी जन जबतक वय-मुक्त रह सकता है रहता है, फिर वृद्ध हो जाता है।

नीति-शास्त्र

यूरोपकी परम्परामें 'स्वतन्त्रता' व्यक्तिकी आत्म-निर्भरता रही है, चीनमें परिवारकी आत्म-तन्त्रता और भारतमें ग्राम-समाजकी स्वतः सम्पूर्णता।

किन्तु इसके विपरीत, परम्परासे यूरोपकी नीति-शास्त्र सम्पृक्तिका रहा है, चीनका सन्तुलनका, और भारतका संन्यास अथवा अनासक्तिका।

एकान्त मार्ग

संख्याका तर्क या बहुमतका सिद्धान्त एक सीमातक ठीक है लेकिन वह सीमा बड़ी स्पष्ट और अनुल्लंघनीय है। जो अधिकके नियमके नीचे न रह कर सम्पूर्णके नियमके अधीन रहना चाहता है उसके लिए एक ही मार्ग है। वह मार्ग अधिसंख्यके शासनसे आगे बढ़कर एकमेवके शासनतक जाता है—वह मार्ग सम्पूर्ण और अखण्ड एकान्तका मार्ग है।

भयके रूप

आत्म-हत्याकी और कोई प्रेरणा नहीं हो सकती, सिवा मृत्यु-भयके।

इसीका दूसरा पक्ष यह है कि जहाँ मृत्युका भय है वहाँ आत्म-हत्याकी प्रवृत्ति भी जाग उठती है—यदि वह प्रवृत्ति पर-हत्याकी प्रवृत्तिका रूप नहीं ले लेती।

काम और मृत्यु

आधुनिक पश्चिमकी समस्याके दो पहलू हैं।

पहला : काम (सैक्स) का स्वीकार, अथवा दमन ?

दूसरा : मृत्युका स्वीकार, अथवा दमन ?

पहली समस्या चेतनाकी समस्या है। पश्चिमने अब इसके काम-चलाऊ उत्तर या अनेक उत्तरोंकी परम्परा पा ली है। दूसरी समस्या आत्माकी समस्या है। अभीतक पश्चिम इससे कतराता ही रहा है।

किसी भी प्रश्नसे कतराना या उसका दमन करना अस्वस्थ है—रोग उत्पन्न करता है।

कामके दमनके दुष्परिणामोंसे मृत्युके दमनके दुष्परिणाम कहीं अधिक भयानक होते हैं।

अद्वितीयता और प्रतियोगिता

जो 'मानवीय व्यक्तियोंकी अद्वितीयता' की बात कहते हैं, वही फिर 'पड़ोसियोंकी बराबरी' की युक्ति कैसे दे सकते हैं ?

क्या जरूरी है कि हर घरमें रेफ्रीजरेटर हो, अन्यथा मानवकी प्रतिष्ठा बनी नहीं रह सकती ?

संस्कृति और अवकाश

संस्कृति अवकाशका आनन्दमय उपभोग करनेकी क्षमता है। अवकाश का उपभोग, तनावसे मुक्त शान्त मनःस्थिति माँगता है : बिना शान्तिके अवकाश नहीं है, अवकाशका बोध या स्वीकार नहीं है।

अतएव जो अशान्त है वह सुसंस्कृत नहीं हो सकता। यह क्या समूचे पश्चिमके लिए एक चेतावनी नहीं है ?

बुद्धिजीवी

बुद्धिजीवी वास्तवमें भौतिकको अस्वीकार नहीं करता, केवल उसपर झल्लाता है। उसकी अधिकतर समस्याएँ इसीसे उत्पन्न होती हैं। और यही उसकी किंकरता और असमर्थताकी जड़ है।

इष्ट और साधन

सुख क्या इष्ट है ? कहना कठिन है।

समरसता क्या इष्ट है ? अवश्य। सुख तो उसके खोजकी एक आनु-षंगिक उपलब्धि है।

समरसताकी पहली शर्त है आत्म-चेतनासे मुक्ति। इस मुक्तिके दो साधन हो सकते हैं : एक तो मृत्यु, दूसरा गहरा राग।

पश्चिमी दृष्टि सभ्यताके नामपर रागको नियन्त्रित करना चाहती है; और जीवन-प्रेमके नामपर मृत्युकी चेतनाको दबा देना चाहती है।

भारतीय दृष्टि रागको पूजाके आसनपर प्रतिष्ठित करती है और मृत्यु को गहरे सत्यके रूपमें स्वीकार करती है।

चेतनाके दूसरे छोरपर

कुछ पश्चिमी चिन्तकोंने जिज्ञासावश मृत्युका अन्वेषण किया है। वे *आत्म-चेतनके छोर तक गये हैं और उन्होंने उझककर अनस्तित्वके अतल* गर्तकी एक झाँकी देखी है। फिर वे लौट आये हैं—कुछ डरसे काँपकर और कुछ बिना डरे।

पूर्वी चिन्तकने ऐसा अन्वेषण नहीं किया। क्योंकि वह अनस्तित्वको मानकर नहीं चला। उसे विश्वास रहा है कि चेतनाके दूरतम छोरके बाहर जो विराट् अन्धकार है उसमें भी कहीं-न-कहीं करुणा अवश्य है। जहाँ कुछ नहीं है वहाँ भी कृपा है, इसके बारेमें उसने कभी शंका नहीं की।

ट्रैजेडी

साहित्यके क्षेत्रमें : पाश्चात्य नाटकमें जो ट्रैजेडी देखी जाती है उसकी यथार्थता या उसका मूल्य क्या है ?

क्या बँधे हुए चरित्रोंकी नाट्य-परिस्थितिमें जो ट्रैजेडी हो सकती है वह बड़ी है, या कि उनका बंधा होना अपने आपमें जो ट्रैजेडी है वह ?

अगर नाटककार स्वतन्त्र चरित्रोंका आविष्कार कर सकता और फिर उनकी ट्रैजेडी प्रस्तुत करता !

विशिष्ट ज्ञान

विचार और तर्कका सम्बन्ध सार्वजनीन अथवा व्यापकसे है। विशिष्ट का ज्ञान हमें उससे नहीं मिलता : उसका साधन हमारी अनुभूति है।

कलाके क्षेत्रमें इसका अर्थ : कला भी ज्ञानका साधन है—विशिष्ट के ज्ञानका।

पेड़ और सीढ़ी

पश्चिमकी प्रतिभा कथनमें है, पूर्वकी संकेतमें; पश्चिमकी व्याख्यामें, पूर्वकी सूत्रमें। पश्चिमके लिए सत्यकी परिभाषा कर देना उसको स्वायत्त कर लेना है। पूर्वके लिए सत्यको परिभाषित कर लेना उसको पंगु कर देना है।

पश्चिमके लिए अर्थ ज्ञानमें है और ज्ञान एक सीढ़ी है। पहले आप एक सीढ़ीपर होते हैं और फिर दूसरीपर; जब दूसरी सीढ़ीपर पहुँच जाते हैं तब पहलीपर नहीं रहते। पूर्वके लिए अर्थ ज्ञातामें है और ज्ञान एक फलता हुआ वृक्ष है। आप जिस भी डालपर हों उसी वृक्षपर रहते हैं।

परिधि और व्यास

पश्चिमकी लीक वृत्तकी परिधिकी है : वह एक है, उसकी दिशाएँ दो सकती हैं। पूर्वकी लीकें वृत्तके व्यासकी हैं। वे असंख्य हैं और उनकी दिशाएँ भी असंख्य

यात्राके छोर

पश्चिमी जन असहिष्णुतासे आरम्भ करता है और अनास्था तक पहुँचता है। पूर्वी जन तटस्थतासे आरम्भ करता है और ज्ञान तक पहुँचता है।

पूर्व और पश्चिम : सभ्यताके आयाम

पाश्चात्य संस्कृतिका केन्द्र है 'मैं'। उसकी मूल स्थिति शेष जगत्से विरोधका सम्बन्ध है।

चीनी संस्कृतिके मूलमें 'हम'का भाव है। उसकी खोज शेष जगत्से सामञ्जस्यकी, सम्बन्धकी खोज है।

भारतीय संस्कृतिका मूल स्रोत 'मैं' और 'हम' की एकात्मताका बोध है। इसके लिए किसी सम्बन्धकी खोजका प्रश्न नहीं है, होनेकी स्वीकृति ही उसका इष्ट है।

पश्चिमी सभ्यताका आयाम : उत्साही धर्मदूतसे उत्साही जनघाती-तक;

चीनी सभ्यताका आयाम : अनुद्विग्न दार्शनिकसे अनुद्विग्न दासतक;

भारतीय सभ्यताका आयाम : अकुण्ठित सन्तसे अकुण्ठित पाखण्डी-तक।

पश्चिमी सभ्यता संघर्षको आदर्श बनाती है। ईसाइयतके बावजूद वह अधर्मी सभ्यता है।

पूर्वकी सभ्यता संघर्षका निराकरण करके समस्वरताको आदर्श मानती है। अनीश्वरवादके बावजूद वह धार्मिक सभ्यता है।

पूर्व और पश्चिम : देश और काल

पश्चिमका काल-बोध एकांगी है। अर्थात् उसे तात्कालिकता और त्वराका बोध तो है किन्तु कालकी व्यापकता और धृतिका नहीं। भारतको कालके विस्तारका बोध है लेकिन उसकी तीव्रताका नहीं।

दूसरी ओर भारतका देश-बोध एकांगी है। अर्थात् उसे निकट दैशिक परिस्थितिका बोध तो है किन्तु देशके विशाल प्रसारका नहीं।

यूरोपवासी देशके असीम विस्तारमें कालके एक बिन्दुपर जीता है। भारतवासी कालके अनन्त विस्तारमें देशके एक बिन्दुपर रहता है।

पूर्व और पश्चिम : काल-बोध

यूरोपीय व्यक्ति क्षणमें जीता है। अनन्तकालसे उसे प्रयोजन नहीं है—इतना भी नहीं कि भूत और भविष्यत्का उपयोग वर्तमान जीवनको सम्पन्नतर बनानेके लिए करे।

भारतीय व्यक्ति अनन्तकालमें रहता है। उसके लिए वर्तमान काल एक असुविधाजनक धारा है जो भूत और भविष्यत्को मिलानेवाले उसके बनाये हुए पुलके नीचेसे बहती है।

पूर्व और पश्चिम : संक्षिप्त इतिहास

पश्चिमका एक संक्षिप्त इतिहास :

ईसाको किसने मारा ?

—ईसाई जातिने।

ईसाइयतको किसने मारा ?

—ईसाई राष्ट्रोंने।

पूर्वका एक संक्षिप्त इतिहास :

करुणा आदर्श थी किन्तु दुख जब केवल एक भ्रम है तो करुणा देना क्या भ्रान्ति फैलाना न होता ?

स्वाधीन तो आत्मा है, और वह अनश्वर भी है; फिर दासताके विरोधमें प्रवृत्त होना क्या शक्तिका अपव्यय न होता ?

हमारे भाई गिरते रहे, पर वे पिछले जन्मके पापोंका फल भोग रहे थे।

हम भी गिरते रहे, पर हम अगले जन्मोंके लिए पुण्य-संचय कर रहे थे।

ईश्वर-सुत, मानव-सुत

ईसाइतने अपने मसीहाको ईश्वर-सुतका गौरव-पद देकर उसका सलीब वहन करनेका अधिकार छीन लिया।

क्योंकि सलीबको केवल मानव-सुत उठा सकता है : वही उसे उठाने आया है और वही आगे भी उठायेगा।

विस्मय और जिज्ञासा

पश्चिम अपने [illegible] हाड़ देखता है और शिखर तक रास्ता काटने लगता है ताकि पर्वतपर जयी हो सके और जान ले कि उसकी दूसरी पीठ पर क्या है।

जहाँ विस्मय है वहाँ जिज्ञासा है, ललकार है।

पूर्वके सम्मुख सागर है। वह रस्सी डालकर गहराई नापता है। गहराई जान ली जाती है लेकिन सागर अज्ञात रह जाता है।

जहाँ विस्मय नष्ट हो जाता है वहाँ केवल पराजय मिलती है।

यात्रान्त : यात्रारम्भ

पश्चिमकी प्रतिभा कल्पनामें है। उसकी प्रत्येक परिभाषा परिधिका निर्धारण करती है। 'अमुक क्योंकि अमुक है, इसलिए उससे इतर नहीं हो सकता,' यह उनकी यात्राका अन्त है।

पूर्वकी प्रतिभा विस्तारमें है। 'अमुक क्योंकि अमुक है, इसलिए अमुकसे इतर और सब कुछ भी हो सकता है,' यह उसकी यात्राका आरम्भ है।